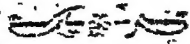


विषय-सूचि।



(हिन्दी लेख विभाग)

- १ जनेन्द्र व्याकरण और भाषाएं देवतन्त्री ।
लेखक—श्रीयुक्त पं. नाथूरामजी प्रेमी, संपा-
दक—जैनहितपी ... ८३-८७
- २ गान्धहस्त महाभाष्यकी खोज—डॉ० श्रीयुक्त
दास दुर्गल किशोरजी मुख्तार ... ८८-९५
- ३ तीर्थयात्राके लिये निकलनेवाले संधका वर्णन
(सम्पादकीय) ... ९६-१०७
- ४ जललमेरके पटवोंके संधका वर्णन
(सम्पादकीय) ... १०७-११२
- ५ शोकसमाचार.
(१) डॉ० सतीशचन्द्र विद्याभरण ... ११३
(२) प्रो० सी. बी. राजवाडे ... ११४
(३) लो० बाल गंगाधर तिलक ... ११५
- ६ चित्र परिचय ... ११६

(गुजराती लेख विभाग)

- १ सोमप्रभाचाय विरचित कुमारपाल प्रतिबोध.
(सम्पादकीय) ... ११७-१२४
- २ डॉ० हर्षत जेकोबीनी जैनसूत्रोनी प्रस्तावना.
अनुवादक—डा० अम्यालाल चतुरभाई.
बी. ए. (जैन सा. सं. कार्यालय तरफથી) ६९
- ३ साहित्य-समालोचन
(१) धनपालकृत भविष्यदुत्तकथा ... १२७
(२) लुरीश्वर धने सद्भाद ... १२८
(३) तत्त्वार्थप्रपिषिष्टनु भाषान्तर ... १००
—सुबई युनिवर्सिटीमा एम. ए. छात्रों
अर्धमानप्री कोस ... १०३
—पंजाब युनिवर्सिटीमा जैनसाहित्य १०४

विहट्पिपनिका नाम प्रार्थना जैनग्रन्थम्बी ।

अवश्य पढ़िए

जैन साहित्य संशोधक समाजकी तरफसे शोध हो एक जैन प्राकृत-संस्कृत ग्रन्थमाला निकालने-वाली है जिसमें जैन साहित्यके उत्तमोत्तम, प्राचीन और अलभ्य-दुर्लभ ग्रन्थ प्रकट किये जायेंगे। इन ग्रन्थोंमें जैन आगम, सूत्र, नियुक्ति, ज्ञानि, भाष्य, वृत्ति, न्याय, व्याकरण, काव्य, कोष, साहित्य, अलंकार, चरित्र, पुराण, प्रबन्ध इत्यादि सब प्रकारके ग्रन्थ रहेंगे। ये सब ग्रन्थ नष्ट पड़नेसे, जैन और अजैन विद्वानोंके द्वारा संपादित हो कर छपेंगे। जैन साहित्यके देखनेकी अभिलषि लोगोंमें दिन पर दिन बढ़ती जा रही है परन्तु एक तो अभी तक उत्तम प्रकारसे जैन ग्रन्थ छपे ही नहीं हैं और जो जैसे जैसे छपे हैं उनकी प्राप्ति भी सब साधारणके लिये दुःसाध्य ही नहीं परन्तु असाध्य हो रही है। इस लिये अनेक विद्वानोंके आग्रहसे इस संस्थाने यह काम करनेका विचार किया है।

जो सज्जन इस ग्रन्थमालाके स्थायी ग्राहक बनना चाहेंगे उन्हें सब ग्रन्थ पाना किन्तसे याने, मूल्यमें दिये जायेंगे। स्थायी ग्राहक बननेके लिये १ रुपया प्रथम प्रवेश फाके लिये भेजना चाहिए। प्रथम ज्यों ज्यों छपते जायेंगे त्यों त्यों बी. पी. करके भेज जायेंगे।

कागज, साईन, छपाई, सफाई इत्यादि सब काम उत्तम प्रकारका होगा। विशेष हाल जाननेके लिये जयपी पत्रद्वारा पृष्ठिए।

पत्रग्रन्थहार करनेका पता—

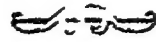
व्यवस्थाप

जैन साहित्य संशोधक कार्यालय,

८० भारत-जैन विद्यालय,

पूना-सांश.

आभार-प्रदर्शन.



आ निबन्धनग्रहान्मक पत्रनो प्रथम अंक गया ज्येष्ठ मासमां प्रकट थयो हनो ४ म-
हिना पछी आज आ रीजो अंक वाचकोना हाथमां समर्पवामां आवे छे.

आ प्रयास फक्त आ संस्थाना स्थापक अने पत्रना संपादक मुनिश्रीना एक मात्र साहित्यप्रेम सतत अध्यवसायना फल स्वरूपे ज छे. जैन समाजमां आवा प्रकारना उच्च कोटिना साहित्यने समजनार के नेमां रस लेनार गण्या गांध्या पुनर्गोपन होवाथी, आ कार्यमां समाज तरफथी सहजे घणुं मोदुं उत्तेजन मळी जशे एवा आशा थी तो, आ (कार्यनो) प्रारंभ करवामां आव्यो ज न हतो. परंतु, जे बे चार केही सज्जनोए, आ कार्यमाटे प्रारंभिक मदत आपवाहुं विश्वस्त वचन पृथ्वी मुनिराज श्रीजिनविजयजीने आन्युं हनुं नेमनाज विश्वास उपर आधार राखीने आनी शुरुआत करवामां आवी हती. परंतु प्रथम अंकना मुद्रणकाल दूरभ्यान ज ते केही सज्जनो तरफथी सविशेष उदासीन वृत्तिनो अनुभव थयो अने तेथी मुनिश्रीए आदिम नेज अंतिम पचा रूपमां गत अंकने प्रकट करावानी व्यवस्था करी. पण, जैन साहित्यना सद्व्याप्ये, नेज अरन्तामां, मुंबई निवासी उदारचिन्त साहित्यप्रिय श्रीयुत भाई श्रीहरगोविंददास रामजीए, अमुक वर्षो पर्यंत, निरपेक्षभावे आ कार्यमां सोल्लास संपूर्ण अर्थिक सहायता आपवानी बलाधारण इच्छा प्रकट करी, आ कार्यने व्यवथिन रूपे चालू राखवा माटे उक्त मुनिश्रीने सादर आग्रह कर्यो. ए भाईश्रीनी आवी अचिन्त्य सहायता-निरपेक्ष उदारनाना योग्ये ज आज आ रीजो अंक अमे वाचकोने अर्पण करीए छीए अने भविष्यमा पण हवे यथासमय करता रहीशु.

श्रीयुत भाई श्रीहरगोविंददासजी पोतानी आवी मोटी प्रशंसनीय उदारनाना कारणे आ समाज अने पत्रना एक मोटा "संरक्षक" बन्या छे, एटलुंज नहीं, परंतु तेमनी आ उदारताए जैन साहित्यना अभ्यासी अने रसिक जनो उपर अनुपम उपकार कर्यो छे. अमे अमारी आ संस्था तरफथी तेमज जैन साहित्य संशोधकना सकल सुख वाचको तरफथी भाई श्री हरगोविंददास रामजीने ए शायतमाटे अंतःकरण पूर्वक अनेकानेक धन्यवाद आपीए छीए अने तेमना हाथे आवां अनेकानेक सुकृत्यो थायो एन सदा इच्छीए छीए. तथास्तु.

बळी, जे जे सद्वृत्तस्थाए आ संस्थाना पेड़न, बाईस पेड़न. सहायक के लाईफ मेंबर विंगेर थई प्रस्तुत कार्यमां जे उदार आधिक सहायता आपी छे अथवा आप्या करे छे, तेमने पण हार्दिक धन्यवाद आपवामां आवे छे अने आ नीचे तेमनां शुभ नामां आदरपूर्वक प्रकट करवामां आवे छे.

पेड़न.

श्रीयुत हीराळाल अमृतलाल शाह. बी. ए. मुंबई.

बाईस पेड़न.

श्रीयुत केशवलाल प्रेनचंद मोदी. बी. ए. एल. एल. बी. वकील-अमदावाद.

सहायक.

श्रीयुत मनसुखलाल खजीभाई मेहता. मुंबई.
शेठ कांतिलाल गगलभाई हाथीभाई, पूना.
शेठ केशवलाल मणीलाल शाह, पूना.
शेठ बाबूलाल नानचंद शगवानदास झवेरी, पूना.

लाईफमैंबर.

श्रीयुत बाबू राजकुमार सिंहजी बट्टीदासजी. कलकत्ता.
श्रीयुत बाबू पूरण चंदजी नाहार. एम्. ए. एल् एल् बी. कलकत्ता.
शेठ लालभाई कल्याणभाई झवेरी, बडोदरा (मुंबई).
शेठ नरोत्तमदास भाणजी, मुंबई.
शेठ दामोदरदास, त्रिभुवनदास भाणजी, मुंबई. ~
शेठ त्रिभुवनदास भाणजी जैन कन्याशाला, भावनगर.
शेठ केशवजीभाई माणेकचंद, मुंबई.
शेठ देवकरणभाई मूलजीभाई, मुंबई.
शेठ गुलाबचंद देवचंद, मुंबई.
श्रीयुत मोतीचंद गिरधरलाल कापडिया बी. ए. एल् एल्. बी. सोलीसीटर, मुंबई.
श्रीयुत केशरी चंदजी भंडारी, इंदौर.
शाह अमृतलाल एण्ड भगवानदास कुं. मुंबई.
शाह चंदुलाल वीरचंद कृष्णाजी, पूना.
शाह धनजीभाई घखतचंद साणंदवाळा, हाल पूना.
शाह वालुभाई शामचंद, तळेगाम (दमढेरे).
शाह चुनिलाल झवेरचंद, मुंबई.
शाह भोगीलाल चुनिलाल, सोलापूरबजार, पूना कॅप.

तथा दानवीर उदारात्मा शेठ परमानंददास रतनजी (निवासस्थान घाटकोपर, मुंबई.) तरफथी मुनिराज श्रीजिनविजयजी म. नी साहित्यसेवास्वरूप सत्प्रवृत्तिमां प्रारंभ-धीज जे उदार सहायता मळ्या करे छे, ते माटे, तेओ शेठश्रीनुं पण आ स्थळे अन्तःकरणपूर्वक अभिनन्दन करवामां आवे छे.

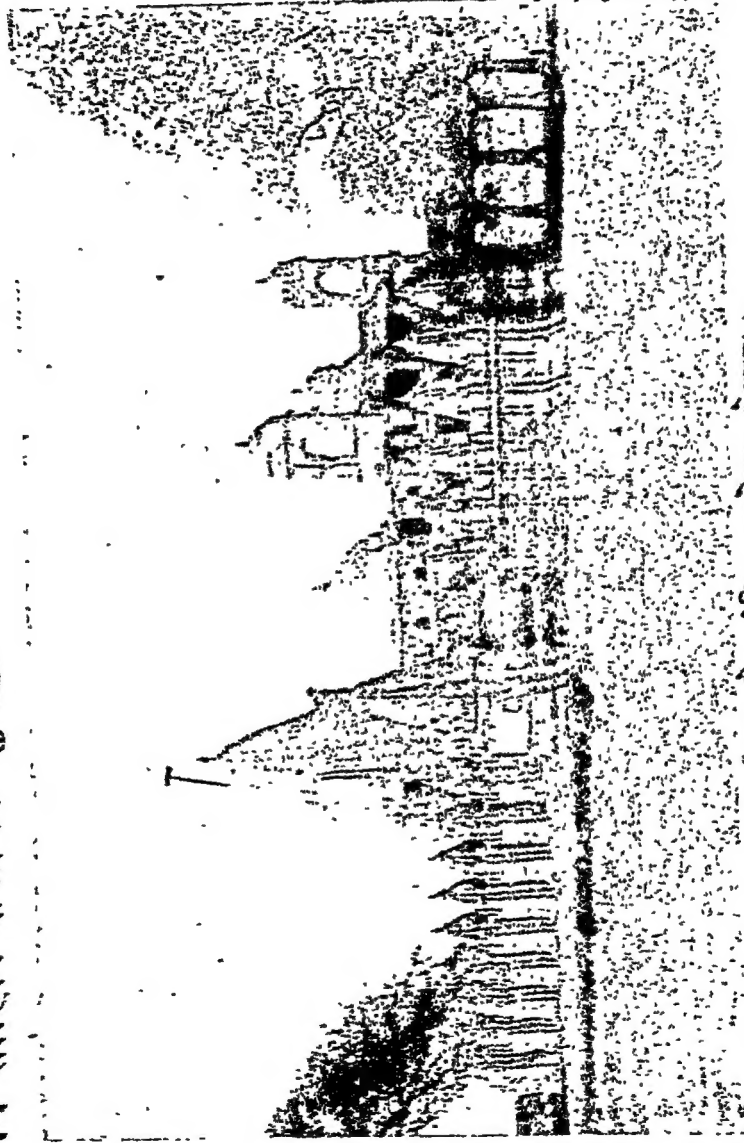
आशा छे के आर्वाज रीते बीजा पण सद्गृहस्थो यथाशक्ति पोतानी उदारता बतावी जैन धर्मना आ गौरव प्रकाशक पुण्य कार्यमां सहायक थशे. एज विनंती.

निवेदक-

जैन सा. सं. समाजना कार्यवाहको.

व्यवस्थापकनुं निवेदनः--प्रेस विगेरेनी हाडमारीओने लीधे वाचकोने जो नियमित समय उपर जैन साहित्य संशोधक न गळे तो ते त्रिषयमां धैर्य रखवानी जरूर छे. आजकाल छपामणीनुं काम केटलुं वधुं त्रासदायक थई पडथुं छे, ते, जेने एवाबतनो थोडो घणो अनुभव थयो होय तेज समजी शके तेम छे. नियत समय उपर प्रकट करवानी बनती कोशीस अमारा तरफथी करवामां आवे छेज. किंबहुना ?

जैन साहित्य संशोधक



पार्श्वनाथ जैन मंदिर, कर्सेडंगा, मेवार ।

॥ अर्हम् ॥

नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय ।

जै न सा हि त्य सं शो ध क

‘पुरिसा । सच्चमेव समाभिजाणाहि । सच्चस्साणाए उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ ।’

‘जे एगं जाणइ से सच्चं जाणइ; जे सच्चं जाणइ से एगं जाणइ ।’

‘दिट्ठं, सुयं, मयं, विण्णायं जं एत्थं परिकहिज्जइ ।’

—निर्ग्रन्थप्रवचन-आचारांगसूत्र ।

भाग १]

हिन्दी लेख विभाग

[अंक २

जैनेन्द्र व्याकरण और आचार्य देवनन्दी ।

[लेखक—श्रीधुत पं. नाथूरामजी प्रेमी, सम्पादक जैनहितैषी ।]

जैनेन्द्र ।

इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्नापिशलीशाकटायनाः ।

पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टौ च शाब्दिकाः ॥

—आनुपाठ ।

मुग्धबोधकर्ता पं० बोपदेवने उक्त श्लोकमें जिन आठ व्याकरणोंके नामोंका उल्लेख किया है, उनमें एक ‘जैनेन्द्र’ भी हैं । ये जैनेन्द्र अथवा जैनैन्द्र व्याकरणके कर्त्ता कौन थे इस विषयमें इतिहासज्ञोंमें कुछ समय तक बड़ा विवाद चला था । डॉ० किल हार्नने इसे जिनदेव अथवा भगवान् महावीरद्वारा इन्द्रके लिए कहा गया सिद्ध करनेका प्रयत्न किया

था और इसके सुबूतमें उन्होंने कल्पसूत्रकी समय-सुन्दरकृत टीका, और लक्ष्मीवल्लभकृत उपदेशमालाकरणिकाका यह उल्लेख पेश किया था कि जिनदेव महावीर जिस समय ८ वर्ष के थे उस समय इन्द्रने उनसे शब्दलक्षणसंबंधी कुछ प्रश्न किये और उनके उत्तररूप यह व्याकरण बतलाया गया, इसलिये इसका नाम जैनेन्द्र पड़ा ।—

यदिन्द्राय जिनन्द्रेण कौमारोपि निरूपितम् ।

ऐन्द्रं जैनेन्द्रमिति तत्पाहुः शब्दानुशासनम् ॥

श्वेताम्बरसम्प्रदायके और भी कई ग्रन्थोंमें इस

प्रकारके उल्लेख मिलते हैं। कल्पसूत्रकी विनयविजय कृत सुयोधिकाष्टिकांमें लिखा है:—

“ [शक्रः] यत्र भगवान् तिष्ठति तत्र पण्डितगेहं समाजगम । अ गत्य च पण्डितयोग्ये आसने भगवन्तं उपवेदय पण्डितमनोगतान् सन्देहान् पप्रच्छ, श्रींवांरोऽपि बालोऽयं किं वक्ष्यतीत्युत्कर्णेण सकललोकेषु सर्वाणि उत्तराणि ददौ, ततो 'जैनेन्द्रव्याकरणं' ब्रूते । यतः—

सकलं य तत्समकलं भगवंतं आसने निवेदितां ।

सहस्र लक्षणं पुच्छे वाग्वर्णं अवयवा इदं ॥ ”

अर्थात् भगवानको मातापिताने पाठशालामें गुरुके पास पढ़नेके लिए भेजा है, यह जानकर इन्द्र स्वर्गसे आया और पण्डितके घर, जहां भगवान थे वहां, गया। उसने भगवानको पण्डितके आसनपर बिठा दिया और पण्डितके मनमें जो जो सन्देह थे, उन सबको पूछा। जब सब लोक यह सुननेके लिए उत्कर्ण हो रहे थे कि देखें यह बालक क्या उत्तर देता है, भगवान वीरने सब प्रश्नोंके उत्तर दे दिये, तब 'जैनेन्द्र व्याकरण' बना।

परंतु इस प्रसंगके वे सब उल्लेख अपेक्षाकृत अर्वाचीन ही हैं जिनमें भगवानके उत्तररूप इस व्याकरणका नाम 'जैनेन्द्र' बतलाया है। प्राचीन उल्लेखोंमें इसका नाम जैनेन्द्रकी जगह 'ऐन्द्र' प्रकट किया गया है। जैसा कि आवश्यकसूत्रकी हरिभट्टीयवृत्तिके पृष्ठ १८२ में—

“ शक्रश्च तत्समक्षं लेखाचार्यसमक्षं भगवन्तं तीर्थकरं आसने निवेदय शब्दस्य लक्षणं पृच्छति । भगवतः च व्याकरणं अभ्यधायि । व्याक्रियन्ते लौकिकसामयिकाः शब्दाः अनेन इति व्याकरणं शब्दशास्त्रम् । तदवयवाः केचन उपाध्यायेन गृह्यन्ताः, ततश्च ऐन्द्रं व्याकरणं संजातम् । ”

इसी प्रकार सुप्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र अपने योगशास्त्रके प्रथम प्रकाशमें लिखते हैं:—

“ मातापितृभ्यामन्येषुः प्रारब्धेऽध्यापनोत्सवे ।

आः सर्वज्ञस्य शिष्यत्वमितीन्द्रस्तमुपास्थित ॥५६॥

उपाध्यायासने तस्मिन्वासवेनापवेशितः ।

प्रणम्य प्रार्थितः स्वामी शब्दवाराणं जगौ ॥५७॥

इदं भगवतोऽन्याय प्रोक्तं इन्द्रानुज्ञामनम् ।

उपाध्यायेन तच्छ्रुत्या लोकेऽनेन्द्रमितीरितम् ॥ ५८ ॥

इसके अनुसार भगवानने इन्द्रके लिये जो शब्दानुशासन कहा, उपाध्यायने उसे स्तुतयार लोकमें

'ऐन्द्र' नामसे प्रकट किया। अर्थात् इन्द्रके लिये जो व्याकरण कहा गया, उसका नाम 'ऐन्द्र' हुआ।

प्राचीन कालमें इन्द्रनामक आचार्यका बनाया हुआ एक संस्कृत व्याकरण था। इसका उल्लेख अनेक ग्रन्थोंमें मिलता है। ऊपर दिये हुए उपदेव के श्लोकमें भी उसका नाम दर्ज है। हरिवंशपुराणके कर्त्ताने देवमन्दिको 'इन्द्रचंद्राकजैनेन्द्रव्यापिब्याकरणेक्षिणः' विशेषण दिया है। शब्दार्णवचंद्रिकाकी ताडवत्रवाली प्रतिमें, जो १३ वीं शताब्दिके लगभगकी लिखी हुई मालूम होती है, “ इन्द्रश्चन्द्रः शकटतनयः ” आदि श्लोकमें इन्द्रके व्याकरणका उल्लेख है। बहुत समय हुआ यह नष्ट होगया है^१। जब यह उपलब्ध ही नहीं है तब इसके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। यद्यपि आजकलके समयमें इस बातपर कोई भी विद्वान् विश्वास नहीं कर सकता है कि भगवान् महावीरने भी कोई व्याकरण बनाया होगा और वह भी मागधी या प्राकृतका नहीं, किन्तु ब्राह्मणोंकी खास भाषा संस्कृतका—तो भी यह निस्सन्देह है कि वह व्याकरण 'जैनेन्द्र' तो नहीं था। यदि बनाया भी होगा तो वह 'ऐन्द्र' ही होगा। क्यों कि हरिभट्टसूरि और हेमचंद्रसूरि उसीका उल्लेख करते हैं जैनेन्द्रका नहीं। जान पड़ता है, विनयविजय और लक्ष्मीवल्लभने पीछेसे 'ऐन्द्र' को ही 'जैनेन्द्र' बना डाला है। उनके समयमें भी 'ऐन्द्र' अप्राप्य था, इसलिए उन्होंने प्राप्य 'जैनेन्द्र' को ही भगवान महावीरकी कृति बतलाना विशेष सुखकर और लाभप्रद सोचा होगा।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि हरिभट्टसूरि विक्रमकी आठवीं शताब्दिके और हेमचंद्रसूरि तेरवीं शताब्दिके विद्वान् हैं जिन्होंने 'ऐन्द्र' का भगवानका व्याकरण बतलाया है; परंतु 'जैनेन्द्र'

१ डॉ० ए० सी० वर्नेलने इन्द्रव्याकरणके विषयमें चीनी तिब्बतीय और भारतीय साहित्यमें जो जो उल्लेख मिलते हैं उनको संग्रह करके 'ओन दि ऐन्द्रस्कूल ऑफ सेस्कृत ग्रामेरियन्स' नामकी एक बड़ी पुस्तक लिखी है।

“ तेन प्रणयमेन्द्रं तदस्मद्व्याकरणं भुवि ”

—कथानिरुत्तरागर, तरंग ४।

को भगवत्प्रणीत बतलानेवाले विनयविजय और लक्ष्मीवल्लभ विक्रमकी अठारहवीं शताब्दिमें हुए हैं।

विनयविजयजीके इस उल्लेखने बड़ा काम किया कि भगवत्प्रणीत व्याकरणका नाम 'जैनेन्द्र' है। यह निश्चय है कि भगवत्प्रणीत व्याकरणको 'जैनेन्द्र' लिखते समय उनका लक्ष्य इस देवनन्दि या पूज्यपादकृत 'जैनेन्द्र' पर ही रहा होगा; परन्तु जान पड़ता है कि वे इस विषयमें उक्त उल्लेखके सिवाय और कुछ प्रयत्न नहीं कर सके। यह काम बाकी ही पड़ा रहा कि वह जैनेन्द्र व्याकरण लोगोंके समक्ष उपस्थित कर दिया जाय और भक्तजन अपने भगवानकी व्याकरणज्ञता देखकर गद्गद हो जायें। गुहरीकी बात है कि उनके कुछ ही समय बाद वि० सं० १७९७ में एक श्वेताम्बर विद्वान्ने इस कार्यको पूरा कर डाला—साक्षात् महावीर देवका बनाया हुआ व्याकरण तैयार कर दिया और उसका दूसरा नाम 'भगवद्वाग्वादिनी' रखवा !

इस भगवद्वाग्वादिनी की सबसे पहली प्रतिके दर्शन करनेका सौभाग्य हमें पूनेके भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें प्राप्त हुआ। यह तक्षक नगरमें रत्नर्षि नामक लेखकद्वारा वि० सं० १७९७ में लिखी गई थी। इसकी पत्रसंख्या ३०, और श्लोकसंख्या ८०० है। प्रत्येक पत्रमें ११ पंक्तियाँ, और प्रत्येक पंक्तिमें ४० अक्षर हैं। प्रति बहुत शुद्ध है। जैनेन्द्रका सूत्रपाठ मात्र है—और वह सूत्रपाठ है जिसपर शब्दार्णवचन्द्रिका टीका लिखी गई है। इस वाग्वादिनीके आविष्कारक अच्छे वैय्याकरण दिखते हैं उन्होंने शक्तिभर इस बातकी सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि इसके कर्त्ता साक्षात् महावीर भगवान हैं। दिगम्बरी देवनन्दीका बनाया हुआ यह कभी नहीं हो सकता। उनकी सब युक्तियाँ हमने इस ग्रन्थके परिचयमें—जो परिशिष्टमें दिया गया है—उद्धृत करदी हैं। उन सब पर विचार करनेकी यहाँ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इस लेखको पूरा पढ़लेने पर पाठकोंको वे सब युक्तियाँ स्वयं ही सारहीन प्रतीत होने लगेंगी।

हमारा अनुमान है कि डॉ० कीलहार्नके हाथमें यह 'भगवद्वाग्वादिनी' की प्रति अवश्य पड़ी होगी और इसीकी कृपासे प्रेरित होकर उन्होंने अपना पूर्वोक्त लेख लिखा होगा। उनके लेखमें जो श्लोकादि प्रमाणस्वरूप दिये गये हैं वे सब इसीपरसे लिये गये जान पड़ते हैं। अस्तु।

डॉ० कीलहार्नके इस भ्रमको सबसे पहले प्रो० पाठकने दूर किया था और अब तो जैनेन्द्र व्याकरणकी बहुत प्रसिद्धि हो चुकी है। उसकी या उसके परिशोधित-परिवर्तित संस्करणकी कई टीकायें भी छप चुकी हैं। इस लिए अब सभी विद्वान् इस विषयमें सहमत हो गये हैं कि जैनेन्द्र व्याकरण किसी तीर्थंकर या भगवानका नहीं किन्तु अन्य वैयाकरणोंके समान ही एक विद्वानका बनाया हुआ है और उनका नाम देवनन्दि या पूज्यपाद था।

देवनन्दि अथवा पूज्यपाद।

श्रीगृह्यपिच्छमुनिपत्य बलाकापच्छः

शिष्योऽजनिष्ठ भुवनत्रयवर्तिकीर्तिः।

चारित्र्यचञ्चुरखिलावनिपालमौलि-

मालाशिलीमुखाविराजितपादपद्मः ॥ १ ॥

एवं महाचार्यपरम्परायां

स्यात्कारमुद्राङ्किततत्त्वदीपः।

भद्रः समन्ताद्गुणतो गणेशः

समन्तभद्रोऽजनि वादिसिंहः ॥ २ ॥

ततः—

यो देवनन्दिप्रथमाभिधानो

बुद्ध्या महत्या स जिनैन्द्रबुद्धिः।

श्रीपूज्यपादोऽजनि देवताभि-

र्थपूजितं पादयुगं यदीयम् ॥ ३ ॥

जैनेन्द्रं निजशब्दभागमतुलं सर्वार्थसिद्धिः परः

सिद्धान्तो निपुणत्वमुदकवितां जैनाभिप्रेक्षः।

छन्दः सूक्ष्माभियं समाधिगतं स्वास्थं यदीयं विदा-

माख्यातीह स पूज्यपादमुनिपः पूज्यो मुनीनां गणैः ॥ ४ ॥*

इस अवतरणके तीसरे श्लोकका अभिप्राय यह है कि उनका पहला नाम देवनन्दि था, बुद्धिकी

* ये श्लोक श्रौतुक्त पं० कलापा भरमापा नितबेने सर्वार्थसिद्धिकी भूमिकामें उद्धृत किये हैं; पर यह नहीं सूचित किया है कि ये कहाँके हैं।

महत्ताके कारण वे जिनेन्द्रबुद्धि कहलाये और देवोंने उनके चरणोंकी पूजा की इस कारण उनका नाम पूज्यपाद हुआ ।

श्रवणवेलगोल के नं० १०८ के मंगराज कविकृत शिलालेखमें जो शकसंवत् १३६५ [वि० सं० १५००] का लिखा हुआ है, नीचे लिखे श्लोक उपलब्ध होते हैं:—

श्रीपूज्यपादोद्भूतधर्मराज्य-
स्ततः सुराधीश्वरपूज्यपादः ।
यदीयवैदुष्यगुणानिदानीं
वदन्ति शास्त्राणि तदुद्धृतानि ॥ १५ ॥
धृतविश्वबुद्धिरयमत्रयोगिभिः
रुतकृत्यभावमनुविभ्रदुच्चकैः ।
जिनवद्भूव यदनङ्गाचापहस्त
जिनेन्द्रबुद्धिरिति साधुवर्णितः ॥ १६ ॥
श्रीपूज्यपादमुनिरप्रतिमौपधाज्जि-
र्जायाद्विदेहजिनदर्शनपूतगात्रः ।
यत्पादधौतजलसंस्पर्शनप्रभावात्
कालायसं किल तदा कनकीचकार ॥ १७ ॥

इन श्लोकोंसे भी उनके पूज्यपाद और जिनेन्द्र-बुद्धि नाम प्रकट होते हैं ।

नान्दिसंघकी पट्टावलीके नीचे लिखे हुए श्लोक-से भी देवनन्दिका दूसरा नाम पूज्यपाद था, यह स्पष्ट होता है ।

यशःकीर्तिर्यशोनन्दी देवनन्दी महामतिः ।

श्रीपूज्यपादापराख्यो गुणनन्दी गुणाकरः ॥

इनका सांक्षिप्त नाम 'देव' भी था । आचार्य जिनसेन, वादिराजसूरि, और पुञ्जाटसंघीय जिनसेनने इन्हें इसी सांक्षिप्त नामसे स्मरण किया है—

कवीनां तार्थरुहेवः कितरां तत्र वर्ण्यते ।

विदुषां वाङ्मल्लघांसि तार्थं यस्य वचोमयम् ॥ ५२ ॥

—आदिपुराण प्रथम पर्व ।

अचिन्त्यमहिमा देवः सोऽभिवंधो हितैषिणा ।

शब्दाश्च येन सिद्ध्यन्ति साधुत्वं प्रतिलभिताः ॥ १८

—पार्श्वनाथचरित प्रथम सर्ग ।

इन्द्र-चन्द्रार्कजैनेन्द्रव्यापि(डि)व्याकरणोक्षिणः ।

देवस्य देववन्द्यस्य न वंदते गिरः कथम् ॥ ३१

—हरिवंशपुराण ।

अनेक लेखकोंने उन्हें केवल देवनान्दि नामसे और केवल पूज्यपाद नामसे स्मरण किया है और दोनों नामोंसे उन्हें वैयाकरण माना हैं । आचार्य शुभचन्द्र पाण्डवपुराणमें लिखते हैं—

पूज्यपादः सदापूज्यपादः पूज्यैः पुनातु माम् ।

व्याकरणार्णवो येन तीर्णो विस्तीर्णसद्गुणः ॥

महाकवि धनंजय अपनी नाममालामें पूज्यपादको लक्षणग्रन्थ (व्याकरण) का कर्ता मानते हैं:—

प्रमाणमकलंकस्य पूज्यपादस्य लक्षणम् ।

धनंजयकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम् ॥ २० ॥

श्रवणवेलगोल के ४७ नंबरके शिलालेखमें श्रीमेघचन्द्र त्रैविद्यदेवकी स्तुतिमें नीचे लिखा हुआ श्लोक दिया है:—

सिद्धान्ते जिनवीरसेनसदृशः शास्त्राट्टेजनीभस्करः,

पट्टकैष्वकलंकदेवविबुधः साक्षादयं भूतले ।

सर्वव्याकरणे विपाश्चिदधिपः श्रीपूज्यपादः स्वयं,

त्रैविद्योत्तममेघचन्द्रमुनिपो वादीभपञ्चानमः ॥

इसमें मेघचन्द्रको पूज्यपादके समान व्याकरणका ज्ञाता बतलाया है । इससे पूज्यपादका वैयाकरण होना सिद्ध है । ये मेघचन्द्र आचारसारके कर्ता वीरनान्दि सिद्धान्तचक्रवर्तिके गुरु थे और इनका स्वर्गवास शक संवत् १०३७ (वि० सं० ११७२) में हुआ था ।

अनगारधर्मास्मृतटीकाकी प्रशान्तिमें—जो वि० सं० १३०० में लिखी गई है—पण्डित आशाधरजीने लिखा है कि मैंने जैन न्याय और जैनेन्द्र व्याकरण शास्त्र पण्डित महावीरसे धारा नगरीमें पढ़े—“ धारायामपठज्जिनप्राप्ति-वाकशास्त्रे महावीरतः । ” और ' जिनप्रमितिवाकशास्त्रे ' की टीका में लिखा है—“ जैनेन्द्र प्रमाणशास्त्रं जैनेन्द्रव्याकरणं च । ” इससे यह निश्चय होता है कि आशाधरके समयमें जैनेन्द्र व्याकरणका पठन-पाठन होता था । सागार और अनगार धर्मास्मृतटीकामें कई जगह प्रमाणरूपमें व्याकरणके सूत्र दिये हैं और वे इसी देवनन्दिकृत जैनेन्द्रव्याकरणके हैं ।

कर्नाटक देशमें वृत्तविलास नामके एक जैन

कवि हो गये हैं। उन्होंने अमितगतिकृत धर्म-परीक्षाके आधारसे वि० सं० १२१७ के लगभग 'धर्मपरीक्षा' नामका ग्रन्थ कनडी भाषामें लिखा है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमें पूज्यपाद आचार्यकी बड़ी प्रशंसा लिखी है और वे जैनेन्द्रव्याकरण के रचयिता थे, इस बातका स्पष्ट उल्लेख किया है। साथ ही उनकी अन्यान्य रचनाओंका भी परिचय दिया है:--

भरादि जैनन्द् भासुरं=एनल् ओरेद पाणिनीयके टीकुं व-
रेदं=तत्त्वार्थम् टिप्पणदिन् आरिपिदं यत्र-मंत्रादिशास्त्रोक्तकरम् ।
भूरक्षणार्थं विराचिसि जसमुं तालिददं विश्वविद्याभरणं
भव्यालियाराधितपदकमलं पूज्यपादं व्रतीन्द्रम् ॥

इसका अभिप्राय यह है कि व्रतीन्द्र पूज्यपादने-
जिनके चरणकमलोंकी अनेक भव्य आराधना
करते थे और जो विश्वभरकी विद्याओंके शृंगार
थे-- प्रकाशमान जैनेन्द्र व्याकरणकी रचना की,
पाणिनि व्याकरणकी टीका लिखी, टिप्पणद्वारा
(सर्वार्थसिद्धि नामक तत्त्वार्थसूत्रटीका) तत्त्वार्थका
अर्थविवोधन किया और पृथ्वीकी रक्षाके
लिए यंत्रमंत्रादि शास्त्रकी रचना की।

आचार्य शुभचन्द्रने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ ज्ञाना-
र्णवके प्रारंभमें देवनन्दीकी प्रशंसा करते हुए
लिखा है:

अपाकुर्वन्ति यद्वाचः कायवाक्चित्तसंभवम् ।
फलङ्कमद्भिनां सोऽयं देवनन्दी नमस्यते ॥

अर्थात् जिनकी वाणी देह धारियोंके शरीर,
वचन और मन सम्बन्धी मैलको मिटा देती है, उन
देवनन्दीको मैं नमस्कार करता हूँ। इस श्लोकमें
देवनन्दीकी वाणीकी जो विशेषता बतलाई है, वह
विचार योग्य है। हमारी समझमें देवनन्दीके तीन
ग्रन्थोंको लक्ष्य करके यह प्रशंसा की गई है। शरी-
रके मैलको नाश करनेके लिए उनका वैद्यकशास्त्र,
वचनका मैल (दोष) मिटानेके लिए जैनेन्द्र व्या-
करण और मनका मैल दूर करनेके लिए समाधि-
तंत्र है। अतएव इससे भी मालूम होता है कि
वचनदोषको दूर करनेवाली उनकी कोई रचना
अवश्य है और वह जैनेन्द्र व्याकरण ही हो सक-
ती है।

इनके सिवाय विक्रमकी आठवीं शताब्दिके बाद
कनडी भाषामें जितने काव्य ग्रन्थ लिखे गये हैं,
प्रायः उन सभीके प्रारंभिक श्लोकोंमें पूज्यपादकी
प्रशंसा की गई है*।

इन सब उल्लेखोंसे यह बात अच्छी तरह स्पष्ट
हो जाती है कि पूज्यपाद एक बहुत ही प्रसिद्ध ग्रंथ-
कार हो गये हैं और देवनन्दि उनका ही दूसरा
नाम था। साथ ही वे सुप्रसिद्ध जैनेन्द्र व्याकरणके
कर्ता थे। इस बातको इतना विस्तारसे लिखनेकी
आवश्यकता इसी कारण हुई कि बहुत लोग पूज्य-
पाद और देवनन्दि को जुदा जुदा मानते थे और
कोई कोई पूज्यपादको देवनन्दिका विशेषण ही
समझ बैठे थे।

जैनेन्द्रकी प्रत्येक हस्तलिखित प्रतिके प्रारंभमें
नीचे लिखा श्लोक मिलता है:—

लक्ष्मीरात्यन्तिकी यस्य निवध्याऽवभासते ।

देवनन्दितपूजेशं नमस्तस्मै स्वयंभुवे ॥

इसमें ग्रन्थकर्ताने 'देवनन्दितपूजेशं' पदमें जो
कि भगवानका विशेषण है, अपना नाम भी प्रगट
कर दिया है। संस्कृत प्राकृत ग्रन्थोंके मंगलाचर-
णोंमें यह पद्धति अनेक विद्वानोंने स्वीकार की है*।
इससे स्वयं ग्रन्थकर्ताके वचनोंसे भी जैनेन्द्रके
कर्ता 'देवनन्दि' ठहरते हैं।

ॐ गणरत्न महोदधिके कर्ता वर्धमान (श्वेताम्ब-

* देखो हिस्ट्री आफ दि कनडी लिटरेचर ।

* देखिए नीतिवाक्यामृतके मंगलाचरणमें सोमदेव
कहते हैं:—

“सोमं सोमसमाकारं सोमाभं सोमसंभवम् ।

सोमदेवं मुनिं नत्वा नीतिवाक्यामृतं ब्रुवे ॥”

२ आचार्य अनन्तवीर्य लघायस्त्रयकी वृत्तिके प्रारंभमें
कहते हैं—

“जिनाधीनं मुनिं चन्द्रमकलं पुनः पुनः ।

अनन्तवीर्यभानौषि स्थाद्वादन्यायनायकम् ॥”

३ भावसंग्रहमें देवसेनसूरि मंगलाचरण करते हैं:—

पणमिय सुरसेणुयं मुण्णिगणहरवंदियं महावीर ।

बोच्छामि भावसेगहमिणमो भवपवोहट्टं ॥

* शालातुरीयशकटाङ्गजचन्द्रगोमि—

दिग्वज्रभर्तृहरिवामनभोजमुल्याः ।

र) और हैम शब्दानुशासनके लघुन्यास बनाने-वाले कनकप्रभ भी जैनेन्द्र व्याकरणके कर्ताका नाम देवनन्दि ही बतलाने हैं। अतः हम समझते हैं कि अब इस विषयमें किसी प्रकारका कोई सन्देह बाकी नहीं रह जाता है कि यह व्याकरण देवनन्दि या पूज्यपादका बनाया हुआ है।

प्रथम जैन व्याकरण ।

जहाँ तक हम जानते हैं, जैनोंका सबसे पहला संस्कृत व्याकरण यही है। अभी तक इसके पहलेका कोई भी व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है। शाकटायन, सिद्धहेमशब्दानुशासन आदि सब व्याकरण इससे पीछेके बने हुए हैं। इस ग्रन्थकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके सूत्र बहुत ही संक्षिप्त हैं। 'अर्धमात्रालाघवं पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैव्याकरणाः।' इस प्रवादकी सच्चाई इसके सूत्रोंपर दृष्टि डालनेसे बहुत अच्छी तरह स्पष्ट होती है। संज्ञाकृत लाघवको भी इसमें स्वीकार किया है। जबकि पाणिनियमें संज्ञाकृत लाघवग्रहण नहीं किया है। इसकी प्रशंसामें जैनेन्द्रप्रक्रियामें लिखा है:—

नमः श्रीपूज्यपादाय लक्षणं यदुपकम् ।

यदेवात्र तदन्यत्र यन्नात्रास्ति न तत् क्वचित् ॥

संस्करण भेद ।

जैनेन्द्र व्याकरणका मूल सूत्रपाठ दो प्रकारका उपलब्ध है—एक तो वह जिसपर आचार्य अभय-नन्दिकी 'महावृत्ति' तथा श्रुतकीर्तिकृत 'पंचवस्तु' नाम की प्रक्रिया है; और दूसरा वह जिसपर सोम-देव सूरिकृत 'शब्दार्णवचन्द्रिका' और गुणनन्दिकृत 'जैनेन्द्रप्रक्रिया' है। पहले प्रकारके पाठमें लगभग ३००० और दूसरेमें लगभग ३७०० सूत्र हैं, अर्थात् एकसे दूसरेमें कोई ७०० सूत्र अधिक हैं। और जो ३००० सूत्र हैं वे भी दोनोंमें एकसे नहीं हैं। अर्थात् दूसरे सूत्रपाठमें पहले सूत्रपाठके सेकड़ों सूत्र परिवर्तित और परिवर्धित भी किये गये हैं। पहले प्रकारका सूत्रपाठ पाणिनीय सूत्रपा-

ठके ढंग का है, वर्तमानदृष्टिसे यह कुछ अपूर्णसा जान पड़ता है और इसी लिए महावृत्तिमें बहुतसे वार्तिक तथा उपसंख्यान आदि बना कर उसकी पूर्णता की गई दिखलाई देती है, जब कि दूसरा पाठ प्रायः पूर्णसा जान पड़ता है और इसी कारण उसकी टीकाओंमें वार्तिक आदि नहीं दिखलाई देते। दोनों पाठोंमें बहुतसी संज्ञायें भी भिन्न प्रकार की हैं।

इन भिन्नताओंके होते हुए भी दोनों पाठोंमें समानता भी कम नहीं है। दोनोंके अधिकांश सूत्र समान हैं, दोनोंके प्रारंभका मंगलाचरण विलकुल एक ही है और दोनोंके कर्ताओंका नाम भी देवनन्दि या पूज्यपाद लिखा हुआ मिलता है।

असली सूत्रपाठ ।

अब प्रश्न यह है कि इन दोनोंमेंसे स्वयं देवनन्दि या पूज्यपादका बनाया हुआ असली सूत्रपाठ कौनसा है। सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्रो० के० बी० पाठकका कथन है कि दूसरा पाठ जिसपर सोम-देवकी शब्दार्णवचन्द्रिका लिखी गई है—वास्तविक पाठ है। हमारे दिगम्बर सम्प्रदायके विद्वानोंमें श्रीयुक्त पं० पन्नालालजी वाकलीवाल और उनके अनुयायी पं० श्रीलालजी व्याकरणशास्त्री भी इसी मतको माननेवाले हैं। इसके विरुद्ध न्यायतीर्थ और न्याशास्त्री पं० वंशीधरजी दूसरे पाठको वास्तविक मानते हैं, जिसपर कि अभयनन्दिकी वृत्ति लिखी गई है। यद्यपि इन दोनोंही पक्षके विद्वानोंकी ओरसे अभीतक कोई ऐसे पुष्ट प्रमाण उपस्थित नहीं किये गये हैं जिनसे इस प्रश्नका अच्छी तरह निर्णय हो जाय; परन्तु हमको पं० वंशीधरजीका मत ठीक मालूम होता है और पाठक यह जानकर प्रसन्न होंगे कि हमें इस मतको करीब करीब निश्चिन्त मान लेनेके अनेक पुष्ट प्रमाण मिल गये हैं।

इन प्रमाणोंके आधारसे हम इस सिद्धान्तपर पहुंचे हैं कि आचार्य देवनन्दि या पूज्यपादका बनाया हुआ सूत्रपाठ वही है जिसपर अभयनन्दिने अपनी महावृत्ति लिखी है। यह सूत्रपाठ उस समयतक तो ठीक समझा जाता रहा जब तक पाल्य-कार्तिका शाकटायन व्याकरण नहीं बना था। शाय-

१ यह जैनेन्द्रप्रक्रिया गुणनन्दिकृत है या नहीं, इसमें हमें बहुत कुछ सन्देह है। आगे चलकर इस विषयका खुलासा किया गया है।

व शाकटायनको भी जैनेन्द्रके होते हुए एक जुदा व्याकरण बनानेकी आवश्यकता इसी लिए मालूम पड़ी होगी कि जैनेन्द्र अपूर्ण था, और बिना वार्तिकों और उपसंख्यानो आदिके काम नहीं चल सकता था। परन्तु जब शाकटायन जैसा सर्वांगपूर्ण व्याकरण बन चुका, तब जैनेन्द्रव्याकरणके भक्तोंको उसकी त्रुटियाँ विशेष खटकने लगीं और उनमेंसे आचार्य गुणनन्दिने उसे सर्वांगपूर्ण बनानेका प्रयत्न किया। इस प्रयत्नका फल ही यह दूसरा सूत्रपाठ है जिसपर सोमदेवकी शब्दार्णवचन्द्रिका रची गयी है। इस सूत्रपाठको चारीकीके साथ देखनेसे मालूम पड़ता है कि गुणनन्दिने समय तक व्याकरणसिद्ध जितने प्रयोग होने लगे थे उन सबके सूत्र उसमें मौजूद हैं और इसलिए उसके टीकाकारोंको वार्तिक आदि बनानेके श्रद्धाओंमें नहीं पड़ना पड़ा है। अभयनन्दिनीकी महावृत्तिके ऐसे बीसों वार्तिक हैं जिनके इस पाठमें सूत्रही बना दिये गये हैं। नीचे लिखे प्रमाणोंसे हमारे इन सब विचारोंकी पुष्टि होती है:—

१—शब्दार्णवचन्द्रिकाके अन्तमें नीचे लिखा हुआ श्लोक देखिए—

श्रीसोमदेवयतिनिर्मितेनादवनि
या नैः प्रतीतगुणनन्दितशब्दार्णवौ ।
सोऽयं सताममलत्रेतसि विस्फुरन्ता
वृत्तः सदान्तपदः परिवर्तिषीष्ट ॥

इसमें सूत्रसिद्ध गुणनन्दि आचार्यके शब्दवार्धि या शब्दार्णवमें प्रवेश करनेके लिए सोमदेवकृत वृत्तिको नौका के समान बतलाया है। इससे यह जान पड़ता है कि आचार्य गुणनन्दिने बनाये हुए व्याकरण ग्रन्थकी यह टीका है और उसका नाम शब्दार्णव है। इस टीकाका 'शब्दार्णवचन्द्रिका' नाम भी तभी अन्वर्थक होता है, जब मूल सूत्र ग्रन्थका नाम शब्दार्णव हो। हमारे इस अनुमानकी पुष्टि जैनेन्द्रप्रक्रियाके नीचे लिखे अन्तिम श्लोकसे और भी अच्छी तरहसे होती है:—

सत्त्वार्धि दधते समासमगितः स्थातार्थनामोन्नतं,
निर्ज्ञातं बहुतद्धितं कम [कृत]मिहाख्यातं यशःशालिना(न)म् ।

सैषा श्रीगुणनन्दितानितवपुः शब्दार्णवं निर्णयं,
नावत्पाश्रयतां विविक्षुमनसां साक्षात्स्वयं प्रक्रिया ॥

इसका आशय यह है कि गुणनन्दिने जिसके शरीरको विस्तृत किया है, उस शब्दार्णवको जाननेकी इच्छा रखनेवालोंके लिए तथा आश्रय लेनेवालोंके लिए यह प्रक्रिया साक्षात् नावके समान काम देगी। इसमें 'शब्दार्णव' को 'गुणनन्दि तानितवपुः' विशेषण दिया है, वह विशेष ध्यान देने योग्य है। इससे साफ समझमें आता है कि गुणनन्दिने जिस व्याकरणपर ये दोनों टीकायें—शब्दार्णव चन्द्रिका और जैनेन्द्रप्रक्रिया—लिखी गई हैं उसका नाम 'शब्दार्णव' है और वह मूल (असली) जैनेन्द्र व्याकरणके संक्षिप्त शरीरको तानित या विस्तृत करके बनाया गया है।

शब्दार्णवचन्द्रिकाके प्रारंभका मंगलाचरण भी इस विषयमें ध्यान देने योग्य है:—

श्रीपूज्यपादममलं गुणनन्दिदेवं
सोमामरवतिपूजितपादयुग्मम् ।
सिद्धं समुन्नतपदं वृषभं जिनेन्द्र
तच्छब्दलक्षणमहं विनमामि वीरम् ॥

इसमें ग्रन्थकर्ताने भगवान् महावीरके विशेषणरूपमें क्रमसे पूज्यपादका, गुणनन्दिका और आपना (सोमामर या सोमदेवका) उल्लेख किया है और इसमें वे निस्सन्देह यही ध्वनित करते हैं कि मुख्य व्याकरणके कर्ता पूज्यपाद हैं, उसको विस्तृत करनेवाले गुणनन्दि हैं और फिर उसकी टीका करनेवाले सोमदेव (स्वयं) हैं। यदि यह चन्द्रिका टीका पूज्यपादकृत ग्रन्थकी ही होती, तो मंगलाचरणमें गुणनन्दिका नाम लानेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। गुणनन्दि उनकी गुरुपरम्परामें भी नहीं हैं, जो उनका उल्लेख करना आवश्यक ही होता। अतः यह सिद्ध है कि चन्द्रिका और प्रक्रिया दोनोंके ही कर्ता यह समझते थे कि हमारी टीकायें असली जैनेन्द्रपर नहीं किन्तु उसके 'गुणनन्दितानितवपु' शब्दार्णवपर बनी हैं।

२—शब्दार्णव चन्द्रिका और जैनेन्द्रप्रक्रिया इन दोनों ही टीकाओंमें 'एकशेष' प्रकरण है; परन्तु अभयनन्दिनकृत 'महावृत्ति' वाले सूत्रपाठमें एक

१ हमारा अनुमान है कि इस प्रक्रियाका भी नाम 'शब्दार्णव प्रक्रिया' होगा, जैनेन्द्र-प्रक्रिया नहीं।

शेषको अनावश्यक बतलाया है—“स्वाभाविक-
त्वादभिधानस्यैकशेषानारम्भः । ” (१-१-९९)
और इसी लिए देवनन्दि या पूज्यपादका व्याकरण
‘अनेकशेष’ कहलाता है । चन्द्रिका टीकाके
कर्ता स्वयं ही “आदावुपज्ञोपक्रमम्” (१-४-११४)
सूत्रकी टीकामें उदाहरण देते हैं कि “देवो-
पज्ञमनेकशेषव्याकरणम्” यह उदाहरण अभयन-
न्दिकृत महावृत्तिमें भी दिया गया है । इससे सिद्ध
है कि शब्दार्णवचन्द्रिकाके कर्ता भी उस व्याक-
रणको देवोपज्ञ या देवनन्दिकृत मानते हैं, जो अ-
नेकशेष है, अर्थात् जिसमें ‘एकशेष’ प्रकरण
नहीं है । और ऐसा व्याकरण वही है जिसकी टीका
अभयनन्दिने की है ।

आचार्य विद्यानन्दि अपने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक
(पृष्ठ २६५) में ‘नैगमसंग्रह-’ आदि सूत्रकी
व्याख्या करते हुए लिखते हैं—“नयश्च नयौ च न-
याश्च नया इत्येकशेषस्य स्वाभाविकस्याभिधाने दर्श-
नात् केपांचित्था वचनोपलम्भाच्च न विरुद्ध्यते । ”
इसमें स्वाभाविकताके कारण एकशेष की अना-
वश्यकता प्रतिपादित है और यह अनावश्यकता
जैनेन्द्रके वास्तविक सूत्रपाठमें ही उपलब्ध होती
है । “स्वाभाविकत्वादभिधानस्यैकशेषानारम्भः ”
(१-१-९९) यह सूत्र शब्दार्णववाले पाठमें नहीं है,
अतः विद्यानन्द भी इसी सूत्रवाले जैनेन्द्रपाठको
माननेवाले थे । पाठकोंको यह स्मरण रखना
चाहिए कि उपलब्ध व्याकरणोंमें अनेकशेष व्याक-
रण केवल देवनन्दिकृत ही है, दूसरा नहीं ।

३—‘सर्वार्थसिद्धि’ तत्त्वार्थ सूत्रकी सुप्रसिद्ध
टीका है । इसके कर्ता स्वयं पूज्यपाद या देवनन्दि
हैं जिनका कि बनाया हुआ प्रस्तुत जैनेन्द्र व्याकर-
ण है । इस टीकामें अध्याय ५ सूत्र २४ की व्याख्या
करते हुए वे लिखते हैं—“‘अन्यतोऽपि’ इति तसि
कृते सर्वतः । ” इसी सूत्रकी व्याख्या करते हुए
राजवार्तिककार लिखते हैं—“‘दृश्यतेऽन्यतो-
पीति’ तासि कृते सर्वेषु भवेपु सर्वत इति भवति । ”
ज्ञान पड़ता है या तो सर्वार्थसिद्धिकारने इस
सूत्रको संक्षेप करके लिखा होगा, या लेखकों तथा
छपानेवालोंने प्रारंभका ‘दृश्यते’ शब्द छोड़ दिया

होगा; कुछ भी हो, पर यह पूरा सूत्र ‘दृश्यतेऽन्य-
तोपि’ ही है और यह अभयनन्दिवाले सूत्रपाठके
अ० ४ पा० ७ का ७वाँ सूत्र है । परन्तु शब्दार्ण-
ववाले पाठमें न तो यह सूत्र ही है और न इसके
प्रतिपाद्यका विधानकर्ता कोई और ही सूत्र है ।
अतः यह सिद्ध है कि पूज्यपादका असली सूत्रपा-
ठ वही है जिसमें उक्त सूत्र मौजूद है ।

४—भट्टाकलंकदेवने तत्त्वार्थराजवार्तिकमें ‘आद्ये
परोक्ष (अ० १ सू० ११)’ की व्याख्यामें “सर्वादि
सर्वनाम । ” (१-१-३५) सूत्रका उल्लेख किया
है, इसी तरह पण्डित आशाधरने अनंगारधर्मामृ-
तटीका (अ० ७ श्लो० २४) में “स्तोके प्रतिना”
(१-३-३७) और “भार्थे” (१-४-१४) इन
दो सूत्रोंको उद्धृत किया है और ये तीनों ही सूत्र
जैनेन्द्रके अभयनन्दिवृत्तिवाले सूत्रपाठमें ही मिल-
ते हैं । शब्दार्णववाले पाठमें इनका अस्तित्व
ही नहीं है । अतः अकलंकदेव और पं० आशा-
धर इसी अभयनन्दिवाले पाठको ही माननेवाले थे ।
अकलंकदेव वि० की नौवीं शताब्दिके और आशा-
धर १३ वीं शताब्दिके विद्वान् हैं ।

५—पं० श्रीलालजी शास्त्रीने शब्दार्णवचन्द्रिकाकी
भूमिकामें लिखा है कि आचार्य पूज्यपादने स्वनि-
र्मित ‘सर्वार्थसिद्धि’ में ‘प्रमाणनयैराधिगमः’
(अ० १ सू० ६) की टीकामें यह वाक्य दिया है—
“नयशब्दस्याल्पाच्यतरत्वात्पूर्वनिपातः प्राप्नोति नैप-
दोषः । अभ्यर्हितत्वात्प्रमाणस्य तत्पूर्वनिपातः । ”
और अभयनन्दिवाले पाठमें इस विषयका प्रतिपा-
दन करनेवाला कोई सूत्र नहीं है । केवल अभय-
नन्दिका ‘अभ्यर्हितं पूर्वं निपतति’ वार्तिक है ।
यदि अभयनन्दिवाला सूत्रपाठ ठीक होता तो
उसमें इस विषयका प्रतिपादक सूत्र अवश्य होता
जो कि नहीं है । पर शब्दार्णववाले पाठमें “अर्थ्य”
(१-३-११५) ऐसा सूत्र है जो इसी विषयको
प्रतिपादित करता है । इसलिए यही सूत्रपाठ देव-
नान्देकृत है । वस, पं० श्रीलालजीकी सबसे
बड़ी दलील यही है जिससे वे शब्दार्णववाले
पाठको असली सिद्ध करना चाहते हैं । इसके
सिवाय वे और कोई उल्लेख योग्य प्रमाण अपने

पक्षमें नहीं दे सके हैं। अब इसपर हमारा निवेदन समाप्त लीजिए—

“अल्पाक्षरम्” [२-२-३४] यह सूत्र पाणिनिका है और इसके ऊपर कात्यायनका “अभ्यर्हितं च” वार्तिक तथा पतंजलिका “अभ्यर्हितं पूर्वं निपतति” भाष्य है। इससे मालूम होता है कि पूज्यपादने अपनी सर्वार्थसिद्धिटीकाके इस स्थलमें पाणिनि और पतंजलिके ही सूत्र तथा भाष्यको लक्ष्यकर उक्त विधान किया है। अब इस पर यह प्रश्न होगा कि जब सर्वार्थसिद्धिकार स्वयं एक व्याकरणके कर्ता हैं, तब उन्होंने पाणिनिक और उसके भाष्यका आश्रय क्यों लिया? हमारी समझमें इसका उत्तर यह है कि पूज्यपाद स्वामी यद्यपि सर्वार्थसिद्धिकी रचनाके समय अपना व्याकरण तो बना चुके होंगे परन्तु उस समय उनके व्याकरणके विशेष प्रसिद्धि लाभ नहीं की होगी और इस कारण स्वयं उनके ही हृदयमें उसकी इतनी प्रमाणता नहीं होगी कि वे अन्य प्रसिद्ध व्याकरणों तथा उनके वार्तिकों और भाष्योंको सर्वथा भुला दें—या उनका आश्रय नहीं लें। कुछ भी हो परन्तु यह तो निश्चय है कि उन्होंने अपनी सर्वार्थसिद्धिमन्य व्याकरणोंके भी मत दिये हैं। इस विषयमें हम एक और प्रमाण उपास्थित करते हैं जो बहुत ही पुष्ट और स्पष्ट है—

सर्वार्थसिद्धि अ० ४ सूत्र २२ की व्याख्यामें लिखा है—“यथाहुः कृतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति।” इसकी अन्य पुरुषकी ‘आहुः’ क्रिया ही कह रही है कि ग्रन्थकर्ता यहां किसी अन्य पुरुषका वचन दे रहे हैं। अब पतंजलिका महाभाष्य देखिए। उसमें १-२-२ के ५ वें वार्तिकके भाष्यमें विलकुल यही वाक्य दिया हुआ है—एक अक्षरका भी हेरफेर नहीं है। इससे स्पष्ट है कि सर्वार्थसिद्धिके कर्ता अन्य व्याकरण

ग्रन्थोंके भी प्रमाण देते हैं। और भी एक प्रमाण लीजिए—

सर्वार्थसिद्धि अ० ७ सूत्र १६ की व्याख्यामें लिखा है—“शास्त्रेऽपि ‘अश्ववृषयोर्भेधुनेच्छायामि’ त्वेवमादिषु तदेव गृह्यते।” यह पाणिनिके ७-१-५१ सूत्रपर कात्यायनका पहला वार्तिक है। यहां “अश्ववृषयोर्भेधुनेच्छायाम्” इतने शब्द हैं और इन्हींको सर्वार्थसिद्धिकारने लिया है। यहां कात्यायनके वार्तिकको उन्होंने ‘शास्त्र’ शब्दसे व्यक्त किया है।

सर्वार्थसिद्धि अ० ५ सूत्र ४ की व्याख्यामें ‘नित्य’ शब्दको सिद्ध करनेके लिए पूज्यपाद स्वामी लिखते हैं—“नेः ध्रुवे त्यः इति निष्पादितत्वात्।” परन्तु जैनेन्द्रमें ‘नित्य’ शब्दको सिद्ध करनेवाला कोई मूल सूत्र नहीं है, इस लिए अभयनन्दिने अपनी वृत्तिमें “इत्येस्तुद्” (३-२-८१) सूत्रकी व्याख्यामें “नेर्ध्रुवः इति वक्तव्यम्”। यह वार्तिक बनाया है और ‘नित्यं सर्वकालं भवं नित्यं’ इस तरह स्पष्ट किया है। जैनेन्द्रमें ‘त्य’ प्रत्यय ही नहीं है, इसके बदले ‘य’ प्रत्यय है। इससे मालूम होता है कि सर्वार्थसिद्धिकारने स्वनिर्मित व्याकरणको लक्ष्यमें रखकर पूर्वोक्त बात नहीं कही है। अन्य व्याकरणोंके प्रमाण भी वे देते थे और यह प्रमाण भी उसी तरह का है।

परन्तु इससे पाठकोंको यह न समझ लेना चाहिए कि सर्वार्थसिद्धिमें ग्रन्थकर्ताने अपने जैनेन्द्रसूत्रोंका कहीं उपयोग ही नहीं किया है। नहीं, कुछ स्थानोंमें उन्होंने अपने निजके सूत्र भी दिये हैं। जैसे पांचवे अध्यायके पहले सूत्रके व्याख्यानमें लिखा है “विशेषणं विशेष्येण” इति वृत्तिः। यह जैनेन्द्रका १-३-५२ वां सूत्र है। यह सूत्र शब्दार्णवचन्द्रिका (१-३-४८) वाले पाठमें भी है।

इन सब प्रमाणोंसे यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है कि जैनेन्द्रका असली सूत्रपाठ वही है जिसपर अभयनन्दिकृत वृत्ति है; शब्दार्णवचन्द्रिका

१ तत्त्वार्थराजवार्तिकमें इसी ‘प्रमाणनयैरभिगमः’ सूत्रकी व्याख्यामें पतंजलिका यह भाष्य ज्यों का त्यों अक्षरशः दिया है। अभयनन्दिका भी यही वार्तिक है।

२ राजवार्तिक और ओकगार्मिकमें भी यह वाक्य उद्धृत किया गया है।

१ तत्त्वार्थराजवार्तिकमें भी है—“शास्त्रेऽपि अश्ववृषयोर्भेधुनेच्छायामित्येवमादौ तदेव कर्मोपस्थाप्यते।”

कावाला पाठ असली सूत्रपाठको संशोधित और परिवर्धित करके बनाया गया है और उसका यह संस्करण संभवतः गुणनन्दि आचार्यकृत है।

अब एक प्रश्न यह रह जाता है कि जब गुणनन्दि ने मूल ग्रंथमें इतना परिवर्तन और संशोधन किया था, तब उस परिवर्तित ग्रन्थका नाम जैनेन्द्र ही क्यों रखवा ? इसके उत्तरमें निवेदन है कि एक तो शब्दार्णवचन्द्रिका और जैनेन्द्रप्रक्रियाके पूर्वलिखित श्लोकोसे गुणनन्दिके व्याकरणका नाम 'जैनेन्द्र' नहीं किन्तु 'शब्दार्णव' मालूम होता है। संभव है कि लेखकोंके भ्रमसे इन टीकाग्रंथोंमें 'जैनेन्द्र' नाम शामिल हो गया हो। दूसरा यदि 'जैनेन्द्र' नाम भी हो, तो ऐसा कुछ अनुचित भी नहीं है। क्यों कि गुणनन्दिने जो प्रयत्न किया है, वह अपना एक स्वतंत्र ग्रंथ बनानेकी इच्छासे नहीं किन्तु पूर्वनिर्मित 'जैनेन्द्र' को सर्वांगपूर्ण बनानेकी सदिच्छासे किया है और इसी लिए उन्होंने जैनेन्द्रके आधेसे अधिक सूत्र ज्यों के त्यों रहने दिये हैं तथा संगलाचरण आदि भी उसका ज्यों का त्यों रखवा है। हमारा विश्वास है कि गुणनन्दि इस संशोधित और परिवर्तित सूत्रपाठको ही तैयार करके न रहे गये होंगे, उन्होंने इसपर कोई वृत्ति या टीका ग्रंथ भी अवश्य लिखा होगा, जो अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। सनातन जैन ग्रंथमालामें जो जैनेन्द्र-प्रक्रिया छपी है, वह जैसा कि हम आगे सिद्ध करेंगे गुणनन्दिको बनाई हुई नहीं है।

जैनेन्द्रकी टीकायें।

पूज्यपादस्वामीकृत असली जैनेन्द्रकी इस समय तक केवल तीन ही टीकायें उपलब्ध हैं—१ असयनन्धिकृत 'महावृत्ति,' २ आर्यश्रुतकीर्तिकी 'पंचवस्तु-प्रक्रिया,' और ३ बुधमहाचन्द्रकृत 'लघु जैनेन्द्र'। परन्तु इनके सिवाय इसकी और भी कई टीकायें होनी चाहिए। पंचवस्तुके अन्तमें नीचे लिखा हुआ एक श्लोक है—

सूत्रतन्मसमुद्धृतं प्रविलसन्न्यासोत्तरतद्विधि,
श्रीमद्वृत्तिकपाठसंपुटयुतं भाष्यौषशय्यातलम् ।
टीकामालमिद्रास्त्रमुन्नेतं जैनेन्द्रशब्दागमं,
प्राच्यं पृथुपंचवस्तुकनिर्दं सोपानयागेदनात् ॥

- इसमें जैनेन्द्र शब्दागम या जैनेन्द्र व्याकरणको महलकी उपमा दी गई है। वह मूलसूत्ररूप स्तम्भोंपर खड़ा किया गया है, न्यासरूप उसकी रत्नमय भूमि है, वृत्तिरूप उसके किवाड़ हैं, भाष्यरूप शय्यातल है, और टीकारूप उसके माल या मंजिल हैं। यह पंचवस्तु टीका उसकी सोपान श्रेणी है। इसके द्वारा उक्त महल पर आरोहण किया जासकता है। इससे मालूम होता है कि पंचवस्तुके कर्ताके समयमें इस व्याकरणपर १ न्यास, २ वृत्ति, ३ भाष्य और ४ टीका, इतने व्याख्या ग्रन्थ मौजूद थे। इनमेंसे श्रीमद्वृत्ति या वृत्ति तो यह असयनन्धिकी महावृत्ति ही होगी, ऐसा जान पड़ता है। शेष तीन टीकायें अभी तक उपलब्ध नहीं हुई हैं। हमारा अनुमान है कि इनमेंसे एक टीकाग्रन्थ चाहे वह न्यास हो या भाष्य हो, स्वयं पूज्यपादस्वामीका बनाया हुआ होगा। क्यों कि वे केवल सूत्रग्रन्थ ही बनाकर रह गये होंगे, यह बात समझमें नहीं आती। अपनी मानी हुई अतिशय सूक्ष्म संज्ञाओं और परिभाषाओंका स्पष्टीकरण करनेके लिए उन्हें कोई टीका, वृत्ति या न्यास अवश्य बनाना पड़ा होगा, जिस तरह शाकटायनने अपने व्याकरणपर असोघवृत्ति नामकी स्वोपह टीका बनाई है।

आचार्य विद्यानन्दने अष्टसहस्री (पृष्ठ : ३२) में 'न्यखे कर्मण्युपसंख्यानात् का' यह वचन उद्धृत किया है। यह किसी व्याकरण ग्रन्थका वार्तिक है; परन्तु पाणिनिके किसी भी वार्तिकमें यह नहीं मिलता। असयनन्धिकी महावृत्तिमें अवश्य ही "न्यखे कर्मणि का वक्तव्या" [४-१-३८] इस प्रकारका वार्तिक है; परन्तु हमारा खयाल है कि असयनन्धिकी वृत्ति विद्यानन्दसे पीछेकी बनी हुई है, इस लिए विद्यानन्दने यह वार्तिक असयनन्धिकी वृत्तिसे नहीं किन्तु अन्य ही किसी ग्रन्थसे लिया होगा और आश्रय नहीं जो वह स्वयं पूज्यपादकृत टीकाग्रन्थ हो। सुनते हैं, जैनेन्द्रका न्यास कर्नाटक प्रान्तके जैन पुस्तक भण्डारोंमें है। उसके प्राप्त करनेकी बहुत आवश्यकता है। उससे इस व्याकरणसम्बन्धी अनेक संशयोंका निराकरण हो पायगा।

आगे हम उपलब्ध टीका ग्रन्थोंका परिचय दे-
ते हैं:—

१-महावृत्ति । इसकी एक प्रति पूनेके भा-
ण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें मौजूद है । इसकी
श्लोकसंख्या १३००० के लगभग है । इसके प्रारं-
भके ३१४ पत्र एक लेखकके लिखे हुए और
शेष ७७ पत्र, चित्र सुदी २ सं० १९३३ को किसी
दूसरे लेखकके लिखे हुए हैं । प्रतिके दोनों ही
भाग जयपुरके लिखे हुए मालूम होते हैं । कई
स्थानों में कुछ पंक्तियाँ छूटी हुई हैं । इसका प्रारंभ
इसतरह हुआ है:—

ओं नमः । श्रीमत्सर्वज्ञवीतरागतद्वचनतदनुसारिगुरुभ्यो नमः ।

देवदेवं जिन्नं नत्वा सर्वसत्त्वाभयप्रदम् ।

शब्दशान्तस्य सूत्राणां महावृत्तिर्विच्यते ॥ १ ॥

यच्छब्दलक्षणमसुत्रजपारमन्यै-

रव्यक्तमुक्तमभिधानविधौ द्विद्वैः ।

तत्सर्वलोकहृदयप्रियवाक्स्वायै-

र्व्यक्ताकरोत्यभयनन्दिमुनिः समस्तम् ॥ २ ॥

दिष्ट, चारपरिपालनार्थमादाविष्टदेवतानमस्कारलक्षणं भग-
लमिदमाहाचार्यः ।

और अन्तमें कोई प्रशस्ति आदि न देकर सिर्फ
इतना ही लिखा है—

“इत्यभयनन्दिर्विरचितायां जैनेन्द्रव्याकरणमहावृत्तौ
पंचमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः । समाप्तश्चायं पंच-
मोऽध्यायः ।”

इससे मालूम होता है कि इस महावृत्तिके कर्ता
अभयनन्दि मुनि हैं । उन्होंने न तो अपनी गुरुपर-
म्पराका ही परिचय दिया है और न ग्रन्थरचना-
का समय ही दिया है, इससे निश्चयपूर्वक यह नहीं
कहा जा सकता कि वे कब हुए हैं । परन्तु उन्होंने
सूत्र ३-२-५५ की टीकामें एक जगह उदाहरण दिया
है—“तत्त्वार्थवार्तिकमधीयते ।” इससे मालूम
होता है कि भट्टकलंकदेवसे आद अर्थात् वि०
की नौवीं शताब्दिके बाद—और पंचवस्तुके पूर्वो-
ल्लिखित श्लोकमें इसी वृत्तिका उल्लेख जान पड़ता
है, इस लिए आर्य श्रुतकीर्तिके अर्थात् विक्रमकी
बारहवीं शताब्दिके पहले—किसी समयमें वे हुए

हैं । हमारा अनुमान है कि चन्द्रप्रभकाव्यके कर्ता
महाकवि धीरनन्दिने जिन अभयनन्दिको अपना
गुरु बतलाया है, वे वे ही अभयनन्दि होंगे । आचा-
र्य नैमिचन्द्रने भी गोमटसार-कर्मकाण्डकी ४३६ वीं
गाथामें इनका उल्लेख किया है । अतएव इनका
समय विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दिके पूर्वार्धके
लगभग निश्चित होता है । जैनेन्द्रकी उपलब्ध टीका-
ओंमें यही टीका सबसे प्राचीन मालूम होती है ।
प्र० एस्० के० बेलवलकरने अभयनन्दिका समय
ई० सन् १३००—१३५० के लगभग मालूम नहीं
किन प्रमाणोंसे निश्चित किया है ।

२-पंचवस्तु । भांडारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें
इसकी दो प्रतियाँ मौजूद हैं, जिनमें एक ३००-४००
वर्ष पहलेकी लिखी हुई है और बहुत धुंध है ।
पत्रसंख्या ९१ है । इस पर लेखकका नाम और
प्रति लिखनेका समय आदि नहीं है । इसके अन्तमें
केवल इतना लिखा हुआ है—

“रुतिरियं देयनंश्चाचार्यस्य परवादिमधनस्य ॥ छा ॥
शुभं भवतु लेखकपाठकयोः ॥ श्रीसंघस्य ॥”

दूसरी^२ प्रति रत्नकरणश्रावकाचार्यचनिका
आदि अनेक भाषाग्रन्थोंके रचयिता सुप्रसिद्ध प-
ण्डित सदासुखजीके हाथकी लिखी हुई है और
संवत् १९१० की लिखी हुई है । इसके अन्तमें प्रति-
लेखकने आपना परिचय इसतरह दिया है:—

अज्जे नमश्चन्द्रनिधिस्थितिके छुद्धे सहस्र्यम(?) युक्चतुर्थ्याम् ।
सत्प्रक्रियावन्धनिबन्धनेयं सद्बस्तुवृत्तोरदनात्समाप्ता (?) ॥

श्रीमन्नराणामधिपेशराज्ञी श्रीरामासिहे विलसत्यलेखि ।

श्रीमद्गुणेनेह सदासुखेन श्रीयुक्तेलालनिजात्मबुद्धयै ॥

शाब्दीयशास्त्रं पठितं न यैस्तैः स्वदेहसंपालनभारवद्भिः ।

किं दर्शनीयं कथनीयमेतद् वृथांगसंघावपलापवद्भिः ॥

यह प्रति भी प्रायः शुद्ध है ।

यह टीका प्रक्रियावद्ध टीका है और बड़े अच्छे

* धीरनन्दि और अभयनन्दिका समय जाननेके लिए
देखो त्रिलोकसार ग्रन्थकी मेरी लिखी भूमिका ।

१ नं० १०५९ सन १८८७-९१ की रिपोर्ट । २ नं०
५९० सन १८७५-७६ की रिपोर्ट । ३ इस ग्रन्थकी एक
प्रति परतादगढ (माळवा) के पुराने दि० जैनमन्दिरके भं-
डारमें भी है । देखो जैनमित्र ता० २६ अगस्त १९१५ ।

ढंगसे लिखी गई है। इसकी श्लोकसंख्या ३३०० के लगभग है। प्रारंभके विद्यार्थियोंके लिए बड़ी उपयोगी है। इसका प्रारंभ इसप्रकार किया है—

ओं नमः श्रीशान्तिनाथाय ।

जगत्त्रयनाथाय नमो जन्मप्रमाधिने ।

नयप्रमाणवामिध्वस्तध्वान्ताय शान्तये ॥ १ ॥

प्रत्याहारस्यादाविष्टदेवस्तुतिवचनं मंगलार्थमुपात्तम् ।

आगे चलकर पांचवें पत्रमें इस प्रकार लिखा है—
ग्राम-वैर-वर्ण-कर-चरणादीनां संधीनां बहूनां संभवत्वात्
संशयानः शिष्यः संपृच्छति स्म—कस्सन्धिरिति ।

संज्ञास्वरप्रकृतिहल्जयिसर्गजन्मा

संधिस्तु पंचक इनीत्यमिहाहुरन्ये ।

तत्र स्वरप्रकृतिहल्जयिकल्पतोऽस्मि—

संधिं त्रिधा कथयति श्रुतकीर्तिरार्यः ॥

इस ग्रन्थके आदि-अन्तमें कहीं भी इसके कर्त्ताका नाम नहीं है। केवल इसी जगह यह नाम आया है और इससे मालूम होता है कि पंचवस्तुके रचयिता आर्य श्रुतकीर्ति हैं।

कनडी भाषाके चन्द्रप्रभचरित नामक ग्रन्थके कर्त्ता अगल कविने श्रुतकीर्तिको अपना गुरु बतलाया है—“इति परमपुरुषनाथकुलभूभूत्समुद्भूतप्रवचनसत्तिसरिषाथ-श्रुतकीर्तित्रैविद्यचक्रवर्तिपदप-अनिधानदीपवर्तिश्रीमदगलदेवविरचिते चन्द्रप्रभचरिते—” इत्यादि। और यह चरित शक संवत् १०११ (वि० सं० ११४६) में बनकर समाप्त हुआ है। अतएव पंचवस्तुको भी अभयनन्दि महावृत्तिके कुछ ही पीछे की-विक्रमकी बारहवीं शताब्दि के प्रारंभ की-रचना समझना चाहिये। नन्दिसंघ की गुर्वावलीमें श्रुतकीर्तिको वैयाकरण भास्कर लिखा है:-

“त्रैविद्यः श्रुतकीर्त्याख्यो वैयाकरणभास्करः ।”

ये नन्दिसंघ, देशीयगण और पुस्तकगच्छके आचार्य थे। श्रुतकीर्ति नामके और भी कई आचार्य हो गये हैं।

३—लघुजैनेन्द्र। इसकी एक प्रति अंकलेश्वर (भरौच) के दिगम्बर जैनमन्दिरमें है और दूसरी

१ देखो प्रो० पिटर्सनकी दूसरी रिपोर्ट सन १८८४, पृष्ठ १६४।

अधूरी प्रति परतामगढ़ (मालवा) के पुराने वि० जैनमन्दिरमें है। उसमें इस तरह प्रारंभ किया गया है—

महावृत्ति शुभतकलबुधपूज्यां सुखकरां,

विलोक्योद्यद्ज्ञानप्रभुविभयनन्दीप्रवहिताम्।

अनेकैः सच्छन्दैर्ग्रामविगतकैः संदृष्टभूतां (?)

प्रकुर्वेऽहं तनुमातिमहाचन्द्रविबुधः (?) ॥

इससे मालूम होता है कि यह अभयनन्दी वृत्तिके आधारसे लिखी गई है। पण्डित महाचन्द्रजी विक्रमकी इसी बीसवीं शताब्दिके ग्रन्थकर्त्ता हैं। इन्होंने संस्कृत, प्राकृत और भाषामें कई ग्रन्थ लिखे हैं।

४—जैनेन्द्रप्रक्रिया। इसे न्यायतार्थ न्यायशास्त्री पं० अशीधरजीने अभी हाल ही लिखी है। इसका अभी केवल पूर्वार्ध ही छपकर प्रकाशित हुआ है।

शब्दार्णवकी टीकायें।

जैनेन्द्र सूत्रपाठके संशोधित परिवर्धित संस्करणका नाम—जैसा कि पहले लिखा जा चुका है—शब्दार्णव है। इसके कर्त्ता आचार्य गुणनन्दि हैं। यह बहुत संभव है कि सूत्रपाठके सिवाय उन्होंने उसकी कोई टीका या वृत्ति भी बनाई होगी जो कि अभीतक उपलब्ध नहीं हुई है।

गुणनन्दि नामके कई आचार्य हो गये हैं। उनमेंसे एक शक संवत् ३८८ (वि० सं० ५२३) में पूज्यपादसे भी पहलेके हैं^१। दूसरे गुणनन्दि का उल्लेख अचणबेलगोलके ४२, ४३ और ४७ वें नम्यरके शिलालेखोंमें मिलता है। ये बलाकपिच्छके शिष्य और गृध्रपिच्छके प्रशिष्य थे। तर्क, व्याकरण और साहित्य शास्त्रके बहुत बड़े विद्वान् थे। इनके ३०० शास्त्रपारंगत शिष्य थे और उनमें ७२ शिष्य सिद्धान्तशास्त्री थे। आदि पंपके गुरु देवेन्द्र भी इन्हीं के शिष्य थे। अनेक ग्रन्थकारोंने इन्हें कई काव्योंका कर्त्ता बतलाया है; परन्तु अभी-

१ देखो जैनमित्र ता० २६ अगस्त १९१५।

२ मर्कराका ताम्रपत्र, इंडियन एण्टिक्वेरी, जिल्द १, पृष्ठ ३६३-३५। तथा एपिग्राफिका कर्नाटिका—जिल्द १, का पदला लेख।

तक इनका कोई काव्य नहीं मिला है। कर्नाटक कविचरितके कर्त्ताने इनका समय वि० संवत् ९५७ निश्चय किया है। क्योंकि इनके शिष्य देवेन्द्रके शिष्य आदि पंथका जन्म वि० सं० ९५९ में हुआ था और उसने ३९ वर्षकी अवस्थामें अपने सुप्रसिद्ध कनडी काव्य भारतचम्पू और आदिपु-राण निर्माण किये हैं। हमारा अनुमान है कि येही गुणनन्दि शब्दार्णवके कर्त्ता होंगे। भ्रवण बेलगोलके ४७ वें शिलालेखमें इनके सम्बन्धमें नीचे लिखे श्लोक मिलते हैं:—

श्रीगृध्रपिच्छमुनिपत्न्य वलाकापिच्छः

शिष्योऽर्जुनपुत्र ११नत्रयवर्तिकीर्तिः ।

चारित्रचक्रुराखिलावनिपालमौलि—

मालाशिलीमुखविराजितपादपद्मः ॥ ६ ॥

तच्छिष्यो गुणनन्दिपण्डितयतिः चारित्रचक्रेश्वरः ।

तर्कव्याख्यादिशास्त्रानिपुणः साहित्यविद्यापतिः ॥ ७ ॥

मिथ्यात्वादमदान्वासिन्धुरघटासंघातकण्ठीरवो ।

भव्याम्भोजोदवाको विजयतां कन्दर्पदर्पापहः ॥ ८ ॥

तच्छिष्यान्निशतं विवेकनिधयः शास्त्राधिपारंगताः

तेषु कृष्टमा द्विषस्यतिमिताः सिद्धान्तशास्त्रार्थकाः ॥ ९ ॥

व्याख्याने पटवो विचित्रचरिताः तेषु प्रसिद्धो मुनिः ।

नानानूनयप्रमाणानिपुणो देवेन्द्रसैद्धान्तिकः ॥ १० ॥

चन्द्रप्रभचरित महाकाव्यके कर्त्ता वीरनन्दिका समय शक संवत् ९०० के लगभग निश्चित होता है। क्योंकि वादिराजसूरिने अपने पार्श्वनाथकाव्यमें उनका स्मरण किया है। और वीरनन्दीकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है—१ श्रीगुणनन्दि, २ विबुध-गुणनन्दि, ३ अभयनन्दि और वीरनन्दि। यदि पहले गुणनन्दि और वीरनन्दिके बीचमें हम ७८ वर्षका अन्तर मान लें, तो पहले गुणनन्दिका समय चढ़ी शक संवत् ८२२ या वि० सं० ९५७ के लगभग आ जायगा। इससे यह निश्चय होता है कि वीरनन्दि-की गुरुपरम्पराके प्रथम गुणनन्दि और आदिपंथके गुरु देवेन्द्रके गुरु गुणनन्दि एक ही होंगे और जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं येही शब्दार्णवके कर्त्ता होंगे।

गुणनन्दि नामके एक और आचार्य शक संवत् १०३७ [वि० सं० ११७२] में हुए हैं जो मेघचन्द्र

त्रैविद्यके गुरु थे। संभव है कि शब्दार्णवके कर्त्ता ये ही हों।

शब्दार्णवकी इस समय दो टीकायें उपलब्ध हैं और दोनों ही सनातन जैन ग्रन्थमालामें छप चुकी हैं—१ शब्दार्णवचन्द्रिका, और २ शब्दार्णवप्रक्रिया।

१—शब्दार्णवचन्द्रिका। इसकी एक बहुत ही प्राचीन और अतिशय जीर्ण प्रति भाण्डारकर रि-सर्च इन्स्टिट्यूटमें मौजूद है। यह ताडपत्रपर नागरी लिपिमें है। इसके आदि-अन्तके पत्र प्रायः नष्ट हो गये हैं। इसमें छपी हुई प्रतिमें जो गद्य प्रशस्ति है, वह नहीं है। और अन्तमें एक श्लोक है जो आधा पढ़ा जाता है—“मंगलमस्तु।.....इन्द्रध्वज-शकटतनयः पाणिनिः पूज्यपादो यन्प्रोवाचापिशा-लिरमरः काशकृत्ति.....शब्दपारायणस्येति।”

इसके कर्त्ता श्रीसोमदेव मुनि हैं। ये शिलाहार वंशके राजा भोजदेव [द्वितीय] के समयमें हुए हैं और अर्जुरिका नामक ग्रामके त्रिसुवनतिलक नामक जैनमन्दिरमें— जो कि महामण्डलेश्वर गंड-रावित्यदेवका बनवाया हुआ था—उन्होंने इसे शक संवत् ११२७ [वि० सं० १२६२] में बनाया है। यह ग्राम इस समय आजरें नामसे प्रसिद्ध है और कोल्हापुर राज्यमें है। वादीभट्टांकुश श्रीविशालकीर्ति पण्डितदेवके वैयावृत्यसे इस ग्रन्थकी रचना हुई है:—

“श्रीसोमदेवयतिनिर्मितिमाधधाति

या नौः प्रतीतगुणनन्दितशब्दवार्धौ।

१ सं० २५ सन १८८०-८८ की रिपोर्ट।

२ ये विशालकीर्ति वे ही मालूम होते हैं जिनका उल्लेख पं० आशाधरने अपने अनगारधर्मोद्युतकी प्रशस्तिकी टीकामें ‘वादीन्-विशालकीर्ति’ के नामसे किया है और जिनको उन्होंने न्यायशास्त्रमें पारंगत किया था। पं० आशा-धर वि० सं० १२४९ के लगभग धारामें आये थे और वि० सं० १३०० तक उनके अस्तित्वका पता लगता है। (देखो माधिमित विद्वद्वनमालामें ‘पण्डित प्रवर आशाधर शार्ङ्गकलख’) अतः सोमदेवका वैयावृत्य करनेवाले विशाल-कीर्ति दूसरे नहीं हो सकते। पं० आशाधरके पाससे पढ़कर ही वे दक्षिणके और चले आये होंगे।

सेयं सताममलचेतायि विस्फुरंती
वृत्तिः सदा नुतपदा परिवर्तिषीष्ट ॥

स्वस्ति श्रीकोल्हापूरदेशांतर्वाल्यांजुरिकामहास्थानयुधिष्ठि-
रावतारमहामण्डलेश्वरगंडरादित्यदेवनिर्मापितश्रिभुयनतिलक--
जिनालये श्रीमत्परमपरमेश्वित्रीनेमिनाथश्रीपादपदाराधनयत्नेन
वादीभवज्जाकुगश्रीविशालकीर्तिपंडितदेववैयाकृतयतःश्रीमच्छि-
लाहारकुलकमलमार्तंडतेजःपुंजराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टा--
रकाश्विमचक्रवर्तिश्रीवीरभोजदेवविजयराज्ये शकवर्षैकसह-
स्रैकशतसप्तविंशति ११२० तमक्रोधनसंवत्सरे स्वस्ति
समस्तानंददाविद्याचक्रचक्रवर्तिश्रीपूज्यपादानुरक्तचेतसा श्री-
मत्सोमदेवमुनीश्वरेण विरचितेयं शब्दार्णवचन्द्रिका नाम
वृत्तिरिति । इति श्रीपूज्यपादरुतजैनेन्द्रमहाव्याकरणं
सम्पूर्णम् । "

यशस्तिलकचम्पूके कर्ता सुप्रसिद्ध सोमदेव-
सूरे इनसे पहले हुए हैं । क्योंकि उनका उक्त चम्पू
शक संवत् ८८१ [वि० १०१६] में समाप्त हुआ
था । अतएव उनसे और इनसे कोई सम्बन्ध नहीं
है, यह स्पष्ट है ।

इस ग्रन्थके मंगलाचरणमें नीचे लिखे दो श्लोक
दिये हैं:—

श्रीपूज्यपादममलं गुणनन्दिदेवं
सोमामरजतिपूजितपादयुग्मम् ।
सिद्धं समुन्नतगदं वृषमं जिनेन्द्रं
सच्छब्दलक्षणसहं विनमामि वीरम् ॥ १ ॥
श्रीमूलसंघजलजप्रतिबोधमानो-
मैंवेन्दुदीक्षितभुजंगसुधाकरस्य ।
राद्धान्ततोयनिधिवृद्धिकरस्य वृत्तिं
रेमे हरीदुयतये वरदीक्षिताय ॥ २ ॥

इनमेंसे पहले श्लोकमें पूज्यपाद, गुणनन्दि और
सोमदेव ये विशेषण धीरे भगवानको दिये हैं ।
दूसरे श्लोकमें कहा है कि यह टीका मूलसंघीय
मेघचन्द्रके शिष्य नागचन्द्र (भुजंगसुधाकर) और
उनके शिष्य हरिचन्द्र यतिके लिए बनाई जाती है।

गुणनन्दिकी प्रशंसा जुरादि धातुपाठके अन्तमें
भी एक पद्यमें की गई है जिसका अन्तिम धरण
यह है:—

शब्दब्रह्मा स जीयाद् गुणनिधिगुणतन्निव्रतीशस्सुखैः ।
अर्थात् इसमें शब्दब्रह्मा विशेषण देकर गुणनन्दि-

का शब्दार्णव व्याकरणका कर्ता ही प्रकट किया
गया है ।

अब देखना चाहिए कि ये मेघचन्द्र और नाग-
चन्द्र आवि कौन थे और कब हुए हैं:—

ये मेघचन्द्र आचारसारके कर्ता वीरनन्दि सि-
द्धान्त चक्रवर्तिके गुरु ही मालूम होते हैं । ये बड़े
भारी विद्वान् थे । इन्हें सिद्धान्तज्ञतामें जिनसेम
और वीरसेनके सदृश, न्यायमें अकलंकके
समान और व्याकरणमें साक्षात् पूज्यपाद सदृश
यतलाया है । श्रवणवेलगोलके नं० ४७, ५० और
५२ नक्षत्रके शिलालेखोंसे मालूम होता है कि इन-
का स्वर्गवास शक संवत् १०३७ (वि० सं० ११७२)
में और उनके शुभचन्द्रदेव नामक शिष्यका स्वर्ग-
वास शक संवत् १०६८ (वि० सं० १२०३) में हुआ
था । तथा उनके दूसरे शिष्य प्रभाचन्द्रदेवने शक
सं० १०४१ (वि० सं० ११७६) में एक महापूजाप्र-
तिष्ठा कराई थी । जब सोमदेवने शब्दार्णवचन्द्रि-
का मेघचन्द्रके शिष्य हरिचन्द्रके लिए शक सं०
११२७ (वि० सं० १२६२) में बनाई थी, तब मेघ-
चन्द्रका समय वि० सं० ११७२ के लगभग माना
जा सकता है ।

नागचन्द्र नामके दो विद्वान् हो गये हैं, एक
पपरामायणके कर्ता नागचन्द्र जिनका दूसरा नाम
अभिनव पंप था, और दूसरे लाब्धिसारटीकाके कर्ता
नागचन्द्र । पहले गृहस्थ थे और दूसरे मुनि ।
अभिनव पंपके गुरुका नाम बालचन्द्र था जो मेघच-
न्द्रके सहाध्यायी थे, और दूसरे स्वयं बालचन्द्रके
शिष्य थे । इन दूसरे नागचन्द्रके शिष्य हरिचन्द्र-
के लिए यह वृत्ति बनाई गई है । इन्हें जो 'राद्धान्त
तोयनिधिवृद्धिकर' विशेषण दिया है उससे मा-
लूम होता है, कि ये सिद्धान्तचक्रवर्ती या सिद्धान्त
शास्त्रोंके ज्ञाता या टीकाकार होंगे ।

२—शब्दार्णवप्रक्रिया । यह जैनेन्द्र प्रक्रियाके
नामसे लपी है; परन्तु हमारा अनुमान है कि इस-

१ मेघचन्द्रके विषयमें विशेष जाननेके लिए देखो भाषि-
कचन्द्र ग्रन्थमालाके 'आचारसार' की भूमिका ।

२ देखो, 'इन्स्क्रिप्शन्स एट अवणवेगोल' का ४७ वाँ
शिलालेख ।

का नाम शब्दार्णव-प्रक्रिया ही होगा। हमें इसकी कोई हस्तलिखित प्रति नहीं मिल सकी। जिस तरह अभयनन्दिकी वृत्तिके बाद उसीके आधारसे प्रक्रियारूप पंचवस्तु टीका बनी है, उसी प्रकार सोमदेवकी शब्दार्णव-चन्द्रिकाके बाद उसीके आधारसे यह प्रक्रिया बनी है। प्रकाशकोंने इसके कर्ताका नाम गुणनन्दि प्रकट किया है; परन्तु जान पड़ता है इसके अन्तिम श्लोकोंमें गुणनन्दिका नाम देखकर ही भ्रमवश इसके कर्त्ताका नाम गुणनन्दि समझ लिया गया है। ये श्लोक नीचे दिये जाते हैं:—

ससंधिं दधते, समासमभिलः ख्यातार्थनामोन्नतं
निर्ज्ञातं बहुतदितं कृतमिहाख्यातं यशःशालिनम् ।
सैषा श्रीगुणनन्दिता नितवपुः शब्दार्णवं निर्णयं
नावस्याभ्रयतां विविक्षुमनसां साक्षात्स्वयं प्रक्रिया ॥ १ ॥
दुरितमदेभनिशुभकुम्भस्थलमेदन्मोमनखैः ।
राजन्मृगाधिराजो गुणनन्दी भुवि चिरं जीयात् ॥ २ ॥
सन्मार्गे सकलसुखप्रियकरे संज्ञापिते सद्गते
प्रा(दि)ग्वासत्सुचरित्रवानमलकः कांतो विवेकी प्रियः ।
सोयं यः श्रुतकीर्तिदेवयतिपो भट्टारकोत्तंसको
रंम्यान्मम मानसे कविपतिः सद्गजहंसधिरम् ॥ ३ ॥

इनमेंसे पहले पद्यका भाशय पहले लिखा जा चुका है। उससे यह स्पष्ट होता है कि गुणनन्दिके शब्दार्णवके लिए यह प्रक्रिया नावके समान है। और दूसरे पद्यमें कहा है कि सिंहके समान गुणनन्दि पृथ्वीपर सदा जयवन्त रहें। मालूम नहीं, इन पद्योंसे इस प्रक्रियाका कर्तृत्व गुणनन्दिको कैसे प्राप्त होता है। यदि इसके कर्ता स्वयं गुणनन्दी होते तो वे स्वयं ही अपने लिए यह कैसे कहते कि वे गुणनन्दि सदा जयवन्त रहें। इनसे तो साफ प्रकट होता है कि गुणनन्दि ग्रन्थकर्तासे कोई पृथक् ही व्यक्ति है जिसे वह श्रद्धास्पद समझता है। अर्थात् यह निस्संदेह है कि इसके कर्ता गुणनन्दिके अतिरिक्त कोई दूसरे ही हैं।

१ छपी हुई प्रतिके अन्तमें “ इति प्रक्रियावतारे कृद्विधिः पद्यः समाप्तः । समाप्त्यर्थं प्रक्रिया । ” इस तरह छपा है। इससे भी इसका नाम जैनेन्द्र प्रक्रिया नहीं जान पड़ता।

तीसरे पद्यमें भट्टारकशिरोमणि श्रुतकीर्ति देवकी प्रशंसा करता हुआ कवि कहता है कि वे मेरे मनरूप मानससरोवरमें राजहंसके समान चिरकाल तक विराजमान रहें। इसमें भी ग्रन्थकर्ता अपना नाम प्रकट नहीं करते हैं; परन्तु अनुमानसे ऐसा जान पड़ता है कि वे श्रुतकीर्तिदेवके कोई शिष्य होंगे और संभवतः उन श्रुतकीर्तिके नहीं जो पंचवस्तुके कर्ता हैं। ये श्रुतकीर्ति पंचवस्तुके कर्तासे पृथक् जान पड़ते हैं। क्योंकि इन्हें प्रक्रियाके कर्ताने ‘ कविपति ’ बतलाया है, व्याकरणज्ञ नहीं। ये वे ही श्रुतकीर्ति मालूम होते हैं जिनका समय प्रो० पाठकने शक संवत् १०४५ या वि० सं० ११८० बतलाया है। अवणवेल्लोलके जैनगुरुओंने ‘ चारुकीर्ति पण्डिताचार्य ’ का पद शक संवत् १०५९ के बाद धारण किया है और पहले ‘ चारुकीर्ति ’ इन्हीं श्रुतकीर्तिके पुत्र थे। अवणवेल्लोलके १०८ वें शिलालेखमें इनका जिक्र है और इनकी बहुत ही प्रशंसा की गई है। लिखा है—

तत्र सर्वशरीरिरक्षाकृतमतिर्विजितेन्द्रियः ।

सिद्धशासनवर्द्धनप्रतिलब्धकीर्तिकलापकः ॥ २२ ॥

विश्रुतश्रुतकीर्तिभट्टारकयतिस्समजायत ।

प्रस्फुरद्वचनामृतांशुविनाशिताखिलहृत्तमाः ॥ २३ ॥

प्रक्रियाके कर्ताने इन्हें भट्टारकोत्तंस और श्रुतकीर्तिदेवयतिप लिखा है और इस लेखमें भी भट्टारकयति लिखा है। अतः ये दोनों एक मालूम होते हैं। आश्चर्य नहीं जो इनके पुत्र और शिष्य चारुकीर्ति पण्डिताचार्य ही इस प्रक्रियाके कर्ता हों।

समय-निर्णय ।

१) शाकटायन व्याकरण और उसकी अमोघवृत्ति नामकी टीका दोनों ही के कर्ता शाकटायन नामके आचार्य हैं, इस बातको प्रो० के० बी० पाठकने अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है और उन्होंने यह भी बतलाया है कि अमोघवृत्ति राष्ट्रकूट राजा

१ देखो ‘ सिस्टम्स आफ संस्कृत ग्रामर ’ पृष्ठ ६७ ।

२ देखो, मेरा लिखा ‘ कर्नाटक जैन कवि ’ पृष्ठ २० । ३ देखो, जैनसिद्धान्तभास्कर, किरण २-३, पृष्ठ ११८ ।

४ देखो, इंडियन एण्टिक्वेरी, जिल्द ४३, पृष्ठ २०५-१२ में प्रो० पाठकका लेख ।

अमोघ वर्षके समयमें उसीके नामसे बनाई गई है। इससे यह सिद्ध होता है कि शाकटायन व्याकरण (सूत्र) अमोघ वर्षके समयमें अथवा उससे कुछ पहले बनाया गया होगा। अमोघवर्षने शक संवत् ७३७ से ८०० तक (वि० सं० ८७२ से ९३५ तक) राज्य किया है। अतः यदि हम शाकटायन सूत्रोंके बननेका समय वि० सं० ८५० के लगभग मान लें, तो वह वास्तविकता के निकट ही रहेगा।

शाकटायन व्याकरणको आरीकीके साथ देखनेसे मालूम होता है कि वह जैनेन्द्रसे पीछे बना हुआ है। क्योंकि उसके अनेक सूत्र जैनेन्द्रका अनुकरण करके रचे गये हैं। उदाहरणके लिए जैनेन्द्रके “वस्तेढ्” (४-१-१५४), “शिलायाढः” (४-१-१५५) “ढच” (४-१-२०९) आदि सूत्रोंको शाकटायनने थोड़ा बहुत फेरफार करके अब्बा ज्यों का त्यों ले लिया है। जैनेन्द्रका एक सूत्र है—“टिदादिः” (१-१-५२) शाकटायनने इसे ज्यों का त्यों रख कर अपना पहले अध्याय, पहले पादका ५२ वां सूत्र बना लिया है। इस सूत्रको लक्ष्य करके भट्टकलंकदेव अपने राजवार्तिक (१-५१, पृष्ठ ३७) में लिखते हैं—“कविद्वयवे टिदादिरिति।” और भट्टकलंकदेव शाकटायन तथा अमोघवर्षसे पहले राष्ट्रकूट राजा साहसतुंगके समयमें हुए हैं, अत एव यह निश्चय है कि अकलंकदेवने जो ‘टिदादि’ सूत्रका प्रमाण दिया है, वह जैनेन्द्रके सूत्रको ही लक्ष्य करके दिया है, शाकटायनके सूत्रको लक्ष्य करके नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि शाकटायन जैनेन्द्रसे पीछेका बना हुआ है। अर्थात् जैनेन्द्र वि० सं० ८५० से भी पहले बन चुका था।

२) वामनप्रणीत लिङ्गानुशासन नामका एक ग्रन्थ अभी हाल ही गायकवाड ओरियंटल सोरीजमें प्रकाशित हुआ है। इसका कर्ता पं० वामन राष्ट्रकूट राजा जगज्जुंग या गोविन्द तृतीयके समयमें हुआ है और इस राजाने शक ७१६ ते ७३६ (वि० ८५१—८७१) तक राज्य किया है। यह ग्रन्थ कर्ता नीचे लिखे पद्यमें जैनेन्द्रका उल्लेख करता है—

ध्यादिप्रणतिमय वारकृच सचान्द्रं
जैनेन्द्रक्षणगतं विविधं तगान्यत् ।

लिङ्गस्य लक्ष्म ही समस्य विशेषयुक्त-

मुक्तं मया परिमितं त्रिदशा इहार्थाः ॥ ३१ ॥

इससे भी सिद्ध होता है कि वि० सं० ८५० के लगभग जैनेन्द्र प्रख्यात व्याकरणोंमें गिना जाता था। अतएव यह इस समयसे भी पहलेका बना हुआ होना चाहिए।

३) हरिवंशपुराण शक संवत् ७०५ (वि० सं० ८४०) का बना हुआ है। इस समय यह समाप्त हुआ है। उस समय दक्षिणमें राष्ट्रकूट राजा कृष्ण (शुभतुंग या साहसतुंग) का पुत्र श्रीवल्लभ (गोविन्दराज द्वितीय) राज्य करता था। इस राजाने शक ६९७ ते ७०५ तक [वि० ८३२ से ८४०] तक राज्य किया है। इस हरिवंशपुराणमें पूज्यपाद या देवनन्दिकी प्रशंसा इस प्रकार की गई है:-

रु(ह)द्रचन्द्रार्कजैनेन्द्रव्यापि (दि)व्याकरणेक्षिणः ।

देवस्य देवनन्दस्य न वदते गिरः कथम् ॥ ३१ ॥

यह बात निस्सन्देह होकर कही जा सकती है कि जैनेन्द्रव्याकरणके कर्ता देवनन्दि वि० सं ८०० से भी पहलेके हैं।

४) उपर बतलाया चुका है कि तत्त्वार्थराजवार्तिकमें जैनेन्द्र व्याकरणके एक सूत्रका हवाला दिया गया है। इसी तरह “सर्वादिः सर्वनाम” [१-१-३५] सूत्र भी जैनेन्द्रका है, और उसका उल्लेख राजवार्तिक अध्याय १ सूत्र ११ की व्याख्यामें किया गया है। इससे सिद्ध है कि जैनेन्द्र व्याकरण राजवार्तिकसे पहलेका बना हुआ है। राजवार्तिकके कर्ता अकलंकदेव राष्ट्रकूट राजा साहसतुंगजिसका कुसरा नाम शुभतुंग और कृष्ण भी है—को समामें गये थे, इसका उल्लेख श्रवणबेलगोलकी मल्लिवेणप्रशस्तिमें किया गया है; और साहसतुंगने शक संवत् ६७५ से ६९७ [वि० सं० ८१० से ८३२] तक राज्य किया है। यदि राजवार्तिकको हम इस राजाके ही समयका बना हुआ मानें, तो भी जैनेन्द्र वि० सं ८०० से पहलेका बना हुआ सिद्ध होता है।

१ देव देवान्दका ही संक्षिप्त नाम है। शन्दार्णवचन्द्रिकामें १-४-११४ सूत्रकी व्याख्यामें लिखा है—“देवोप-
श्यनेकशेषव्याकरणम् ।”

उक्त प्रमाणोंसे यह तो निश्चय हो गया कि जैनेन्द्रके कर्ता विक्रम सं० ८०० से पहले हुए हैं। परन्तु यह निश्चय नहीं हुआ कि कितने पहले हुए हैं। इसके लिए आगेके प्रमाण देखिए।

५.—मर्करा (कुर्ग) में एक बहुत ही प्राचीन ताम्र-पत्र^१ मिला है। यह शक संवत् १८८ (वि० सं० ५२३) का लिखा हुआ है। उस समय गंगवंशीय राजा अविनीत राज्य करता था। अविनीत राजाका नाम भी इस लेखमें है। इसमें कुन्दकुन्दान्वय और देशीयगणके मुनियोंकी परम्परा इस प्रकार दी हुई है:—गुणचन्द्र—अभयनन्दि—शीलभद्र—ज्ञाननन्दि—गुणनन्दि और वदननन्दि। पूर्वोक्त अविनीत राजाके बाद उसका पुत्र दुर्विनीत राजा हुआ है। हिस्ट्री आफ कनडी लिटरेचर नामक अंगरेजी ग्रन्थ और 'कर्नाटककविचरित्र'^२ नामक कनडी ग्रन्थके अनुसार इस राजाका राज्यकाल ई० सं० ४८२ से ५१२ (वि० ५३९—६९) तक है। यह कनडी भाषाका कवि था। भारविके किरातार्जुनीय काव्यके १५ वें सर्गकी कनडी टीका इसने लिखी है। कर्नाटक-कविचरित्रके कर्ता लिखते हैं कि यह राजा पूज्य-पाद यतीन्द्रका शिष्य था। अतः पूज्यपादको हमें विक्रमकी छठी शताब्दिके प्रारंभका ग्रन्थकर्ता मानना चाहिए। मर्कराके उक्त ताम्रपत्रसे भी यह बात पुष्ट होती है। वि० संवत् ५२३ में अविनीत राजा था। इसके १६ वर्ष बाद वि० सं० ५३९ में उसका पुत्र दुर्विनीत राजा हुआ होगा, अतएव उसका जो राज्यकाल बतलाया गया है, वह अवश्य ठीक होगा। और जिन वदननन्दिके समय उक्त ताम्रपत्र लिखा गया है, संभवतः उन्हींकी शिष्य परम्परामें बलिक उन्हींके शिष्य या प्रशिष्य जैनेन्द्रके कर्ता देवनन्दि या पूज्यपाद होंगे। क्योंकि ताम्रपत्रकी मुनिपरम्परामें नन्धन्त नाम ही अधिक है, और इनका भी नाम नन्धन्त है। इतना ही नहीं बलिक इनके शिष्य वज्रनन्दिका नाम भी नन्धन्त है। अतः जबतक कोई प्रमाण इसका विरोधी न मिले,

१ इंडियन एण्टिक्वेरी, जिल्द १, पृष्ठ २६३-६५ और एपिग्राफिका कर्नाटिका, जिल्द १ का पहला लेन। २ आर. नरासिंहाचार्य, रम० ए० रुत।

तबतक हमें देवनन्दिको कुन्दकुन्दान्वय और देशीयगणके आचार्य वदननन्दिका शिष्य या प्रशिष्य माननेमें कोई दोष नहीं दिखता। उनका समय विक्रमकी छठी शताब्दिका प्रारंभ भी प्रायः निश्चित समझना चाहिए।

६.—इस समयकी पुष्टिमें एक और भी अच्छा प्रमाण मिलता है। वि० सं० ९९० में बने हुए 'दर्शनसार' नामक प्राकृत ग्रन्थमें लिखा है कि पूज्य-पादके शिष्य वज्रनन्दिने वि० सं० ५२६ में दक्षिण मथुरा या मठुरामें द्राविडसंघकी स्थापना की:—

मिरिपुञ्जपादमीमा द्वाविडमंघस्स काणो दुट्ठो ।

णामणे वज्जणंदी गह्णुडवेदी महासत्था ॥

पंचसए छवीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ।

द्विस्सगमहुराजादो द्वाविडमंघो महामोहो ॥

इससे भी पूज्यपादका समय वही छठी शताब्दिका प्रारंभ निश्चित होता है।

प्रो० पाठकके प्रमाण।

सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं० काशीनाथ त्रिपाठी पाठकने अपने शाकटायन व्याकरणसम्बन्धी लेखमें कुछ प्रमाण ऐसे दिये हैं जिनसे ऐसा भास होता है कि जैनेन्द्रके समयका मानो अन्तिम निर्णय हो गया। इन प्रमाणोंको भी हम अपने पाठकोंके सम्मुख उपस्थित कर देना चाहते हैं; परन्तु साथ ही यह भी कह देना चाहते हैं कि ये प्रमाण जिस नींवपर खड़े किये गये हैं, उसमें कुछ भी दम नहीं है। जैसा कि हम पहले सिद्ध कर चुके हैं जैनेन्द्रका असली सूत्रपाठ वही है जिसपर अभयनन्दिकी महावृत्ति रची गई है; परन्तु पाठक महोदयने जितने प्रमाण दिये हैं, वे सब शब्दार्णवचन्द्रिकाके सूत्रपाठको असली जैनेन्द्रसूत्र मानकर दिये हैं; इस कारण वे तबतक ब्रह्म नहीं हो सकते जबतक कि पुष्ट प्रमाणोंसे यह सिद्ध नहीं कर दिया जाय कि शब्दार्णवचन्द्रिकाका पाठ ही ठीक है और इसके विरुद्धमें दिये हुए हमारे प्रमाणोंका पूरा पूरा खण्डन न कर दिया जाय।

१ इन्दा इंडियन एण्टिक्वेरी जिल्द ४३, पृष्ठ २०५-१२।

१—जैनन्द्रका एक सूत्र है—“हस्तादेयेनुद्यस्ते-
ये च्चे” [१-३-३६]। इस सूत्रके अनुसार ‘चि’
का ‘चाय’ हो जाता है, उस अवस्थामें जब कि
हाथसे ग्रहण करने योग्य हो, उत् उपसर्गके बाद न
हो और चोरी करके न लिया गया हो। जैसे ‘पुष्प
प्रचायः’। हस्तादेय न होनेसे पुष्पप्रचय, उत् उपसर्ग
होनेसे ‘पुष्पाञ्चय’ और चोरी होनेसे ‘पुष्पप्रचय’
होता है*। इस सूत्रमें उत् उपसर्गके बात जो ‘चाय’
होनेका नियम किया गया है, वह पाणिनिमें, +
उसके वार्तिकमें और भाष्यमें भी नहीं है। परन्तु
पाणिनिकी काशिकावृत्तिमें ३-३-४० सूत्रके व्या-
ख्यानमें हैं—“उच्चयस्य प्रतिषेधा वक्तव्यः।” इस-
से निश्चित होता है कि काशिकाके कर्त्ता वामन और
जयादित्यने इसे जैनन्द्रपरसे ही लिया है और
जयादित्यकी मृत्यु वि० सं० ७१७ में हो चुकी थी
ऐसा चिनी यात्री इस्मिगने अपने यात्राविवरणमें
लिखा है। अतः जैनन्द्रव्याकरण वि० सं० ७१७
से भी पहलेका बना हुआ होना चाहिए।

२—पाणिनि व्याकरणमें नीचे लिखा हुआ एक
सूत्र है—

“शब्दचलनकर्त्ता भृगुवत्सामिप्रवृत्तगण-

४-१-१०२ ।

इसके स्थानमें जैनन्द्रका सूत्र इस प्रकार है—

“शब्दचलनकर्त्ता भृगुवत्सामिप्रवृत्तगण-
वत्सामिप्रवृत्तगणवत्सामिप्रवृत्तगणवत्सामिप्रवृत्तगण-

इसीका अनुकरणकारी सूत्र शाकटायनमें इस
तरह का है—

१ इन प्रमाणोंमें जहाँ जहाँ जैनन्द्रका उल्लेख हो, वहाँ वहाँ
शब्दार्णव-चन्द्रिकाका सूत्रपठ समझना चाहिए। सूत्रोंके
नम्बर भी उन्हींके अनुसार दिये गये हैं।

* ‘हस्तादेय’ हस्तादानेऽनुदि वाचि चिबो वन भवत्य-
स्तेयं । पुष्पप्रचायः । हस्तादेय इति किं ? पुष्पप्रचयं
करोति नक्षत्रिने । अनुदीति किं ? फलोच्चयः । अस्त्य
इति किं ? फलप्रत्ययं करोति चौर्येण (शब्दार्णव-चन्द्रिका
पृष्ठ २९)

२ पाणिनिग मूल मय प्रकार है—“हस्तादानं चरस्तेये”
(३-३-४०)

“शब्दचलनकर्त्ता भृगुवत्सामिप्रवृत्तगण-
वत्सामिप्रवृत्तगणवत्सामिप्रवृत्तगण-

इस सूत्रकी असोपवृत्तिमें

“आभिर्गम्यणो वार्षगण्यः । आभिर्गमिरन्यः ।”

इस तरह व्याख्या की है।

इन सूत्रोंसे यह बात मालूम होती है कि पाणि-
निमें ‘वार्षगण्य’ शब्द सिद्ध नहीं किया गया है
जब कि जैनन्द्रमें किया गया है। ‘वार्षगण्य’ सांख्य
कारिकाके कर्त्ता ईश्वरकृष्णका दूसरा नाम है और
सुप्रसिद्ध चीनी विद्वान् डा० ट्स्कुसुके मतानुसार
ईश्वरकृष्ण वि० सं० ५०७ के लगभग विद्यमान थे।
इससे निश्चय हुआ कि जैनन्द्रव्याकरण ईश्वरकृष्ण-
के बाद—वि० सं० ५०७ के बाद और काशिकासे
पहले—वि० सं० ७१७ से पहले—किसी समय
बना है।

३—जैनन्द्रका और एक सूत्र है—“गुरुदयाद्
भाद्युक्तेऽद्वे” (३-२-२५)। शाकटायनने भी इसे
अपना २-४-२२४ वां सूत्र बना लिया है। हेमच-
न्द्रने थोडासा परिवर्तन करके “उदितगुरोर्भा-
द्युक्तेऽद्वे” (६-२-२५) बनाया है। इस सूत्रमें द्वादश-
वर्षात्मक बार्हस्पत्य संवत्सरपद्धतिका उल्लेख किया

१ इस संवत्सरकी उत्पत्ति बृहस्पतिकी गति परसे हुई है,
इस कारण इसे बार्हस्पत्य संवत्सर कहते हैं। जिस समय
यह मालूम हुआ कि नक्षत्रमण्डलमेंसे बृहस्पतिकी एक
प्रदक्षिणा लगभग १२ वर्षमें होती है, उसी समय इस संव-
त्सरकी उत्पत्ति हुई होगी, ऐसा जान पड़ता है। जिस तरह-
सूर्यकी एक प्रदक्षिणाके कालको एक सौर वर्ष और उसके
१२ वें भागको मास कहते हैं, उसी तरह इस पद्धतिमें गुरुके
प्रदक्षिणा कालको एक गुरुवर्ष और उसके लगभग १२ वें
भागको गुरुमास कहते थे। सूर्यसामिप्रवृत्तगण के कारण गुरु
वर्षमें कुछ दिन अस्त रहकर जिस नक्षत्रमें उदय होता है, उसी
नक्षत्रके नाम गुरुवर्षके मासोंके नाम रखे जाते थे। ये
गुरुके मास वस्तुतः सौर वर्षोंके नाम हैं, इस कारण इन्हें
चित्र संवत्सर, वैशाख संवत्सर आदि कहते थे। इस पद्धति-
को अच्छी तरह समझनेके लिए स्वर्गीय पं० शंकर बालकृष्ण
दीक्षितसा “भारताय ज्योतिःशास्त्राचा इतिहास” और
डॉ० फ्लोर्टके ‘गुप्त इन्डिकशान्ध’ में इन्हीं दोक्षित महान-
यका अंगरेजी निबन्ध पढ़ना चाहिए।

गया है। यह पद्धति प्राचीन गुप्त और कदम्बवंशी राजाओंके समय तक प्रचलित थी, इसके कई प्रमाण पाये गये हैं। प्राचीन गुप्तोंके शक संवत् ३०७ से ४५० [वि० सं० ४५४ से ५८१] तक तक के पाँच ताम्रपत्र पाये गये हैं। उनमें चैत्रादि संवत्सरोंका उपयोग किया गया है और इन्हीं गुप्तोंके समकालीन कदम्बवंशी राजा मृगेश्वरमणि ताम्रपत्रमें भी पाँच संवत्सरका उल्लेख है। इससे मालूम होता है कि इस बृहस्पति संवत्सरका सबसे पहले उल्लेख करनेवाले जैनेन्द्रव्याकरणके कर्त्ता हैं और इसलिये जैनेन्द्रकी रचना का समय ईस्वी सनकी पाँचवीं शताब्दीके उत्तरार्ध (विक्रमकी छठी शताब्दीका पूर्वार्ध) के लगभग होना चाहिए। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि जैनेन्द्रकी रचना ईश्वरकृष्णके पहले अर्थात् वि० सं० ५०७ के पहले नहीं हो सकती, क्योंकि उसमें वार्पगण्यका उल्लेख है।

पाठक महाशयने इन प्रमाणोंमें 'हस्तादेयेनु-यस्तेयं चः', 'शरद्वच्चुनकदर्भाशिशर्मकृष्णरणान् भृगुवत्साप्रायणवृपगणब्राह्मणवसिष्ठे' और 'गुरु-द्याद् भायुकेन्द्रे' सूत्र दिये हैं, परन्तु ये तीनों ही जैनेन्द्रके असली सूत्रपाठमें इन रूपोंमें नहीं हैं, अतएव इनसे जैनेन्द्रका समय किसी तरह भी निश्चित नहीं हो सकता है।

हाँ, यदि जैनेन्द्रकी कोई स्वयं देवनन्दिकृत वृत्ति उपलब्ध हो जाय, जिसके कि होनेका हमने अनुमान किया है, और उसमें इन सूत्रोंके विषयको प्रतिपादन करनेवाले वार्तिक आदि मिल जाय—मिल जानेकी संभावना भी बहुत है—तो अवश्य ही पाठक महाशयके ये प्रमाण बहुत ही उपयोगी सिद्ध होंगे।

पाठक महाशयके इन प्रमाणोंके ठीक न होने पर भी दर्शनसारके और मर्कराके ताम्रपत्रके प्रमाणों यह बात लगभग निश्चित ही है कि जैनेन्द्र विक्रमकी छठी शताब्दीके प्रारंभ की रचना है।

जैनेन्द्रोक्त अन्य आचार्य ।

पाणिनि आदि वैयाकरणोंने जिस तरह अपनेसे पहलेके वैयाकरणोंके नामोंका उल्लेख किया है उसी तरह जैनेन्द्रसूत्रोंमें भी नीचे लिखे आचार्योंका उल्लेख मिलता है:—

१-गद् भूतवलिः । ३-४-८३ ।

२-गुणे श्रीदत्तस्वास्त्रियाम । १-४-३४ ।

३-कृष्णपिम्बजां यशोधद्रस्य । २-१-९९ ।

४-रात्रेः कृतिप्रभाचन्द्रस्य । ४-३-१८० ।

५-वन्तेः सिद्धसेनस्य । ५-१-७ ।

६-चतुर्थ्य समन्तभद्रस्य । ५-४-१४० ।

जहाँ तक हम जानते हैं, उक्त छहों आचार्य ग्रन्थकर्त्ता तो हो गये हैं, परन्तु उन्होंने कोई व्याकरण ग्रन्थ भी बनाये होंगे, ऐसा विश्वास नहीं होता। जान पड़ता है, पूर्वोक्त आचार्योंके ग्रन्थोंमें जो जुदा जुदा प्रकारके शब्दप्रयोग पाये जाने होंगे उन्हींको व्याकरणसिद्ध करनेके लिए ये सब सूत्र रचे गये हैं। इन आचार्योंमेंसे जिन जिनके ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनके शब्दप्रयोगोंकी बारीकीके साथ जाँच करनेसे इस बातका निर्णय हो सकता है। आशा है कि जैन समाजके पण्डित गण इस विषयमें परिश्रम करनेकी कृपा करेंगे।

१ भूतवलि । इनका परिचय इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार कथामें दिया गया है। भगवान् महावीरके निर्वाणके ६८३ वर्ष बाद तक अंगशानकी प्रवृत्ति रही। इसके बाद विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त, और अर्हदत्त नामके चार आरातीय मुनि हुए जिन्हें अंग और पूर्वके अंशोंका ज्ञान था। इनके बाद अर्हद्वलि और माघनन्दि आचार्य हुए। इन्हें उन अंशोंके भी कुछ अंश ज्ञान रहा। इनके बाद धरसेन आचार्य हुए। इन्होंने भूतवलि और पुष्पदन्त नामक दो मुनियोंको विधिपूर्वक अध्ययन कराया और इन दोनोंने महाकर्मप्रकृतिप्राभृत या पद्मखण्ड नामक शास्त्रकी रचना की। यह ग्रन्थ ३६ हजार श्लोक प्रमाण है। इसके प्रारंभका कुछ भाग पुष्प-

१ संभवतः यह ग्रन्थ मूढविद्वी (मंगलोर) के जैनमण्डारमें मौजूद है।

दन्त आचार्यका और शेष भूतबलिका बनाया हुआ है। वीरनिर्वाणसंवत् ६८३ के बाद पूर्वोक्त सब आचार्य क्रमसे हुए, या अक्रमसे; और उनके बीचमें कितना कितना समय लगा, यह जाननेका कोई भी साधन नहीं है। यदि हम इनके बीचका समय २५० वर्ष मान लें तो भूतबलिका समय वीरनिर्वाण संवत् ९३३ (शक संवत् ३२८ वि० सं० ४६३) के लगभग निश्चित होता है। और इस हिसाबसे वे पूज्यपाद स्वामीसे कुछ ही पहले हुए हैं, ऐसा अनुमान होता है।

२ श्रीदत्त । विक्रमकी ९ वीं शताब्दीके सुप्रसिद्ध लेखक विद्यानन्दने अपने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें श्रीदत्तके 'जल्पनिर्णय' नामक ग्रन्थका उल्लेख किया है:—

द्विप्रकारं जगौ जल्पं तत्त्व-प्रातिभोगचरम् ।

त्रिषष्टिर्वादिनां जेता श्रीदत्तो जल्पनिर्णये ॥

इससे मालूम होता है कि ये ६३ वादियोंके जीतनेवाले बड़े भारी तार्किक थे। आदिपुराणके कर्ता जिनसेनसूरिने भी इनका स्मरण किया है और इन्हें वादिगजोंका प्रभेदन करनेके लिए सिंह बतलाया है:—

श्रीदत्ताय नमस्तस्मै तपः श्रीदीप्तमूर्तये ।

कण्ठारवायितं येन प्रवादीभप्रभेदने ॥ ४५

वीरनिर्वाण संवत् ६८३ के बाद जो ४ आरातीय मुनि हुए हैं, उनमें भी एक का नाम श्रीदत्त है। उनका समय वीरनिर्वाण सं० ७०० (शक सं० ९५-वि० सं० २३०) के लगभग होता है। यह भी संभव है कि आरातीय श्रीदत्त दूसरे हों और जल्प निर्णयके कर्ता दूसरे। तथा इन्हीं दूसरेका उल्लेख जैनेन्द्रमें किया गया हो।

३ यशोभद्र । आदिपुराणमें संभवतः इन्हीं यशोभद्रका स्मरण करते हुए कहा है—

१ त्रैलोक्यसारके कर्ता 'नेमिचन्द्र' ने और हरिवंश-पुराणके कर्ताने वीर निर्वाणसं ६०५ वर्ष बाद शककाल माना है। उन्हींकी गणनाके अनुसार हमने यहाँ शक संवत् दिया है।

विदुषिणां पु संसत्सु यस्य नामापि कीर्तितम् ।

निखर्वयति तद्वर्षं यशोभद्रः स पातु नः ॥ ४६

इनके विषयमें और कोई उल्लेख नहीं मिला और न यही मालूम हुआ कि इनके बनाये हुए कौन कौन ग्रन्थ हैं। आदिपुराणके उक्त श्लोकसे तो वे तार्किक ही जान पड़ते हैं।

४ प्रभाचन्द्र । आदिपुराणमें न्यायकुसुदचन्द्रोदयके कर्ता जिन प्रभाचन्द्रका स्मरण किया है, उनसे ये पृथक् और पहलेके मालूम होते हैं। क्योंकि चन्द्रोदयके कर्ता अकलङ्कभट्टके समयमें हुए हैं, इस लिए उनका जिक्र जैनेन्द्रमें नहीं हो सकता। मालूम नहीं, ये प्रभाचन्द्र किस ग्रन्थके कर्ता हैं और कब हुए हैं।

५ सिद्धसेन । ये सिद्धसेन दिवाकरके नामसे प्रसिद्ध हैं। ये बड़े भारी तार्किक हुए हैं। स्वर्गीय डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषणका खयाल था कि विक्रमकी सभाके 'क्षपणक' नामक रत्न यही थे। आदिपुराणमें इनका कवि, और प्रवादिगजकेसरी कहकर और हरिवंशपुराणमें सूक्तियोंका कर्ता कहकर स्मरण किया है। न्यायावतार, सम्मतितर्क, कल्याणमन्दिरस्तोत्र और २० द्वात्रिंशिकायें (स्तुतियां) इनकी उपलब्ध हैं। यदि विक्रमका समय ईसाकी छठी शताब्दी माना जाय-जैसा कि प्रो० मोक्षमूलर आदिका मत है-तो सिद्धसेन इसी समयमें हुए हैं और लगभग यही समय जैनेन्द्रके बननेका है। *

६ समन्तभद्र । दिगम्बर सम्प्रदायके ये बहुत ही प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। वीसों दिगम्बर ग्रन्थकारोंने इनका उल्लेख किया है। ये बड़े भारी तार्किक और कवि थे। इनका गृहस्थावस्थाका नाम वर्म था। ये फणिमण्डल (?) के उरगपुर-नरेशके

* सिद्धसेन ईसाकी ६ठी शताब्दीसे बहुत पहले हो गये हैं। क्योंकि विक्रमकी ५ वीं शताब्दीमें हो जाने वाले आचार्य मल्लवार्दाने सिद्धसेनके सम्मतितर्क ऊपर टीका लिखी थी। हमारे विचारसे सिद्धसेन विक्रमकी प्रथम शताब्दिमें हुए हैं।

संपादक—जै. सा. सं.

पुत्र थे। इनके बनाये हुए देवागम (आप्तमीमांसा), युक्त्यनुशासन, बृहत्संन्यभूस्तोत्र, जिन-शतक और रत्नकरण्ड श्रावकाचारः ये ग्रन्थ छप चुके हैं। हरिवंशपुराणमें इनके एक 'जीवसिद्धि' नामक ग्रन्थका उल्लेख मिलता है। पद्मखण्डसूत्रोंके पहले पांच खण्डोंपर भी इनकी बनाई हुई ४८ हजार श्लोक प्रमाण संस्कृत टीकाका उल्लेख मिला है। आवश्यकसूत्रकी मलयगिरिकृत टीकामें 'आद्य-स्तुतिकारोऽप्याह' कहकर इनके स्वयंभू स्तोत्रका एक पद्य उद्धृत किया है। इससे मालूम होता है कि वे सिद्धसेनसे भी पहले के ग्रन्थकर्ता हैं। क्योंकि सिद्धसेन भी स्तुतिकारके नामसे प्रसिद्ध हैं। अभी तक इन दोनों ही आचार्योंका समय निर्णीत नहीं हुआ है।

पूज्यपादके अन्य ग्रन्थ ।

जैनेन्द्रके सिवाय पूज्यपादस्वामीके बनाये हुए अबतक केवल तीन ही ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं और ये तीनों ही छप चुके हैं:-

१—सर्वार्थसिद्धि । दिगम्बर सम्प्रदायमें आचार्य उमास्वातिकृत तत्त्वार्थसूत्रकी यह सबसे पहली टीका है। अन्य सत्र टीकायें इसके बादकी हैं और वे सब इसको आगे रख कर लिखी गई हैं।

२—समाधितंत्र । इसमें लगभग १०० श्लोक हैं, इस लिए इसे समाधिशतक भी कहते हैं। अध्यात्मका बहुत ही गंभीर और तात्त्विक ग्रन्थ है। इस पर कई संस्कृत टीकायें लिखी गई हैं।

३—इष्टोपदेश। यह केवल ५१ श्लोकप्रमाण छोटा-

१ लेखक महाशयके इस कथनमें कि, समन्तभद्र सिद्धसेनसे भी पहले हुए हैं, कोई प्रमाण नहीं है। हमारे विचारसे सिद्धसेन समन्तभद्रके पुरोगामी है। इस विषयके विशेष विचार जाननेके लिये, इस पत्रके प्रथम अंकमें प्रकाशित 'सिद्धसेन दिवाकर और स्वामी समन्तभद्र' शीर्षक हमारा लेख देखना चाहिए।

संपादक-जै. सा. सं.

सा ग्रन्थ है और सुन्दर उपदेशपूर्ण है। ५० आशायरने इसपर एक संस्कृत निबन्ध लिखा है।

इनके सिवाय कहा जाता है कि इनके बनाये हुए और भी कई ग्रन्थ हैं। सर्वार्थसिद्धिकी भूमिकामें श्रीयुत पं० कलापा निटवेने लिखा है कि चिकित्साशास्त्रपर भी पूज्यपादस्वामीके दो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, जिनमेंसे एकमें चिकित्साका और दूसरेमें औषधों तथा धान्योंका गुणनिरूपण है। परन्तु पण्डितश्री महाशयने न तो उक्त ग्रन्थोंका नाम ही लिखा है और न यही लिखनेकी कृपा की है कि वे कहाँ उपलब्ध हैं। शुभचन्द्राचार्यकृत ज्ञानार्णवके नीचे लिखे श्लोकके 'काय' शब्दसे भी यह बात ध्वनित होती है कि पूज्यपादस्वामीका कोई चिकित्सा ग्रन्थ है:-

अपाकुर्वन्ति यद्वाचः क.यवाक्चित्तसंभवम् ।

कलङ्कमङ्गिनां सोय देवनन्दी नमस्यते ॥

पूनेके भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें 'पूज्यपादकृत वैद्यक' नामका एक ग्रन्थ है। यह आधुनिक कनडीमें लिखा हुआ कनडी भाषाका ग्रन्थ है। पर इसमें न तो कहीं पूज्यपादका उल्लेख है और न यही मालूम होता है कि यह उनका बनाया हुआ होगा।

विजयनगरके हरिहरराजाके समयमें एक मंगराज नामका कनडी कवि हुआ है। वि० सं० १४१६ के लगभग उसका आस्तित्व काल है। स्थावर विषयोंकी प्राक्रिया और चिकित्सापर उसने खगेन्द्रमणिदर्पण नामका एक ग्रन्थ लिखा है। इसमें वह आपको पूज्यपादका शिष्य बतलाता है और यह भी लिखता है कि यह ग्रन्थ पूज्यपादके वैद्यक ग्रन्थसे संगृहीत है। इससे मालूम होता है कि पूज्यपाद नामके एक विद्वान् विक्रमकी तेरहवीं शताब्दिमें भी हो गये हैं और लोग भ्रमवश उन्हींके वैद्यक ग्रन्थको जैनेन्द्रके कर्ताका ही बनाया हुआ समझकर उल्लेख कर दिया करते हैं।

वृत्तविलास कविकी कनडी धर्मपरीक्षाका जो पद्य पहले उद्धृत किया जा चुका है उसमें दो ग्रन्थोंका और भी उल्लेख है, एक पाणिनिव्याक-

१ नं. १०६६, सन् १८८७-९१ की रिपोर्ट।

रणकी टीकाका और दूसरा यंत्रमंत्रविषयक शास्त्रका। पूज्यपादद्वारा पाणिनिकी टीकाका लिखा जाना असंभव नहीं है; परन्तु साथ ही वृत्तविलास को पूज्यपादके 'जिनेन्द्रचुद्धि' नामसे भी यह भ्रम हो गया हो तो आश्चर्य नहीं। क्यों कि पाणिनिकी काशिका वृत्तिपर जो न्यास है उसके कर्त्ताका भी नाम 'जिनेन्द्रचुद्धि' है। इस नामसाम्यसे यह समझ लिया जा सकता है कि पूज्यपादने भी पाणिनिकी टीका लिखी है। न्यासकार 'जिनेन्द्रचुद्धि' वास्तवमें बौद्धमिश्र थे और वे अपने नामके साथ 'श्री बोधिसत्त्वदेशीयाचार्य' इस बौद्ध पदवीको लगाते हैं। पूज्यपादके कनडी चरित लेखकने लिखा है कि पाणिनि पूज्यपादके मामा थे और पाणिनिके अधूरे ग्रन्थको उन्होंने ही पूर्ण किया था; परन्तु इस समय ऐसी बातोंपर विश्वास नहीं किया जा सकता।

'जैनाभिषेक' नामक एक और ग्रन्थका जिक्र "जैनेन्द्र निजशब्दभागमतुलं" आदि श्लोकमें किया गया है। यह श्लोक उपर पृष्ठ ६५ में दिया जा चुका है। जहाँ तक हमारा खयाल है जैनाभिषेक और यंत्रमंत्रविषयक ग्रन्थ भी अन्य किसी पूज्यपादके बनाये हुए होंगे और भ्रमसे इनके समझ लिये गये होंगे।

कनडी पूज्यपादचरितमें पूज्यपादके बनाये हुए अर्हत्प्रतिष्ठाक्षण और शान्त्यष्टक नाम स्तोत्रका भी जिक्र है।

पूज्यपाद-चरित।

अन्य बड़े बड़े आचार्योंके समान पूज्यपादके जीवनसम्बन्धी घटनाओंसे भी हम अपरिचित हैं। उनके जाननेका कोई साधन भी नहीं है। सिवाय इसके कि वे एक समर्थ आचार्य थे और हमारे उपकारके लिए अनेक ग्रन्थ बनाकर रख गये हैं, उनका कोई इतिहास नहीं है। आगे हम एक कनडी भाषाके पूज्यपाद-चरितका सारांश देते हैं, जिससे उन लोगोंका मनोरंजन अवश्य होगा, जो अपने प्रत्येक महापुरुषका जीवनचरित-चाहे वह कैसा ही हो-पढ़नेके लिए उत्कण्ठित रहते हैं। विद्वान् पाठक इससे यह समझ सकेंगे कि

सत्यताकी जरा भी परवा न करनेवाले और साम्प्रदायिकताके मोहमें बहनेवाले लेखक किस-तरह तिलका ताड़ बनाते हैं।

इस चरितको चन्द्रय्य नामक कविने दुःषम कालके परिधावी संवत्सरकी आश्विन शुक्ल ५, शुक्रवार, तुलालग्राममें समाप्त किया है। यह कवि कर्नाटक देशके मलयनगरकी 'ब्राह्मणगली' का रहनेवाला था। वत्सगोत्री और सूर्यवंशी ब्राह्मण वम्मणाके दो पुत्र हुए सातप्पा हुव्व ब्रह्मरस और विजयप्पा। विजयप्पाके ब्रह्मरस और ब्रह्मरस के देवप्पा हुआ। इसी देवप्पाकी कुसुमम्मा नामक पुत्रीसे कवि चन्द्रय्य का जन्म हुआ था।

चरितका सारांश यह है:—

"कर्नाटक देशके 'कोले' नामक ग्रामके माधवभट्ट नामक ब्राह्मण और श्रीदेवी ब्राह्मणीसे पूज्यपादका जन्म हुआ। ज्योतिषियोंने बालकको त्रिलोकपूज्य वतलाया, इस कारण उसका नाम पूज्यपाद रक्खा गया। माधवभट्टने अपनी स्त्रीके कहनेसे जैनधर्म स्वीकार कर लिया। भट्टजीके सालेका नाम पाणिनि था, उसे भी उन्होंने जैनी बननेको कहा, परन्तु प्रतिष्ठाके खयालसे वह जैनी न होकर मुडी-गुंडग्राममें वैष्णव संन्यासी हो गया। पूज्यपादकी कमलिनी नामक छोटी बहिन हुई, वह गुणभट्टको व्याही गई। गुण भट्टको उससे नागार्जुन नामक पुत्र हुआ।

पूज्यपादने एक वगीचेमें एक सांपके मुंहमें फंसे हुए मेंढकको देखा। इससे उन्हें वैराग्य हो गया और वे जैन साधु बन गये।

पाणिनि अपना व्याकरण रच रहे थे। वह पूरा न होने पाया था कि उन्होंने अपना मरणकाल निकट आया जान लिया। इससे उन्होंने पूज्यपाद से जाकर कहा कि इसे आप पूरा कर दीजिए। उन्होंने पूरा करना स्वीकार कर लिया।

पाणिनि दुर्ध्यानवश मरकर सर्प हुए। एक बार उसने पूज्यपादको देखकर फूटकार किया, इसपर पूज्यपादने कहा, विश्वास रखो, मैं तुम्हारे व्याकरणको पूरा कर दूंगा। इसके बाद उन्होंने पाणिनि व्याकरणको पूरा कर दिया।

इसके पहले वे जैनेन्द्र व्याकरण, अहं प्रतिष्ठा-क्षण, और वैद्यक ज्योतिष आदिके कई ग्रन्थ रच चुके थे ।

गुणभट्टके मर जानेसे नागार्जुन अतिशय दरिद्री हो गया । पूज्यपादने उसे पद्मावतीका एक मंत्र दिया और सिद्ध करनेकी विधि बतला दी । पद्मावतीने नागार्जुनके निकट प्रकट होकर उसे सिद्धरसकी वनस्पति बतला दी ।

इस सिद्धरससे नागार्जुन सोना बनाने लगा । उसके गर्वका परिहार करनेके लिए पूज्यपादने एक मामूली वनस्पतिसे कई बड़े सिद्धरस बना दिया । नागार्जुन जब पर्वतोंको सुवर्णमय बनाने लगा, तब भरणेन्द्र-पद्मावतीने उसे रोका और जिनालय बनानेको कहा । तदनुसार उसने एक जिनालय बनवाया और पादर्वनाथकी प्रतिमा स्थापित की ।

पूज्यपाद पैरोंमें गगनगामी लेप लगाकर विदेह-क्षेत्रको जाया करते थे । उस समय उनके शिष्य वज्रतन्दिने अपने साथियोंसे झगडा करके द्राविड संघकी स्थापना की ।

नागार्जुन अनेक मंत्र तंत्र तथा रसादि सिद्ध करके बहुत ही प्रसिद्ध हो गया । एकवार दं. सुन्दरी स्त्रियां आईं जो गाने नाचनेमें कुशल थीं । नागार्जुन उनपर मोहित हो गया । वे वहीं रहने लगीं और एक दिन अवसर पाकर उसे मारकर और उसकी रसगुटिका लेकर चली गयी ।

पूज्यपाद मुनि बहुत समयतक योगाभ्यास करते रहे । फिर एक देवके विमानमें बैठकर उन्होंने अनेक तीर्थोंकी यात्रा की । मार्गमें एक जगह उनकी दृष्टि नष्ट हो गई थी, सो उन्होंने एक शान्त्यष्टक बनाकर ज्योंकी त्यों कर ली । इसके बाद उन्होंने अपने ग्राममें आकर समाधिपूर्वक मरण किया । ”

इस लेखके लिखनेमें हमें श्रद्धेय मुनि जिनविजयजी और पं० बेहचरदास जीवरजजीसे बहुत अधिक सहायता मिली है । इस लिए हम उक्त दोनों सज्जनोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं । मुनिमहोदयकी कृपासे हमको जो इस लेख सम्बन्धी सामग्री प्राप्त हुई है, वह यदि न मिलती तो

यह लेख शायद ही इस रूपमें पाठकोंके सम्मुख उपस्थित हो सकता ।

पूना—भाद्रकृष्ण ६ सं० १९७७ विक्रमीय

परिशिष्ट ।

[भगवद्वाग्वादिनीका विशेष परिचय]

इसके प्रारंभमें पहले ‘लक्ष्मीरात्यन्तिकी यस्य’ आदि प्रसिद्ध भंगलाचरणका श्लोक लिखा गया था । परन्तु पीछेसे उसपर हरताल फेर दी गई है और उसकी जगह यह श्लोक और उत्थानिका लिख दी गई है—

ओं नमः पार्श्वाय ।

त्वारितमहिमदूतामंत्रितेनाद्भुतात्मा,
त्रिपममपि मधोना पृच्छता शब्दशास्त्रम् ।

ध्रुतमदरिपुरासीद् वादिबृन्दाग्रणीनां
परमपदपटुर्यः स ध्रिये वीरदेवः ॥

अष्टवर्षिकोऽपि तथार्थविबभक्ताभ्यर्थनाप्रणुनः स भगवानिदं प्राह—सिद्धिरनेकान्तात् । १-१-१ ।

इसके बाद सूत्रपाठ शुरू हो गया है । पहले पत्रके ऊपर मार्जिनमें एक टिप्पणी इस प्रकार दी है जिसमें पाणिनि आदि व्याकरणोंको अप्रामाणिक ठहराया है ।

“ प्रमाणपदव्यामुपेक्षणीयानि पाणिन्यादिप्रणतिसूत्राणि स्यात्कारवादित्रदूरत्वात्परिवाजकादिभाषिनवत् । अप्रामाणानि च कपोलकल्पनामलिनानि हीनमातृकत्यात्तद्वेदेव । ”

इसके बाद प्रत्येक पादके अन्तमें और आदिमें इस प्रकार लिखा है जिससे इस सूत्रपाठके भगवन्पणीत होनेमें कोई सन्देह बाकी न रह जाय—

“ इति भगवद्वाग्वादिन्यां प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ।
ओं नमः पार्श्वाय । स भगवानिदं प्राह । ”

सर्वत्र ‘नमः पार्श्वाय’ लिखना भी हेतुपूर्वक है । जब ग्रन्थकर्ता स्वयं महावीर भगवान् हैं तब उनके ग्रन्थमें उनसे पहलेके तीर्थंकर पार्श्वनाथको ही नमस्कार किया जा सकता है । देखिए, कितनी दूरतकका विचार किया गया है ।

आगे अध्याय २ पाद २ के ‘सह्यहचक्ष्यापतेरिः’ (६४) सूत्रपर निम्न प्रकार टिप्पणी दी है और इससे

सिद्ध किया है कि यदि यह व्याकरण भगवत्कृत न हो तो फिर सिद्धहैमके अमुक सूत्रकी उपपत्ति नहीं बैठ सकती !—

“इदं शब्दानुशासनं भगवत्कर्तृकमेव भवति । ‘सहवृत्त्यापतोरेर्धोऽनुरुज्जगमेः किलिङ् चवत्-डौ सासहिवावहिचा-चलिपापति, सखिच-किदविजहिनेमीति सिद्धहैमसूत्रस्याऽ-न्यथानुपपत्तेः । सर्ववर्मपाणिन्यैस्तु ‘आहवणोपचारोपिनां विद्वच्च १, आहवमहनजनः किकिनौ लिङ् चेति २ ।”

इसके बाद ३-२-२२ सूत्रपर इस प्रकार टिप्पणी दी है—

“कथं न शब्दः प्राग्भावेत्यादि । क्षेत्रादिनयापि शिक्षाविशेषाः ।

कुमारशब्दः प्राच्यानामादिर्वनं मासमूर्चिवान् ।

मैथुनं तु मिपदन्तरे वाचकं मधुसर्पिषः ॥

इत्याद्यन्यथानुपपत्तेरिति वैदिकितिमिरोपलक्षणम् ।

इसके बाद ३-४-४२ सूत्र (स्तेयार्हस्यं) पर फिर एक टिप्पणी है । देखिए—

“इदं शब्दानुशासनं भगवत्कर्तृकमेव भवति । अर्हतस्तोन्त च १. महायद्वा २, साहेषणिगुद्ताद्यः ३, स्तेनाज-लुहृ च ४, ति सिद्धहैमसूत्रान्दधानुपपत्तेः । पाणिन्यादौ त्वार्हत्यक्षरं प्रति सूत्राभावात् । कथं सरस्वतीकिंठाभरणे तदाप्तिः । ऐन्द्रानुशागदहंतशब्दतथोति पश्य ।”

फिर ३-४-४० सूत्र (रात्रेः प्रभाचन्द्रस्य) पर एक टिप्पणी है । इसमें यौटिकों या दिगम्बरियों का सत्कार किया गया है—

“इदं शब्दानुशासनं भगवत्कर्तृकमेव भवति । रात्रेः प्रभाचन्द्रस्य सूत्रस्य प्रक्षेपता स्फुटत्वात् । अतो वैदिकेतिमिरेपलक्षणे—

देवनन्दिमतां मोहः प्रज्ञपरजसोरि चेत् ।

चिराय भवता रात्रेः प्रभाचन्द्रस्य जीव्यतां ॥

पंचोत्तरः कः स्वानासाः प्रमोदो नम यस्य यः(?) ।

यिस्मयो रनयः शिष्टया स तं चेद्देवनन्दिनमिति ॥

विक्रमादनुचयुगाब्दे ४०६ देवनन्दी, ततो गुणनंद-कुमा-नंदि-लाकचंद्रानंतरं मुनिरैयुगाब्दे प्रथमः प्रभाचंद्र इति वैदिके ।”

१ यह ‘वैदिकमतमिरोपलक्षण’ नामका कोई ग्रन्थ है और संभवतः इसी वाग्वादिनांके कर्ताका बनाया हुआ होगा । इसका पता लगानेकी वडी जरूरत है । इससे दि-गम्बर और इवेतान्दर सम्प्रदायसन्ध्या अनेक बातों पर प्रकाश पड़ेगा ।

इसी तरह ४-३-७ (वेत्तेः सिद्धसेनस्य) सूत्र पर लिखा है—

“वेत्तेः सिद्धसेनस्य, चतुष्टयं समंतमद्रस्य प्रक्षेपेऽर्वाच्यता स्फुटत्वात्, रात्रेः प्रभाचन्द्रस्य वादिति वैदिकितिमिरोपलक्षणे ।”

अन्तमें ५-४-६५ (शश्वच्छोमि) सूत्रपर एक टिप्पणी दी है जिसमें पाणिनि आदि वैयाकरणोंकी असर्वज्ञता सिद्ध की गई है—

“प्रयोगाज्ञातना मायुदनादिसिद्धा हि प्रयोगाः । ज्ञानेना तु केवलं ते प्रकाश्यन्ते न तु क्रियन्ते इति । अतएव शश्वच्छोदीति पाणिनीयसूत्रं वर्गप्रथमेभ्यः शकारः स्वरयवरपरः शका इच्छ-कारं नवेति सर्ववर्मकर्तृककालापकसूत्रानुसारि । अतएव पाणि-न्यादयोऽसर्वज्ञा इति सिद्धं । अतएव तेषां तत्त्वत आसत्वाभा-व इति सिद्धिः । नन्वभ्यः प्रभृतिनिसूत्रे निर्जरसैर्मुद्रया यदि यु-क्तिस्ते मरुत्कारिणैव मवरुतमागते न तु सारस्वतवाग्देव्या । शश्वच्छोदिप्रमुखैः सूत्रैस्तच्छश्रुप्रभृतिः । दादर्शा कालापाद्युपजीवी पाणिनिराजितत्वं प्रति नाव्यक्तः ।”

जहां सूत्रपाठ समाप्त होता है, वहां लिखा है—

इत्याख्यद्रगवानर्हन्भुत्वेन्द्रस्तु मुदं बहन् ।

वाग्देवमन्त्राञ्जवन्दः स्वमंदिराभिमुखोऽभवत् ॥

आगे ग्रन्थ प्रशस्ति देखिए—

“ओं नमः सकलकलाकौशलपेशलशीलशालेनं पा-थ्याय पाठ्वेपादर्वाय । स्वस्ति तन्मयचनसुधातमुद्रलहरास्नाधि-भ्यो महामुनिभ्यः । परिसमार्पे च जैनैर्नमः नाम महाव्याकरणं । तदिदं यत्स्वयं श्रीवीरप्रभुर्भघोने पृच्छते प्रकाशयाचकार । सपा-दलक्षव्याख्यानकपरमतमदांधकारापहारपरममिति । नमः श्रीमन्वर-परमेश्वरपादप्रसादविशदस्याद्वादनयसमुपासनगुणको-टिमत्कौटिकगणाविर्भूताचिद्विभूतिविमलमद्रवाङ्मूलविपुलवृहत्त-थोनिगमनिर्गतनागपुरीयस्वच्छगच्छसमुत्थमुत्पविपाश्चंद्रशा-खासुखारुतसुफुतिवररामेदूपाध्यायचारुचरणारविंदरजोराजी-मधुकरानुकरवाचकपदवीपवित्रताक्षयचंद्रवरणभ्यः ससुधी रक्तचंद्रम् । श्रीवीरात् २२६७ विक्रमनृपानु सं. १७९७ फाल्गुनसिन्त्रयोदशीभौमे तक्षकाल्यपुरस्थेन रत्नविगा दर्श-नपाविधाय लिखितं चिरं नवान् ।”

ग्रन्थके पहले पत्रकी खाली पीठपर भी कुछ टिप्पणियां हैं और उनमें अधिकांश वे ही हैं जो ऊपर दी जा चुकी हैं । शेष इस प्रकार हैं—

ओं नमः पादवीर्य ।

जैनेन्द्रमैन्द्रतः सिद्धहेमतो जयहेमवत् ।

प्रकृत्यन्तदूरत्वान्नान्यतामेतुमर्हति ।

कथं

इन्द्रध्वजः कश्चिन्नपिशली शाकटायनः ।

पाणिन्यमराजिनेन्द्रा जयत्यष्टा हिं शाब्दिकाः ॥

इति ? चतुर्थी तद्धितानुलक्षणात् ।

यदिद्राय जिनेन्द्रेण कौमारेपि निरूपितं ।

ऐन्द्रं जैनेन्द्रमिति तत्प्राहुः शब्दानुशासनं ।

यदावश्यकनिर्युक्तिः—

अहं तं अम्मापिभरो जाणिता अहियअट्टवासं तु ।

कयकोउअलंकारं लेहायरिअस्स उवाणिंति ॥

सक्को अ तस्समक्खं भयवत्तं आसणे निवेसिता ।

सहसलक्खं पुच्छे वागरणं अवयवा इदं ॥ इति ॥

तदवयवाः केचन उपाध्यायेन गृहीताः । ततश्चैन्द्रं

व्याकरणं संजातमिति हरिभद्रः ।

यत्तु देवनन्दिबौटिकपूज्यपाद इतिच्छंतस्तदगुरुकाः

पूज्यपादस्य कक्षण ।

द्विसंधानकवेः काव्यं रत्नजयमपश्चिमम् ।

इति धनंजयके पातदयुक्तं । नेति चैरुक्तं जैनेन्द्रमिति । द्वादश-

स्वरमध्यामिति चेन्न । इतरोपपदस्याभावात् । जैनकुमारसम्भव-

वद्भातिरिति चेन्न । कुमारवर्दिद्रं प्राति श्रुपाभावात् धारीति कृतत-

द्धितभावाच्च । तर्हि

लक्ष्मीरात्यंतिको यस्य निरवद्यावभासने ।

देवनन्दितपूजेनो नमस्तस्मै स्वयंभुवे ।

का गतिरिति चेत् ।

लक्ष्मीरात्यंतिकोपद्यमुपलेशस्य कितरां ।

ऐन्द्रत्वयकि तत्त्वार्थं मोक्षमार्गस्य पद्यवत् ॥^१

मिथादयश्चेत्प्रथमं यदि हैमेत्वपेक्ष्यते ।

कालापकादि न तथा पट्टवैन्द्रं महते कृतिः ॥

पूर्वत्र । मिप् वस् मस् १ सिप् थस् थ २ तिप् तस् क्षि

३ इड् वहि महि १ थस् आथां ध्वं २ त आताम् झड्

३ इति ।

आख्यातरीतिं प्रति देवराजे

मिब्वस्मसो यः पितः रादितोदाः ।

जीवं प्रपन्नाहममात्थ विश्वे

तत्त्वादिमं स्वां मतिमात्मनार्थं ॥^२

तर्हि सिद्धसेनादिविशेषाणि दुर्निवार इति चेन्न ।

जातामात्रोपि चिद्द्वयं प्रत्यात्मशरणां सि यः ।

जनता का वराकीयं परात्मन् वीर तत्पुर ॥

इति बौटिकमततिमिरोपलक्षणस्य तुर्येऽवकाशे । इन्द्रजिने-
द्रौ प्रयुत्तरिणौ यदतो डे- टातद्धिततत्त्वमासमिबिद्धौरेयम-
दैन्द्रं जैनेन्द्रं व्याकरणानां । सिद्धिमेनेकातादिच्छेदं अःXकXपाई
त्यतथारीते हेमांगीकृतवर्मन्प्रक्षेपार्यविजेयचिरंजीया इति
प्रसन्न चंद्रोत्पले (?) ।

१ इसके आगे ४-३-७ सूत्रकी टिप्पणी जैसा ही लिखा
है और फिर ४-४-४० सूत्रकी टिप्पणीके 'देवनन्दिमतां'
आदि दो श्लोक दिये हैं ।

२ इसके आगे ५-४-६५ सूत्रकी टिप्पणी दी है ॥

गंधहस्तिमहाभाष्यकी खोज

और

आप्तमीमांसा (देवागम) की स्वतंत्रता ।

[लेखक—श्रीयुत बाबू जूगलकिशोरजी, मुखनार ।]

कहा जाता है कि भगवान् श्रीसमन्तभद्राचार्यने तत्त्वार्थसूत्र पर ' गंधहस्ति महाभाष्य ' नामके एक महान् ग्रंथकी रचना की थी, जिसकी श्लोक-संख्याका परिमाण ८४ हजार है। यह ग्रंथ भारतके किसी भी प्रसिद्ध भंडारमें नहीं पाया जाता। विद्वानोंकी इच्छा इस ग्रंथराजको देखनेके लिये बढ़ी ही प्रबल है। बम्बईके सुप्रसिद्ध सेठ श्रीमान् माणिकचंद हीराचदजी जे० पी० ने इस ग्रंथरत्नका दर्शन मात्र करानेवालेके वास्ते ५०० रुपयेका नकद पारितोषिक भी निकाला था। परंतु खेद है कि कोई भी उनकी इस इच्छाको पूरा नहीं कर सका और वे अपनी इस महती इच्छाको हृदयमें रखे हुए ही इस संसारसे कूच कर गये। निःसन्देह जैनाचार्योंमें स्वामी समन्तभद्रका आसन बहुत ही ऊँचा है। वे एक बड़े ही अपूर्व और अद्वितीय प्रतिभाशाली आचार्य हो गये हैं। उनका शासन महावीर भगवान् के शासनके तुल्य समझा जाता है और उनकी आप्तमीमांसादिक कृतियोंको देखकर बड़े बड़े चादी विद्वान् चकित होते हैं। ऐसी हालतमें आचार्य महाराजकी इस महती कृतिके लिये जिसका मंगलाचरण ही आप्तमीमांसा (देवागम) कहा जाता है, यदि विद्वान् लोग उत्कण्ठित और लालायित हों तो इसमें कुछ भी, आश्चर्य और अस्वाभाविकता नहीं है। और यही कारण है कि अभी तक इस ग्रंथरत्नकी खोजका प्रयत्न जारी है और अब विदेशोंमें भी उसकी तलाश की जा रही है। हालमें कुछ समाचारपत्रों द्वारा यह प्रकार

हुआ था कि पुना लायब्रेरीकी किसी सूची परसे आस्ट्रिया देशके एक नगरकी लायब्रेरीमें उक्त ग्रंथके अस्तित्वका पता चलता है। साथ ही, उसकी कापी करनेके लिये दो एक विद्वानोंको वहाँ भेजने और खर्चके लिये कुछ चंदा एकत्र करनेका प्रस्ताव भी उपस्थित किया गया था। हम नहीं कह सकते कि ग्रंथके अस्तित्वका यह समाचार कहाँ तक सत्य है और इस बातका यथाचित निर्णय करनेके लिये अभी तक क्या क्या प्रयत्न किया गया है। परंतु इतना जरूर कहेंगे कि बहुतसे भंडारोंकी सूचियाँ अनेक स्थानों पर भ्रमपूर्ण पाई जाती हैं। पुना लायब्रेरीकी ही सूचीमें सिद्धसेन दिवाकरके नामसे ' वादिगजगंधहस्ति ' नामके एक महान् ग्रंथका उल्लेख मिलता है जो यथार्थ नहीं है। वहाँ इस नामका कोई ग्रंथ नहीं। यह नाम किसी दूसरे ही ग्रंथके स्थान पर गलतीसे दर्ज हो गया है। ऐसी हालतमें केवल सूचीके आधार पर आस्ट्रिया जैसे सुदूरदेशकी यात्राके लिये कुछ विद्वानोंका निकलना और भारी खर्च उठाना युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। बेहतर तरीका, इसके लिये, यह हो सकता है कि वहाँके किसी प्रसिद्ध फोटोग्राफरके द्वारा उक्त ग्रंथके आद्यतके १०-२० पत्रोंका फोटो पहले मंगाया जाय और उन परसे यदि यह निर्णय हो जाय कि वास्तवमें यह ग्रंथ वही महाभाष्य ग्रंथ है तो फिर उसके शेष पत्रोंका भी फोटो आदि मंगा लिया जाय। अस्तु। ग्रंथके वहाँ अस्तित्व विषयमें अभी तक हमारा कोई विश्वास नहीं है।

आस्ट्रियाके एक प्रसिद्ध नगरकी प्रसिद्ध लायब्रेरी में उक्त ग्रंथ मौजूद है और हर्मन जैकोबी जैसे ग्वोजी विद्वानोंको उसका पता तक न लगे, यह बात कुछ समझमें नहीं आती। हमें इस ग्रंथके विषयमें यह बात भी बहुत ग्वटकती है कि 'आम मीमांसा' अर्थात् 'देवागम' शास्त्रकी, जो कुल ११४ श्लोकपरिमाण है, इसका मंगलाचरण बनला या जाता है। देवागम भारतके प्रायः सभी प्रसिद्ध भंडारोंमें पाया जाता है। उस पर अनेक टीका, टिप्पण और भाष्य भी उपलब्ध हैं। अकलंकदेवकी 'अष्टशती' और विद्यानंद स्वामीकी 'अष्टसहस्री' उसीके भाष्य और महाभाष्य हैं। जिस ग्रंथका मंगलाचरण ही इतने महत्त्वका लिये हुए हो वह शेष संपूर्ण ग्रंथ कितना महत्त्वशाली होगा और विद्वानोंने उसका कितना अधिक संग्रह किया होगा, इसके बनलानेकी जरूरत नहीं है। बिना पाठक सहजहीमें इसका अनुमान कर सकते हैं। परंतु तो भी ऐसे महान ग्रंथका भारतके किसी भंडारमें अस्तित्व न होना, उसके शेष अंशोंपर टीका-टिप्पणका मिलना तो दूर रहा उनके नामोंकी कहीं चर्चानक न होना, यह सब कुछ कम आश्चर्यमें डालनेवाली बातें नहीं हैं। और इनपरसे तरह तरहके विकल्प उत्पन्न होते हैं। यह खयाल पैदा होता है कि क्या समन्तभद्रने 'गन्धर्वहस्तिमहाभाष्य' नामका कोई ग्रंथ बनाया ही नहीं और उनकी आत्ममीमांसा (देवागम) एक स्वतंत्र ग्रंथ है? यदि बनाया तो क्या वह पूरा न हो सका और आत्ममीमांसा तक ही बनकर रह गया? यदि पूरा हो गया था तो क्या फिर बन कर समाप्त होते ही किसी कारण विशेषसे वह नष्ट हो गया? यदि नष्ट नहीं हुआ तो क्या फिर प्रचलित सिद्धांतोंके विरुद्ध उसमें कुछ ऐसी बातें थी जिनके कारण बादके आचार्यों का सकल भद्धारकोंको उसे लुप्त करनेकी जरूरत पड़ी अथवा बादका उसके नष्ट हो जानेका कोई दूसरा ही कारण है? इन सब विकल्पोंको छोड़कर अभी तक हमें यह भी मालूम नहीं हुआ कि, १ समन्तभद्रने 'गन्धर्वहस्तिमहाभाष्य' नामका कोई ग्रंथ बनाया है, २ वह उमास्वान्तिक तत्त्वार्थ सूत्रका भाष्य है, ३ उसकी श्लोकसंख्या ८४ हजार

है और 'देवागम' स्तोत्र उसका अदिम मंगलाचरण है; इन सब बातोंकी उपलब्धि कहाँसे होती है—कौनसे प्राचीन आचार्योंके किम् ग्रंथमें इन सब बातोंका पता चलता है? यह दूसरी बात है कि आजकलके अच्छे अच्छे विद्वान्—न सिर्फ जैन विद्वान बल्कि सनीशचंद्र विद्याभरण, भारती जेने अजैन विद्वान भी—अपने अपने ग्रंथों तथा लेखोंमें इन सब बातोंका उल्लेख करते हुए देखे जाते हैं। परंतु ये सब उल्लेख एक दूसरेकी देखादेखी हैं परास्पर उनका कोई सम्बन्ध नहीं और न वे जांच तोल कर लिये गये हैं। इसी प्रकारके कुछ उल्लेख पिछले भाषापरिचितोंके भी पाये जाते हैं। इन सब आधुनिक उल्लेखोंसे इस विषयका कोई ठोस निर्णय नहीं हो सकता। और न हम उन्हें ऐसी हालतमें बिना किसी हेतुके प्रमाणकोटिमें रख सकते हैं। हमारी रायमें इन सब बातोंके निर्णयार्थ-विकल्पोंके समाधानार्थ अनंतरंग खोजकी बहुत बड़ी जरूरत है। हमें सबसे पहले-विदेशोंमें जानेसे भी पहले—अपने घरके साहित्यका गहरा दृष्टीलना होगा; तब कहीं हम यथार्थ निर्णय पर पहुँच सकेंगे। अस्तु।

इस विषयमें हमने आजतक जो कुछ खोज की है और उसके द्वारा हमें जो कुछ मालूम हो सका है उसे हम अपने पाठकोंके विचारार्थ और यथार्थ निर्णयार्थ सहायनार्थ नीचे प्रकट करने हैं:—

१—उमास्वान्तिक तत्त्वार्थसूत्रपर स्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक और श्रुतसागर नामकी जो टीकाएँ उपलब्ध हैं उनमें, जहाँ तक हमारे देखनेमें आया कहीं भी 'गन्धर्वहस्ति महाभाष्य' का नामोल्लेख नहीं है और न इसी बातका कोई उल्लेख पाया जाता है कि समन्तभद्रने उक्त तत्त्वार्थसूत्रपर भाष्य लिखा है। समन्तभद्रका अस्तित्वकाल इन सब टीकाओंके बननेसे पहले माना जाता है। यदि इन टीकाओंके रचयिता पूज्यपाद, अकलंक देव, विद्यानन्द और श्रुतसागरके समयोंमें समन्तभद्रका उसी सूत्रपर ऐसा कोई महत्त्वशाली भाष्य विद्यमान होता तो उक्त टीकाकार किसी न किसी रूपमें इस बातको सूचित जरूर करते, ऐसा हृदय कहता है। परंतु उनके टीकाग्रंथोंसे ऐसा कोई सूचना नहीं

पाई जाती। प्रत्युतः श्रुतसागरसूरिने अपने अध्ययन विषयक अथवा टीकाके आधार-विषयक जिन प्रधान ग्रन्थोंका उल्लेख अपनी टीकाकी संधियोंमें किया है उनमें साफ तौरसे श्लोकवार्तिक और सर्वार्थसिद्धिका ही नाम पाया जाता है, गन्धहस्ति-महाभाष्यका नहीं। यदि ऐसा महान् ग्रन्थ उन्हें उपलब्ध होता तो कोई वजह नहीं थी कि वे उसका भी साथमें नाम-लेख न करते।

२—आप्तमीमांसा (देवागम) पर, जिसे गन्धहस्तिमहाभाष्यका मंगलाचरण कहा जाता है, इस समय तीन संस्कृत टीकाएँ उपलब्ध हैं। एक 'वसुनन्दिवृत्ति', 'दूसरी' 'अष्टशती' और तीसरी 'अष्टसहस्री' इनमेंसे किसी भी टीकामें गन्धहस्ति महाभाष्यका कोई नाम नहीं है, और न यही कहीं सूचित किया है कि यह आप्तमीमांसा ग्रन्थ गन्धहस्ति महाभाष्यका मंगलाचरण अथवा उसका प्राथमिक अंश है। किसी दूसरे ग्रन्थका एक अंश होनेको हालतमें ऐसी सूचनाका किया जाना बहुत कुछ स्वाभाविक था।

३—श्रीइन्द्रनन्दि आचार्यके बनाये हुए 'श्रुतावतार' ग्रन्थमें भी समन्तभद्रके साथ, जहाँ कर्म-प्राभृतपर उनकी ४८ हजार श्लोकपरिमाण एक सुन्दर संस्कृत टीकाका उल्लेख किया गया है वहाँ गन्धहस्ति महाभाष्यका कोई नाम नहीं है। बल्कि इतना प्रकट किया गया है कि वे दूसरे सिद्धान्त ग्रन्थ (कयाय प्राभृत) पर टीका लिखना चाहते थे परन्तु उनके एक सधर्मी साधुने द्रव्यादिशुद्धिकर प्रयत्नोंके अभावसे उन्हें वैसा करनेसे रोक दिया। बहुत संभव है कि इसके बाद उनके द्वारा कोई बड़ा ग्रन्थ न लिखा गया हो।

४—श्रवणबेलगुलके जितने शिलालेखोंमें समन्तभद्रका नाम आया है उनमेंसे किसीमें भी आचार्य महोदयके नामके साथ 'गन्धहस्ति महाभाष्य' का उल्लेख नहीं है। और न यही लिखा मिलता है कि उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र पर कोई टीका लिखी है। हाँ, उनके शिष्य शिवकोटि आचार्यके सम्बन्धमें इतना कथन जरूर पाया जाता है कि उन्होंने तत्त्वार्थसूत्रको अलंकृत किया, अर्थात् उसपर टीका लिखी (देखा शिला लेख नं० १०५)

५—ब्रह्मनेमिदत्तने आराधना कथाकोशमें समन्तभद्रकी एक कथा दी है परन्तु उसमें उनके किसी भी गन्धहस्तिमहाभाष्यके नामकी कोई उपलब्धि नहीं होती।

६—संस्कृत प्राकृतके और भी बहुतसे उपलब्ध ग्रन्थ जो देखनेमें आये और जिनमें किसी न किसी रूपसे समन्तभद्रका स्मरण किया गया है उनमें भी हमें स्पष्टरूपसे कहीं गन्धहस्ति महाभाष्यका नाम नहीं मिला। और दूसरे अनेक विद्वानोंसे जो इस विषयमें दर्याफ्त किया गया तो यही उत्तर मिला कि गन्धहस्ति महाभाष्यका नाम किसी प्राचीन ग्रन्थमें हमारे देखनेमें नहीं आया, अथवा हमें कुछ याद नहीं है।

७—ग्रन्थके नाममें 'महाभाष्य' शब्दसे यह सूचित होता है कि इस ग्रन्थसे पहले भी तत्त्वार्थसूत्रपर कोई भाष्य विद्यमान था जिसकी अपेक्षा इसे 'महाभाष्य' संज्ञा दी गई है। परन्तु दिगम्बर साहित्यसे इस बातका कहीं कोई पता नहीं चलता कि समन्तभद्रसे पहले भी तत्त्वार्थसूत्र पर कोई भाष्य विद्यमान था। रही श्वेताम्बर साहित्यकी बात, सो श्वेताम्बर भई इस बातको मानते ही हैं कि उनका मौजूदा 'तत्त्वार्थाधिगम भाष्य' स्वयं उमास्वामिका बनाया हुआ है। परन्तु उनकी इस मान्यताको स्वीकार करनेके लिये अभी हम तैयार नहीं हैं। उनका वह ग्रन्थ अभी विवादग्रस्त है। उसके विषयमें हमें बहुत कुछ कहने सुननेकी जरूरत है। इस पर यदि यह कहा जाय कि बादको बने हुए भाष्योंकी अपेक्षा बहुत बड़ा होनेके कारण उसे पछिसे महाभाष्य संज्ञा दी गई है तो यह मानना पड़ेगा कि उसका असली नाम 'गन्धहस्ति भाष्य' अथवा 'गन्धहस्ति' ऐसा कुछ था।

८—ऊपर जिन ग्रन्थादिकोंका उल्लेख किया गया है उनमें कहीं यह भी जिक्र नहीं है कि समन्तभद्रने ८४ हजार श्लोकपरिमाणका कोई ग्रन्थ रचा है और इस लिये गन्धहस्ति महाभाष्यका जो परिमाण ८४ हजार कहा जात है उसकी इस संख्याकी भी किसी प्राचीन साहित्यसे उपलब्धि नहीं होती।

९—जब उमास्वामिके तत्त्वार्थसूत्रपर ८४ हजार

श्लोकपरिमाण एक महत्त्वशाली भाष्य पहलेसे मौजूद था तब यह बात समझमें नहीं आती कि सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक और श्लोकवार्तिकके बननेकी जरूरत ही क्यों पैदा हुई। यदि यह कहा जाय कि ये ग्रन्थ गन्धहस्ति महाभाष्यका सार लेकर संक्षेपमन्त्रिवाले शिष्योंके वास्ते बनाये गये हैं तो यह बात भी कुछ बनती हुई मालूम नहीं होती; क्यों कि ऐसी हालतमें श्रीपूज्यपाद, अकलंकदेव और विद्यानन्द स्वामी अपने अपने ग्रन्थोंमें इस प्रकारका कोई उल्लेख जरूर करते जैसा कि आम तौर पर दूसरे आचार्योंने किया है, जिन्होंने अपने ग्रन्थोंको दूसरे ग्रन्थोंके आधारपर अथवा उनका सार लेकर बनाया है। परंतु चूँ कि इनमें ऐसा कोई उल्लेख नहीं है, इस लिये ये सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थ गन्धहस्तिमहाभाष्यके आधारपर अथवा उसका सार लेकर बनाये गये हैं ऐसा माननेको जी नहीं चाहता। इसके सिवाय अकलंकदेव और विद्यानन्दके भाष्य वार्तिकके ढंगसे लिखे गये हैं। वे 'वार्तिक' कहलाते भी हैं। और वार्तिकोंमें उक्त, अनुक्त, दुरुक्त, तीनों प्रकारके अर्थोंका विचारणा और अभिव्यक्ति हुआ करती है, जिससे उनका परिमाण पहले भाष्योंसे प्रायः कुछ बढ़ जाता है। जैसे कि सर्वार्थसिद्धिसं राजवार्तिकका और राजवार्तिकसे श्लोकवार्तिकका परिमाण बढ़ा हुआ है। ऐसी हालतमें यदि समन्तभद्रका ८४ हजार श्लोक संख्यावाला भाष्य पहलेसे मौजूद था तो अकलंकदेव और विद्यानन्दके वार्तिकोंका परिमाण उससे जरूर कुछ बढ़ जाना चाहिये था। परन्तु बढ़ना तो दूर रहा, वह उल्टा उससे कई गुणा घट रहा है। दोनों वार्तिकोंकी श्लोकसंख्याका परिमाण क्रमशः १६ और २० हजारसे अधिक नहीं। ऐसी हालतमें कमसेकम अकलंकदेव और विद्यानन्दके समयमें गन्धहस्ति महाभाष्यका अस्तित्व स्वीकार करनेके लिये तो और भी हृदय तय्यार नहीं होता।

१०— जिस आप्तमीमांसा (देवागम स्तोत्र) को गन्धहस्ति महाभाष्यका मंगलाचरण बतलाया जाता है उसकी अन्तिम कारिका इस प्रकार है—

इतीयमाप्तमीमांसा विद्विता हितमिच्छताम्।

सम्यग्मिथ्योपदेशार्थविशेषप्रतिपत्तये ॥

यह कारिका जिस ढंग और जिस शैलीसे लिखी गई है, और इसमें जो कुछ कथन किया गया है उससे आप्तमीमांसाके एक विलकुल स्वतन्त्र ग्रन्थ होनेकी बहुत ज्यादा सम्भावना पाई जाती है। इस कारिकाको देते हुए वसुनन्दी आचार्य अपनी टीकामें इसे 'शास्त्रार्थोपसंहारकारिका' लिखते हैं, साथ ही इस कारिकाकी टीकाके अन्तमें ग्रंथकर्ता भी समन्तभद्रका नाम 'कृतकृत्यः निर्व्यूढतत्त्वप्रातिज्ञः' इत्यादि विशेषणोंके साथ देते हैं, जिससे मालूम होता है कि इस कारिकाके साथ ग्रंथकी समाप्ति हो गई, ग्रंथके अन्तर्गत किसी भास विषयकी नहीं। विद्यानन्दस्वामी अष्टसहस्रीमें, इस कारिकाके द्वारा 'प्रारम्भनिर्वाहण'—(प्रारंभ किये हुए कार्यकी परिस्माति) आदिको सूचित करते हुए टीकामें लिखते हैं—

“इति देवागमाख्ये स्वोक्तपारिच्छेदे आह—

अत्र शब्दपरिसमाप्तिः”.....

इन शब्दोंसे भी प्रायः यही ध्वनित होता है कि देवागमशब्द जो कि आप्तमीमांसाके शुरूमें 'देवागम' शब्द होनेसे उलीका दूसरा नाम है, एक स्वतंत्र ग्रंथ है और उसकी समाप्ति इस कारिकाके साथ ही हो जाती है। अतः वह किसी दूसरे ग्रंथका आदिम अंश अथवा मंगलाचरण मालूम नहीं होता।

११—अकलंकदेव अपनी अष्टशतीके आरंभमें लिखते हैं—

“येनाचार्यसमन्तभद्रगतिना तस्मै नमः संततम्।

कृत्वा विप्रवते स्तवो भगवता देवागमस्तत्कृतिः” ॥२२॥

वसुनन्दी आचार्य अपनी देवागमवृत्तिके अन्तमें सूचित करते हैं “श्रीसमन्तभद्राचार्यस्य... देवागमाख्यायाः कृते संक्षेपभूतं विवरणं कृतम्...।”

कर्नाटकदेशस्थ हुमचा जि० शिमोगाके एक शिलालेखमें निम्न आशयका उल्लेख * मिलता है—

* देवो जैनद्वितीय भाग ९, अंक ९, पृष्ठ ४४५।

मांसाका एक पद्य निम्न प्रकारसे उद्धृत किया हुआ मिलता है:-

“ तदुक्तं स्वाभिर्भर्महाम्भाष्यस्यादावाप्तमीमांसाप्रस्तावे सूक्ष्मा-
न्तरितदूर थी..... । ”

इससे मालूम होता है कि स्वामी समन्तभद्र-
प्रणीत 'महाभाष्य' की आदिमें आप्तमीमांसा ना-
मका एक प्रस्ताव है। और सिर्फ यही एक उल्लेख
है जो अभी तक हमें इस विषयमें प्राप्त हो सका
है और जिससे प्रचलित प्रवादको कुछ आश्वासन
मिलता है। यद्यपि इस उल्लेखमें 'गन्धहस्ति महा-
भाष्य' ऐसा स्पष्ट नाम नहीं है, न इस 'महा-
भाष्य' को उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रका भाष्य
प्रकट किया है, न यह ही सूचित किया है कि उस-
की प्र. संख्या ८४ हजार श्लोक परिमाण है और
इसलिये संभव है कि यह महाभाष्य समन्तभद्रका
उपर्युल्लिखित, ४८ हजार श्लोक संख्याको लिये हुए,
'कर्मप्राभृत' सिद्धान्तवाला भाष्य हो अथवा कोई
दूसरा ही भाष्य हो। और उसमें आचार्य महो-
दयने आवश्यकतानुसार, अपने आप्तमीमांसा ग्रं-
थको भी वतौर एक प्रस्तावके शामिल कर दिया
हो, तो भी धर्मभूषणके इस उल्लेखसे प्रकृत गन्ध-
हस्ति महाभाष्यका आशय जरूर निकाला जा स-
कता है। परंतु जब हम इस उल्लेखको ऊपर दिये
हुए संपूर्ण अनुसंधानोंकी रोशनीमें पढ़ते हैं और
साथ ही, इस बातको ध्यानमें रखते हैं कि
धर्मभूषणजी विक्रमकी १५ वीं शताब्दीके
विद्वान् हैं, तो ऐसा मालूम होता है कि
यह उल्लेख उस वक्तके प्रचलित प्रवाद,
लोकोक्ति अथवा दंतकथाओंके आधार पर ही
किया गया है। वास्तविक तथ्यसे इसका प्रायः
कोई सम्बन्ध नहीं। और न यह मानने अथवा
कहनेका कोई कारण है कि धर्मभूषणजीने
गन्धहस्तिमहाभाष्यको स्वयं देखकर ही ऐसा
उल्लेख किया है। यदि ऐसा होता तो खास गन्ध-
हस्तिमहाभाष्यका भी कोई महत्त्वपूर्ण उल्लेख राजवा-
र्तिकादि ग्रंथोंके स्थानोंमें अथवा उनके साथ जरूर
पाया जाता। परंतु ऐसा नहीं है, न्यायदीपिकामें
दूसरी जगह भी आप्तमीमांसाका ही उल्लेख किया

गया है। वहाँ ऊपरके सदृश महाभाष्यादि शब्दों
का प्रयोग भी नहीं है, बल्कि बहुत सीधे सादे शब्दोंमें
'तदुक्तमाप्तमीमांसायां स्वामिसमंतभद्राचार्यैः' ऐसा
कहा गया है। धर्मभूषणजीके समयसे अबतक ऐसा
कोई महान् विद्वान् भी उपस्थित नहीं हुआ कि
जिससे गन्धहस्ति महाभाष्य जैसे ग्रंथका एकदम
लोप होना मान लिया जाय। और यदि ऐसा मान
भी लिया जाय तो उनसे पहले प्राचीन साहित्यमें
उसके उल्लेख न होनेका कारण क्या है, इसका
संतोषजनक उत्तर कुछ भी मालूम नहीं होता।
और इस लिये हमारी रायमें धर्मभूषणजीका उप-
र्युक्त उल्लेख प्रचलित प्रवादपर ही अवलम्बित है।
प्रचलित प्रवादपर अक्सर उल्लेख हुआ करते हैं
और वे बहुतसे ग्रंथोंमें पाये जाते हैं। आजकल
भी, जब कि गन्धहस्तिमहाभाष्यका कहीं पता नहीं
और यह भी निश्चय नहीं कि किसी समय उसका
अस्तित्व था भी या कि नहीं, बहुतसे अच्छे अच्छे
विद्वान् अपने लेखों तथा ग्रंथोंमें गन्धहस्ति महा-
भाष्यका उल्लेख परिचित अथवा निश्चित ग्रंथके तौर
पर करते हैं, उसे तत्त्वार्थसूत्रकी टीका बतलाते हैं
और उसके श्लोकोंकी संख्याका परिमाण तक देते
हैं। यह सब प्रचलित प्रवादका ही नतीजा है।
कभी कभी इस प्रचलित प्रवादकी धुनमें अर्थका
अनर्थ भी हो जाता है, जिसका एक उदाहरण हम
अपने पाठकोंके सामने नीचे रखते हैं—

उक्त न्यायदीपिकामें एक स्थानपर ये वाक्य
दिये हैं:-

तद्विपरीतलक्षणो हि संशयः। यद्राजवार्तिकम् “अनेका-
र्यानिदिचितापर्युदासात्मकः संशयः, तद्विपरीतोऽवग्रहः”
इति। भाष्ये च ॥ “संशयो हि निर्णयविरोधी नत्वग्रहः”
इति।

पं० खूबचन्दजीने न्यायदीपिकापर लिखी हुई
अपनी भाषाटीकामें, इन वाक्योंका अनुवाद देते
हुए, 'भाष्य' शब्दसे 'गन्धहस्तिमहाभाष्य' का
अर्थ सूचित किया है अर्थात्, सर्वसाधारण पर यह
प्रकट किया है कि संशयो हि निर्णयविरोधी नत्व
वग्रहः' यह वाक्य गन्धहस्तिमहाभाष्यका एक वा
क्य है। टीकाके 'संशोधनकर्ता' पं० वंशीधरजी

शास्त्रीने भी उनकी इस बातको पास कर दिया है— अर्थात्, पुस्तकपर अपने द्वारा संशोधन किये जानेकी मुहर लगाकर इस बातकी रजिस्टरी कर दी है कि उक्त वाक्य गन्धहस्तिमहाभाष्यका ही वाक्य है। परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। यह वाक्य राजवार्तिक भाष्यका वाक्य है। राजवार्तिकमें 'अवग्रहेहावायधारणा' इस सूत्रपर जो १० वाँ वार्तिक दिया है उसीके भाष्यका यह एक वाक्य है*। इस वाक्यसे पहले जो वाक्य, 'यद्राजवार्तिके' शब्दोंके साथ, न्यायदीपिकाकी ऊपरकी पंक्तियोंमें उद्धृत पाया जाता है वह उक्त सूत्रका ९ वाँ वार्तिक है। दूसरे शब्दोंमें यों समझना चाहिये कि ग्रन्थकर्ताने पहले राजवार्तिक भाष्यका एक वार्तिक और फिर एक वार्तिकका भाष्यांश उद्धृत किया है, जिसको हमारे दोनों पंडित महाशयोंने नहीं समझा और न समझनेकी कोशिश की। उनके सामने मूल ग्रन्थमें 'गन्धहस्ति महाभाष्य' ऐसा कोई नाम नहीं था और यह हम बखूबी जानते हैं कि उन्होंने गन्धहस्ति महाभाष्यका कभी दर्शन तक नहीं किया, जो उस परसे जाँच करके ही ऐसे अर्थका किया जाना किसी प्रकारसे संभव समझ लिया जाता, तो भी उन्होंने 'भाष्य' का अर्थ 'गन्धहस्ति महाभाष्य' करके एक विद्वानके वाक्यको दूसरे विद्वानका बतला दिया। यह प्रचलित प्रवादकी धुन नहीं तो और क्या है? इसी तरह एक दूसरी जगह भी 'तद्भाष्यं' पदका अर्थ—'ऐसा ही गन्धहस्ति महाभाष्यमें भी कहा है—' किया गया है। इस उदाहरणसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि प्रचलित प्रवादकी धुनमें कितना अर्थका अनर्थ हो जाया करना है और उसके द्वारा उत्तरोत्तर संसारमें कितना भ्रम तथा मिथ्याभाव फैल जाना संभव है। शास्त्रोंमें प्रचलित प्रवादोंसे अभिभूत ऐसे ही कुछ महाशयोंकी कृपासे अथवा अनेक दन्तकथाओंके किसी न किसी रूपमें लिपिबद्ध हो जानेके कारण ही बहु-तसे ऐतिहासिक तत्त्व आजकल चक्करमें पड़े हुए

हैं। और इसलिये प्रायः उन सबकी जाँच अनेक मार्गों और अनेक पहलुओंसे होनी चाहिये। हर एक बातकी असलियतको खोज निकालनेके लिये गहरे अनुसंधानकी जरूरत है। तभी कुछ यथार्थ निर्णय हो सकता है।

१५—ऊपर श्रुतावतारके आधारपर यह प्रकट किया गया है कि समन्तभद्रने 'कर्मप्राभृत' सिद्धान्तपर ४८ हजार श्लोक परिमाण एक सुन्दर संस्कृत टीका लिखी थी। यह टीका 'चूडामणि' नामकी एक कनड़ी टीकाके बाद, प्रायः उसे देखकर लिखी गई है। चूडामणिकी श्लोकसंख्याका परिमाण ८३ हजार दिया है और वह उस कर्मप्राभृत तथा साथ ही, कपायप्राभृत नामके दोनों सिद्धान्तों पर लिखी गई थी। भट्टाकलंकदेवने, अपने कर्नाटक शब्दानुशासनमें इस चूडामणि-टीकाको 'तत्त्वार्थ महाशास्त्रकी व्याख्या' (तत्त्वार्थमहाशास्त्रव्याख्यानस्य*) 'चूडामण्यभिधानस्य महाशास्त्रस्य...उपलभ्यमानत्वात्'।) लिखा है, जिसका आशय यह होता है कि कर्मप्राभृतादि ग्रन्थ भी 'तत्त्वार्थशास्त्र' कहलाते हैं और इसलिये कर्मप्राभृतपर लिखी हुई समन्तभद्रकी उक्त टीका भी तत्त्वार्थमहाशास्त्रकी टीका कहलाती होगी। चूँकि उमास्वातिका तत्त्वार्थसूत्र भी 'तत्त्वार्थशास्त्र' अथवा 'तत्त्वार्थमहाशास्त्र' कहलाता है, इसलिये संभव है कि इस नामसाम्यकी वजहसे 'कर्मप्राभृत' के टीकाकार श्रीसमन्तभद्रस्वामी किसी समय उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रके टीकाकार समझ लिये गये हों और इसी गलतीके कारण पीछेसे अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ उत्पन्न होकर उनका वर्तमानरूप बन गया हो। यह भी संभव है, कि प्रबल और प्रखर तार्किक विद्वान होनेके कारण 'गन्धहस्ति' यह समन्तभद्रका उपनाम अथवा विरुद्ध रहा हो और इसके कारण ही उनकी उक्त सिद्धांतटीकाका नाम गन्धहस्तिमहाभाष्य प्रसिद्ध

* देखो राजवार्तिक, सनातनग्रन्थमाला कलकत्ताका छापा हुआ।

* यहाँ ग्रन्थका परिमाण ९६ हजार श्लोक दिया है जिसकी बावत राइस साहबने, अपनी 'इंस्क्रिप्ट्स एट् थ्रवण-बेलगोल' नामक पुस्तकमें, लिखा है कि इसमें १२ हजार श्लोक ग्रन्थके संक्षिप्तसार अथवा सूचीके शामिल हैं।

हो गया हो अथवा उनके शिष्य शिवकोटिने जो तत्त्वार्थसूत्रकी टीका लिखी है उसी परसे इस विषयमें उनके नामकी प्रसिद्धि हो गई हो। कुछ भी हो, यथार्थ वस्तुस्थितिको खोज निकालनेकी बहुत बड़ी जरूरत है, जिसके लिये विद्वानोंको प्रयत्न करना चाहिये। अस्तु।

गन्धहस्तिमहाभाष्य और आत्ममीमांसाके सम्बन्धमें हम अपने इन अनुसंधानों और विचारोंको विद्वानोंके सामने रखते हुए उनसे अत्यन्त नम्रताके साथ निवेदन करते हैं कि वे इन पर बड़ी शांतिके साथ गहरा विचार करनेकी कृपा करें और उससे बाद हमें अपने विचारोंसे सूचित करके कृतार्थ बनाएँ। यदि हमारा कोई अनुसंधान अथवा विचार उन्हें ठीक प्रतीत न हो तो हमें युक्तिपूर्वक उससे सूचित किया जाय। साथ ही, जिन विद्वानोंको किसी प्राचीन साहित्यसे गन्धहस्तिमहाभाष्यके नामादिक चारों बातोंमेंसे किसी भी बातकी कुछ उपलब्धि हुई हो, वे हम पर उसके प्रकट करनेकी उदारता दिखलाएँ, जिससे हम अपने विचारोंमें यथोचित फेरफार करनेके लिये समर्थ हो सकें, अथवा उसकी सहायतासे किसी दूसरे नवीन अनुसंधानको प्रस्तुत कर सकें। आशा है, विज्ञ पाठक हमारे इस समुचित निवेदनपर ध्यान देनेकी अवश्य कृपा करेंगे, और इस तरह एक ऐतिहासिक तत्त्वके निर्णय करनेमें सहोद्योगिताका परिचय देंगे।

अन्तमें हम अपने पाठकों पर इतना और प्रकट किये देते हैं कि इस लेखका कुछ भाग लिखे जानेके बाद हमें अपने मित्र श्रीयुत मुनि जिनविजयजी आदिके द्वारा यह मालूम करके बहुत अफसोस हुआ कि डेक्कन कालिज पूना लायब्रेरीकी

किसी सूचीके आधार पर एक पंडित महाशयने, समाजके पत्रोंमें, जो इस प्रकारका समाचार प्रकाशित कराया था कि, गन्धहस्तिमहाभाष्य आस्ट्रिया देशके अमुक नगरकी लायब्रेरीमें मौजूद है और इसलिये वहाँ जाकर उसकी कापी लानेके लिये कुछ विद्वानोंकी योजना होनी चाहिये, वह बिल्कुल उनका भ्रम और बेसमझीका परिणाम था। उन्हें सूची देखना ही नहीं आया। सूचीमें, जो किसी रिपोर्टके अन्तर्गत है, आस्ट्रियाके विद्वान् डाक्टर बुलहरने कुछ ऐसे प्रसिद्ध जैनग्रंथोंके नाम, उनके कर्ताओंके नाम सहित प्रकट किये थे जो उपलब्ध हैं, तथा जो उपलब्ध नहीं हैं किन्तु उनके नाम सुने जाते हैं। समंतभद्रका 'गन्धहस्तिमहाभाष्य' भी अनुपलब्ध ग्रंथोंमें था जिसका नाम सुनकर ही उन्होंने उसे अपनी सूचीमें दाखिल किया था। उसके सम्बन्धमें यह कहीं प्रकट नहीं किया गया कि वह अमुक लायब्रेरीमें मौजूद है। पंडितजीने इस सूचीमें गन्धहस्तिमहाभाष्यका नाम देख कर ही, बिना कुछ सोचे समझे, आस्ट्रिया देशके एक नगरकी लायब्रेरीमें उसके अस्तित्वका निश्चय कर दिया और उसे सर्व साधारण पर प्रकट कर दिया। यह कितनी भूलकी बात है! हमें अपने पंडितजीकी इस कार्रवाई पर बहुत खेद होता है जिसके कारण समाजको व्यर्थ ही एक प्रकारके चक्करमें पड़ने और चंदा एकत्र करने-कराने आदिका कष्ट उठाना पड़ा। आशा है पंडितजी, जिनका नाम यहाँ देनेकी हम कोई जरूरत नहीं समझते, आगामीसे ऐसी मोटी भूल न करनेका ध्यान रखेंगे।

(जैन हितैषी, भाग १४, अंक ४ में उद्धृत ।)

तीर्थयात्राके लिये निकलनेवाले संघोंका वर्णन ।

धपुः पवित्रीकुरु तीर्थयात्रया चित्तं पवित्रीकुरु धर्मवाञ्छया ।

वित्तं पवित्रीकुरु पात्रदानतः कलं पवित्रीकुरु सच्चरित्रैः ॥

—उपदेशतरंगिणी ।

जैन धर्मके औपदेशिक ग्रन्थसमूहमें, जैनगृहस्थों (भ्रातृकां) के लिये जिन जिन धर्मकृत्योंका विधान किया गया है उनमें तीर्थयात्रा करनेका भी एक विधान है । मुख्य कर जिन स्थानोंमें तीर्थकर आदि पूज्य माने जाने वाले जैनधर्मके महापुरुषोंका जन्म, दीक्षा, केवलया निर्वाण आदि पवित्र कार्य-जिसे जैन संप्रदायमें ' कल्याणक ' कहते हैं- हुआ हो उन्हें तीर्थस्थान कहते हैं । परन्तु किसी अन्य विशिष्ट घटनाके कारण या स्थलविशेषकी पवित्रताके कारण और स्थान भी ऐसे तीर्थस्थान माने जाते हैं । समेतशिखर, राजगृह, पावापुरी, खण्डगिरि आदि स्थल पूर्वमें; तक्षशिला, कांगडा, अहिच्छत्र, हस्तिनापुर आदि उत्तरमें; शत्रुंजय, गिरनार, आबू, तारंगा आदि पश्चिममें; और श्रीपर्वत, भ्रवणबेलगोला, मुडबद्री, कुलपाक आदि दक्षिणमें जैनियोंके प्रसिद्ध तीर्थस्थान हैं । तीर्थस्थानोंके मानने पूजनेकी यह प्रथा केवल जैनधर्म ही में प्रचलित है यह बात नहीं है । संसारके प्रायः सभी प्राचीन और प्रसिद्ध धर्मोंमें ऐसे तीर्थस्थान माने और पूजे जाते हैं । ब्राह्मणोंमें हरिद्वार, सोमनाथ, रामेश्वर, जगन्नाथ इत्यादि; बौद्धोंमें कपिलवस्तु, मृगदाव, बोधिगया, कुशीनार इत्यादि; क्रिश्चियनोंमें जेरुसलेम; और मुसलमानोंमें मक्का मदीना आदि स्थान सैकड़ों ही वर्षोंसे तीर्थस्थानके रूपमें जगद्विख्यात हैं । क्या मूर्तिपूजा माननेवाले और क्या नहीं माननेवाले-क्या ईश्वरवादी और क्या अनीश्वरवादी इस विषयमें सभी एकमत रखते हुए दिखाई देते हैं ।

महापुरुषोंके चरणस्पर्शसे पवित्रित भूमिका दर्शन

और स्पर्शन करनेसे भावुक मनुष्यके भद्र हृदयमें भव्यता प्रकट होती है और मनकी मलिनता अन्तरित होती है यह मानवस्वभाव सिद्ध बात है । केवल, प्रकृतिकी सुन्दरताको, स्थलकी विशुद्धताको और वातावरणकी निःशब्दताको देख कर ही संस्कारी हृदयवाले मनुष्यके मनमें सात्त्विकभाव प्रकट होने लगते हैं; तो फिर यदि उस स्थानके साथ किसी स्वाभिमत लोकोत्तर महापुरुषकी जीवनघटनाका कोई स्मृतिसंबन्ध जुड़ा हुआ हो तब तो कहना ही क्या । जो शांति और जो सात्त्विकता मनुष्योंको अन्य उपाधिग्रस्त स्थानोंमें सैकड़ों लेखोंके वाचनेसे और सैकड़ों ही व्याख्यानोंके सुननेसे प्राप्त नहीं हो सकती, वह ऐसे शुद्ध, पवित्र और पूज्य स्थानमें एक दिन जाकर रहनेसे प्राप्त हो सकती है; ऐसा अनेक महापुरुषोंका अनुभव है । भ्रमण भगवान् श्रीमहावीर और गौतम बुद्ध जो वर्षोंतक निर्जन वनोंमें घूमते रहे उसका कारण केवल यही शांतिलाभ करना था, और इसी प्रवृत्तिद्वारा उन्होंने अपनी मुक्ति प्राप्त की थी । संसारके महापुरुषोंके अनुभूत इस सिद्धान्तको लक्ष्यमें लेकर धर्मप्रवर्तकोंने तीर्थयात्राकी प्रथा प्रचलित की है और उसके अनुसार अति प्राचीन कालसे संसारके उपर्युक्त सभी धर्मोंके आस्तिक अनुयायी अपने अपने तीर्थस्थानोंमें अनेक प्रकारके कष्ट उठाकर भी, अधिक नहीं तो केवल एकवार, दर्शन मात्र करनेके लिये ही जाते रहे हैं, अथवा जानेकी अभिलाषा रखते रहे हैं । जैनधर्मोपदेशकोंने भी अपने तीर्थोंके दर्शन स्पर्शन करनेका उपदेश

किया है और तदनुसार जैन समाजमें प्रवृत्ति भी चली आ रही है।

पुराणे जमानेमें, आज कलके समान, मुसाफरी करनेके लिये रेलवे वगैरह जैसे साधनों की सुविधा न होनेसे, तथा मार्गमें अनेक प्रकारके कष्टोंके आनेको बहुत कुछ संभावना रहनेसे, उस समय के बड़े बड़े श्रीमान लोक भी अकेले-दुकेले घरसे बहार निकल कर दूरके देशोंमें जानेकी हिम्मत कम रखते थे। तो फिर साधारण और गरीबवर्गके लोगोंके लिये तो कहना ही क्या। इस लिये उस समय प्रायः लोग बहुतसा संख्यामें एकत्र हो कर तीर्थयात्राके लिये निकला करते थे। यात्रियोंके इस समूहको संघ कहा करते हैं। पिछले जमानेमें, जैनसमाजमेंसे जुदा जुदा तीर्थोंकी यात्राके लिये जुदा जुदा देशोंमेंसे प्रतिवर्ष प्रायः सैकड़ों ही ऐसे छोटे बड़े संघ निकला करते थे, और अब तक भी सालमें दो चार निकलते रहते हैं। बहुत करके इन संघोंके निकालनेमें कोई एक श्रीमान् भावुक अग्रणी होता है और वह अपनी औरसे हजारों लाखों रुपये खर्च कर सैकड़ों हजारों यात्रियोंके तीर्थदर्शनकी अभिलाषाको पूर्ण करनेमें सहायक बनता है। ऐसे संघ निकालनेवालेको समाजकी आर से 'संघपति' की पदवी मिलती है और वह फिर सदा समाजमें अग्रणी माना जाता है।

संघके निकालनेकी क्या विधि है—वह किस तरहसे निकाला जाता है और उसके निकालनेवालेको क्या क्या करना चाहिए—इसके विषयमें श्राद्ध-विधिनामक ग्रन्थमें निम्न प्रकारका वर्णन दिया है।

संघ निकालनेवाले पुरुषको सबसे प्रथम, अभीष्ट तीर्थकी यात्रा पूर्ण न हो तब तक, निम्न प्रका-

रके नियम करने चाहिए—दिनमें एक ही दफह भोजन करना चाहिए, रास्तेमें पैदल चलना चाहिए, खाली जमीन पर सोना चाहिए, सच्चित्त वस्तु खानी न चाहिए, ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए, इत्यादि। इस प्रकार यात्राके लिये नियमादि स्वीकार कर फिर राजाके पास जावे और उसे यथायोग्य भेंट दे कर संघ निकालनेकी इजाजत लेवे^१। फिर यात्रामें साथ ले चलनेके लिये युक्तिपूर्वक मंदिर बनवावे^२। अनन्तर, अपने स्वजनाको और साधर्मिभाईयोंको संघमें आनेके लिये

१ जिस संघमें इस प्रकारके नियमोंका पालन करते हुए संघपति और अन्यान्य यात्री चलते हैं उस संघको 'पद्मी पालक' (गुजरातीमें—छरी पलतो) संघ कहते हैं। 'पद्मी' से मतलब उन छ नियमोंका है जिनमें अन्तमें 'री' अक्षर आता है। यथा—

‘एकाहारी, दर्शनधारी, यात्रासु भूशयनकारी, सच्चित्तपरिहारी, पादचारी, ब्रह्मचारी, च।

श्राद्धविधि. पृ. १६४.

एकाहारी भूमिसंस्तारकारी
पद्भ्यां चारी शुद्धसम्यक्त्वधारी।
यात्राकाले सर्वसच्चित्तहारी
पुण्यात्मा स्याद् ब्रह्मचारी विवेकी ॥

—उपदेशतरंगिणी, पृ. २४३.

२ प्राचीन समयमें राजाज्ञाके सिवा ऐसे संघ वगैरह निकल नहीं सकते थे तथा उनको एक राज्यमेंसे दूसरे राज्यमें जाने आने नहीं दिये जाते थे। इस लिये संघ निकालनेवालेको प्रथम राजाके पास जाकर उसके आगे रूप-योकी खूब भेंट कर उसे खुश करना पड़ता था और उसके पाससे संघ निकालनेका परवाना (मुसलमानी शब्द फरमान) लेना पड़ता था। प्रमाणके लिये देखो मेरा लिखा हुआ शत्रुंजय तीर्थोद्धार प्रबन्ध, पृ. ५६-७; तथा सोमसौभाग्यकाव्य, पृ. १४०-४१।

३ ये मन्दिर सोना, चाँदी, आदि धातुओंके तथा हस्ति-दन्त, चन्दन अथवा अन्य प्रकारके उत्तम काष्ठके बनावे जाते थे। ये एक प्रकारके सिंहासन समान अथवा रथके जैसे होते थे। इनको मनुष्य उठाते अथवा रथकी तरह घोड़े या बैल खींचते थे। संघके प्रमाणमें ऐसे एक या अनेक मंदिर संघके साथ रहते थे।

१ जैन जातियोंमें बहुतसे कुटुम्बोंको जो संघवी—संघद—सिंघी—सिंघई आदि अटक है वह इसी 'संघपति' पदवी का अपभ्रष्ट रूप है।

२ यह ग्रंथ तपागच्छके आचार्य रत्नशेखर सूरिका बनाया हुआ है। इसकी रचना विक्रम संवत् १५०६ में हुई है। भावनगरकी आत्मानन्द जैन सभाने इसे छपकर प्रकट किया है।

आदरपूर्वक आमंत्रण भेजे । भक्तिपूर्वक गुरुमहाराजको भी निमंत्रण करे । गांवमें जीवहिंसा बन्ध करानेके लिये अमरिपट्ट वज्रावे । मंदिरोंमें महापूजादि महोत्सव मनावे । फिर, जो जो मनुष्य संघमें साथ आनेकी इच्छा प्रदर्शित करें उनमेंसे जिनके पास भत्ता न हो उन्हें भत्ता देवे, वाहन न हो उन्हें वाहन देवे, तथा जो बिल्कुल निराधार हो उन्हें भीठे वचनोंसे आश्वासन दे कर जिस वस्तुकी जरूरत हो उसको प्रति करे । और इस प्रकार गांवमें ढंढेरा पिटाकर सहायतादान पूर्वक निरुत्साह मनवालोंको भी यात्राके लिये उत्साहित करे । रातमें यात्रियोंके ठहरनेके लिये, पडावोंमें काम आने लायक छोटे बड़े ऐसे अनेक डेरे, तंबू, रावटी, चांदनी आदि तैयार करवावे । भोजनकी सामग्रीके लिए कडाह, परांत, हंडे आदि भाजन और पानीके संग्रहके लिये बड़ी बड़ी कोठियां, टांकियां आदि दत्तन बनवावे । मनुष्योंके बैठनेके लिये तथा सामान भरनेके लिये गाड़ी, सहेज-वाल, रथ, म्याना, पालखी, बैल (पोठ) उंट, घोडा आदि सब प्रकारके वाहनोंका संग्रह करे । संघकी रक्षाके लिये अच्छे अच्छे बहादुर और शूर सुभट्टोंको (सिपाहियोंको) बुलावे और उन्हें अस्त्र शस्त्रादि देकर उनका सम्मान करे । तथा गीत, नृत्य और वाद्यविषयक सामग्रीको भी साथमें रखे—अर्थात् गान और नृत्य करनेवाले भोजकों-गंधर्वोंको और बाजे बजानेवाले वज्रवद्योंको भी संघके साथ रखे । इस प्रकार सब तरहकी तैयारी कर अच्छे मुहूर्तमें शुभ शकुनोंके साथ प्रस्थान-मंगल करे । प्रस्थान करनेके अवसर पर, सकल समुदायको—संघके साथ चलनेवाले तथा गांवमें बसनेवाले सभी साधर्मिभाइयोंको—एकत्र उत्तम प्रकारके भोजन कराकर, ताम्बूल आदि मुखवास देकर, तथा पंचांग वस्त्रादि पहरा कर सत्कृत करे । तदनन्तर, सुप्रतिष्ठ, धर्मिष्ठ, पूज्य और भाग्यवान् मनुष्योंके हाथसे 'संघाधिपत्य' का तिलक करावे । स्वयं संघकी महापूजा करे और इस प्रकार दूसरोंके पाससे भी 'संघाधिपत्य' का तिलक करावे । यह सब काम हो चुकने पर फिर संघके साथ

आनेवालोंमेंसे यथायोग्य किसीको महाधर, किसीको अग्रेसर, किसीको पृष्ठरक्षक और किसीको संघाध्यक्षक आदि पद देकर तदनुकूल कार्यविभाग नियत करे । संघके चलने-ठहरने आदिके सब संकेत यात्रियोंको जाहिर करे—अर्थात् अमुक प्रकारकी सूचना मिलने पर यात्रियोंको ठहर जाना चाहिए, अमुक प्रकारकी सूचना मिलने पर चलना चाहिए, अमुक प्रकारकी सूचना मिलने पर एकत्र होना चाहिए, इत्यादि सब बातें संघजनोंको स्पष्ट समझा देनी चाहिए । रास्तेमें संघपतिको सबकी संभाल रखनी चाहिए । कहीं किसीकी गाड़ी बगैरह तूट जाय या और किसी प्रकारकी कठिनाई आ जाय तो उसे हर प्रकारसे सहायता देनी चाहिए ।

इस प्रकार प्रयाण करते हुए मार्गमें जितने गांव और शहर आवें उनके मंदिरोंमें स्नात्र-महोत्सव करावे तथा उन पर महाध्वज चढ़ावे । सब मंदिरोंके बाजे-गाजेके साथ जाकर दर्शन करे । जहां कहींपर कोई मंदिर बगैरह जीर्ण-शीर्ण हालतमें दिखाई दे तो उसके उद्धार आदिका खयाल रखे । जब दूरसे अभीष्ट तीर्थ-स्थलके (पर्वतादिके) दर्शन हो तब सुवर्ण, रत्न या मोतियोंसे उसे बधावे और यात्रियोंको लड्डू आदि बांटकर तथा भोजन करा कर साधर्मिवात्सल्य करे । यथोचित दान देवे । फिर जब तीर्थस्थल पर पहुंचे तो बड़े आडंबरके साथ स्वयं प्रवेशोत्सव करे और दूसरोंसे करावे । इस तरह तीर्थस्थानमें प्रवेश करके, प्रथम हर्षपूजा, फिर अष्टोपचार पूजा, और तदनंतर विधिपूर्वक स्नात्र करे । इसके बाद, माला पहरना, घृतधारा देना, पहरामनी रखना, नवांग जिनपूजा करना, पुष्पगृह और कदलीगृह बनवा कर महापूजा रचना, बहुमूल्य वस्त्रादिकी बनावट हुई महाध्वजा चढ़ाना, रात्रिजागरण करना, नानाप्रकारके गीत और नृत्यादिसे उत्सव मनाना, तीर्थनिमित्त उपवासादिक तपस्या करना, लक्ष या कोटि परिमित चावल आदि—आदि शब्दसे सुपारी, लवंग, पलायची, नालियर इत्यादि समझने चाहिए—चढ़ाना, २४, ५२, ७२ या १०८ संख्यामें फल आदि भेंट धरना, भक्ष्य ऐसे सब प्रकारके भोज्य पदार्थों

से भरे हुए थालोंका रखना, रेशम आदि मूल्यवान् वस्त्रके बने हुए चंद्रपुष्प, अंगलुछन, दीप, तैल, धौती, चन्दन, केसर, पुष्पचंगरी, कलश, धूपदान, आरती, आभरण, प्रदीप, चामर, भृंगार, थाल, कच्चोल, घंटा, झलरी, पट्टह आदि विविध वाद्य; इत्यादि प्रकारकी मंदिरमें काम आनेवाली सब चीजोंका दान करना; इत्यादि प्रकारके जो तीर्थ कृत्य हैं उन्हें विधिपूर्वक पूर्ण करे। इसके बाद तीर्थस्थान पर कोई छोटी बड़ी देवकुलिका करावे। सूत्रधारादिक कारीगरोंका सत्कार करे। तीर्थका कोई हिस्सा नष्ट-भ्रष्ट होनेकी अवस्थामें हो तो उसे ठीक करवा देवे। तीर्थकी रक्षा करनेवालोंका बहुमान करे। तीर्थके निर्वाहके लिये कोई जमीन आदिका स्थायी दान करे। साधर्मिवात्सल्य करे। गुरुओं और संघजनोंको पहिरामणी दे कर भक्तिभाव प्रकट करे और भोजक, सेवक, गंधर्व, आदि जैन याचक जन हों उन्हें उचित दान वितरण करे। इत्यादि।

इस प्रकार संघ ले जानेवालेके लिये मुख्य मुख्य कृत्य बतलाये गये हैं।

प्राचीन समयमें, जैन इतिहासमें प्रसिद्ध ऐसे प्रायः सभी जैन राजा-महाराजाओंने और सेठ—साहुकारोंने इस प्रकारके बड़े बड़े संघ निकाले थे और उनमें लाखों करोड़ों रुपये खर्च किये थे। उदाहरणके लिये ऐसे दो चार प्रसिद्ध संघोंका यहां पर उल्लेख करना उचित मालूम होता है।

गुजरातके परमार्हत राजा कुमारपाल चौलुक्यने सौराष्ट्रके गिरनार और शत्रुजयादि तीर्थोंकी यात्राके लिये बड़ा भारी संघ निकाला था। उसके वारेमें जिनमण्डन गणीने (संवत् १४९२) अपने ' कुमारपाल प्रबन्ध ' नामक ग्रंथमें जो उल्लेख किया है, उसका सार यहां पर दिया जाता है—

हेमचन्द्राचार्यके मुखसे तीर्थ यात्रासे होनेवाला पुण्यलाभ सुन कर कुमारपालने भी तीर्थयात्रा करनेका मनोरथ किया और तत्काल सब सामग्री एकत्र कर शुद्ध मुहूर्तमें यात्राके लिये प्रस्थान किया। प्रस्थान करते समय उसने प्रथम, शहरके सभी चैत्यों (मंदिरों) में अष्टाह्निक उत्सव मनाया। गांवमें अमारिपट्ट वजवाया। कैदखानोंमें

जो कैदी थे उन्हें बन्धन मुक्त किये और सकल संघकी पूजाका महामहोत्सव किया। संघके प्रयाणसमयमें सबसे आगे राजाका देवालय चलता था। यह देवालय सुवर्ण और रत्नोंसे जड़ा हुआ था और राज्यके पट्टहस्तिकी पीठ पर स्थापित किया हुआ था। इसमें सुवर्णकी बनी हुई जिनमूर्ति स्थापित थी। राजाके इस मुख्य देवालयेके पीछे पीछे क्रमसे ७२ सामंतोंके, २४ मंदिर बनवानेवाले बाहड मंत्री और उसके साथ अन्य मंत्रियोंके, तथा १८०० बड़े बड़े व्यापारियोंके देवालय चलते थे। इन सब देवालयों पर श्वेतातपत्र रक्खे हुए थे और अंदर सुवर्ण और मोतियोंसे जड़े हुए छत्र-चामरादि शोभ रहे थे।.....इस संघमें कुमारपाल राजा मुख्य संघपति था और उसके साथ ७२ सामंत, बाहड (बाग्भट) आदि मंत्री, राजमान्य नागसेठका पुत्र सेठ आभड, पट्टभापाक-विचक्रवर्ती श्रीपाल और उसका पुत्र दानवीर कविश्रेष्ठ सिद्धपाल, कपर्दी भंडारी, प्रह्लादनपुर (पालनपुर) का संस्थापक राणा प्रह्लाद, ९९ लाख सुवर्णाधिपति सेठ छाडाक, राजदौहित्रिक प्रतापमल्ल, अठारह सौ व्यवहारी, हेमचंद्रसूरि आदि अनेक आचार्य, अनेक गांवों और नगरोंसे आए हुए करोड़ों मनुष्य, छहों दर्शनोंके अनुयायी, ११ लाख घोड़े, ११ सौ हाथी, १८ लाख पैदल सिपाही और अनेक याचक जन थे। राजा हमेशा पैदल चलता था और सो भी नंगे पैरोंसे। हेमचन्द्रसूरिने उसे वाहन पर बैठजानेका अथवा तो पैरोंमें जूने वगैरह पहर लेनेके लिये आग्रह भी किया तो भी उसने वैसा नहीं किया। राजाके इस व्रतको देख कर और भी संकड़ों संघजन उसी तरह चलने लगे। संघके साथ समुदाय बहुत बड़ा होनेसे कहीं लोकोंको रास्तेमें कष्ट न हो इस लिये वह हमेशा पांच कोसकी मंजल करता था। जगह जगह लड्डू, नालियर आदिकी प्रभावना किये जाता था। जितने जितने जिनमंदिर आते थे उन सब पर सुवर्ण और मोतियोंसे जड़ी हुई ध्वजायें चढ़ाता जाता था और मंदिरमेंकी प्रत्येक मूर्तिके लिये सोनेका छत्र और चामरमेंकी प्रत्येक मूर्तिके लिये सोनेका छत्र और चामर आदि दान किये जाता था। गांवों और शहरोंके

सभी मनुष्योंको भोजन करवाता था। सामने आने वाले राजाओं तथा सेठ-साहुकारोंको यथायोग्य पहारामणी देता था। प्रतिदिन संघमें, सामंत, मंत्री, सेठ आदि सभी संघजनोंको एकत्र कर स्नात्र महोत्सव मनाता था। प्रत्येक गांव और नगरमें साधर्मिक भाइयोंको अन्न, वस्त्र और प्रच्छन्न धन देकर साधर्मिकवात्सल्य करता था। प्रतिदिन भोजन करनेके समय असमर्थ श्रावकोंको तथा दूसरे भूखे प्यासे गरीब गुरवोंको अपने हाथसे भोजन कराकर फिर स्वयंभोजन करता था। हमेशा त्रिकाल जिनपूजा, उभयकाल प्रतिक्रमण तथा पर्वके (अष्टमी और चतुर्दशी आदि के) दिन पापघ व्रनादि करता था। जितने याचकजन आते थे उनको इच्छित दान देकर संतुष्ट करता था। इस प्रकार प्रयाण करता हुआ वह धंधूका नगरमें पहुंचा जो हेमचन्द्राचार्यका जन्मस्थान था। इस नगरमें उसने पहले ही १७ हाथ ऊंचा झोलिकाविहार नामक मंदिर बनवाया था जिस पर ध्वजा चढ़ाई तथा स्नात्र महोत्सव कराया। वहांसे वह क्रमशः प्रयाण करता हुआ, प्राचीन बलभी शहरके मैदानमें पहुंचा। इस जगह दो सुंदर पहाडियां हैं जिनकी चोटी पर दो मन्दिर बनवाये और उनमेंसे एकमें ऋषभदेवकी और दूसरेमें पार्श्वनाथकी मूर्ति प्रतिष्ठित की। वहांसे चल कर वह संघ उस जगह पहुंचा जहांसे शत्रुंजय पर्वतका स्पष्ट दर्शन हो सकता था। उस दिन संघने वहीं पडाव किया और राजाने सकल संघके साथ शत्रुंजयको दण्डवत् नमस्कार करके पञ्चाङ्ग प्रणाम किया। उस दिन तीर्थदर्शन निमित्त उपवास किया गया और सोने चांदिके फुलोंसे और मोतियोंसे शत्रुंजयके वधाया गया। कुङ्कुम और चंदनादिसे अष्टमंगलका आलेखन किया गया और उनपर अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे भरे हुए थाल रखे गये। वहां पर फिर पूजा पढ़ाई गई, आचार्यका व्याख्यान सुना गया और रात्रिजागरणका उत्सव मनाया गया। राजराणी भूपल देवी, राजपुत्री लीलू कुमारी और अन्य सब सामंत वगैरहकी स्त्रियोंने भी सोतेके थालोंमें मोती और अक्षत भरकर पर्वतको

बधाया। इस प्रकार उस दिन प्रथम तीर्थदर्शनके सब कृत्य करके दूसरे दिन संघने उपवासका पारणा किया और तदर्थ उत्सव मनाया गया। तीसरे दिन संघ प्रयाण करके शत्रुंजयकी तलहट्टीमें पहुंचा। वहां पर पादलिप्तपुर (पालीताना) में राजाने पहले ही पार्श्वनाथका मन्दिर बनवा रक्खा था, जिस पर उस समय सुवर्णनिर्मित कलश, दण्ड और ध्वज आदिका आरोपण कर विधिपूर्वक स्नात्र महोत्सव कराया। उसके बाद अपनी दाहिनी बाजूमें हेमचन्द्रसूरिको साथ लेकर, सामंत, मंत्री, सेठ, साहुकार इत्यादि सबके साथ शत्रुंजय पर चढ़ने लगा। मार्गमें जितने वृक्ष आते थे उन सब पर वस्त्रखण्ड चढ़वाता हुआ और प्रत्येक स्थान पर सुवर्ण, पुष्प, चंदन इत्यादिसे पूजन करता हुआ, मरुदेवा नामक शिखर उपर पहुंचा। वहांपर जगन्माता स्वरूप मरुदेवकी, तथा शान्तिनाथ और कपर्दि यक्षादिककी पूजा-अर्चा कर प्रथम प्रतोली (पोल) पर पहुंचा। वहां पर अनेक याचक जन खड़े थे जिनको यथायोग्य दान देकर आगे बढ़ा और युगादिदेव आदिनाथके मुख्य मन्दिरका द्वार दिखाई देते ही सवासेर प्रमाण मोतियोंसे उसे बधाया। तदनन्तर मन्दिरको तीन प्रदक्षिणा कर गर्भागारमें गया और वहां पर युगादि देवकी प्रशमरसपरिपूर्ण भव्य मूर्तिके दर्शन कर परम उल्लसित हुआ और नौ लाख सुवर्णके मूल्यवाले नौ हार चढ़ा कर उस मूर्तिकी नवांग पूजा की। तदनन्तर संघपतिके लिये जो जो तीर्थ कृत्य बतलाये गये हैं उन सबका उसने यथाविधि पालन किया।-इत्यादि।

पाठक कुमारपालकी यात्राके इस वर्णनका ऊपर पहले दिये गये श्राद्धविधिके संघवर्णनके साथ मिलान करेंगे तो मालूम हो जायगा कि संघके निकालनेका जो वर्णन ग्रन्थकारोंने दिया है वह केवल वर्णनमात्र ही नहीं है परंतु उसके अनुसार यथार्थ आचरण भी होता रहा है। और यह आचरण उस पुराणे जमाने ही में होता था सो भी बात नहीं है। वर्तमानमें भी ऐसे संघ निकालनेवाले यथाशक्ति और यथासाधन उक्त विधिका

पालन करते रहते हैं। इस प्रकारके छोटे बड़े द्वां चार संघोंके देखनेका तथा उनके साथ जा कर यात्रा करनेका इस लेखकको भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिनमें इस वर्णनका बहुत कुछ प्रत्यक्ष अनुभव भी मिला है। अस्तु।

कहते हैं, इसी तरह पहले गोपगिरि (गवालियर) के आम नामक राजाने वप्पभट्टिसूरिक^१ उपदेशसे शत्रुंजयकी यात्राके लिये एक संघ निकाला था जिसमें १ लाख पौष्टिक, १ लाख घोड़े, ७०० हाथी, २० हजार ऊंट, ३ लाख प्यादे और २० हजार श्रावक-कुटुंब थे। (देखो रत्नमन्दिर गणिरचित उपदेशतरंगिणी, पृ० २४८)

विक्रमकी १४ वीं शताब्दीमें थारापद्र नगरमें आभू नामक एक श्रीमालज्ञातीय बहुत बड़ा श्रावक हो गया है। इसको 'पश्चिममण्डलिक' की पदवी मिली थी। इसने शत्रुंजयकी यात्राके लिये जो संघ निकाला उसमें ७०० तो मंदिर और १०५० जिन मूर्तियां थीं ! अन्य समुदाय इस प्रकार था:— ४ हजार गाड़ियां, ५ हजार घोड़े, २२ सौ ऊंट, ९० सुखासन^२ ९९ श्रीकरी, ७ प्रपा, पानीसे भरी हुई मशकें उठा कर चलनेवाले ४२ बैल और ३० भैंसे, १०० भोजन बनानेके बड़े बड़े कडाह, १०० हल-वाई, १०० रसोय, २०० माली, १०० तंबोली, १३६ हाट, १४ लुहार, और १६ सुतार थे। ३६ आचार्य थे। सब मिलकर १२ करोड़का उसके संघमें खर्च हुआ था।

१ वप्पभट्टिसूरिका स्वर्गवास संवत् ८९५ में हुआ था। आमराजके लिये देखो मेरा शत्रुंजय तीर्थोद्धार प्रबन्ध, पृ. ४२ की टिप्पणी।

२ पुराने जमानेमें बनजारे लोग जिन बैलों पर माल लद कर आते जातेथे उनको पौष्टिक कहते थे। गुजरातीमें उसे पोठ कहते हैं। मनुष्य भी इन बैलों पर स्वारी करते थे।

३ यह प्राचीन प्रसिद्ध नगर पालनपुर एजन्सामें आया हुआ है। आजकल इसे थराद कहते हैं।

४ देखो, उपदेशतरंगिणी, पृ० २४५. तथा सुकृतसंग्रह काव्य, पृष्ठ ४६।

महामंत्री वस्तुपालने १२ वार संघ निकाल कर शत्रुंजयकी यात्रायें की थीं। जिनमें सं. १२८५ में जो यात्रा की उसके साथमें २४ तो हाथीदांतके बने हुए और १२० चंदन आदि लकड़ीके बने हुए मंदिर थे। ४५ सौ गाड़ियां, १८ सौ बाहिनियां, ७०० सुखासन, ५०० पालखियां, ७० आचार्य, २ हजार श्वेताम्बर यति, ११ सौ दिगम्बर भट्टारकादि, १९०० श्रीकरी, ४ हजार घोड़े, २ हजार ऊंट, और सात लाख मनुष्य थे।

वस्तुपालकी इस अनुपम तीर्थयात्राका वर्णन, उसके समकालीन और सुहृद् ऐसे बड़े बड़े कवियोंने बहुत विस्तृत और भव्य रीतिसे किया है। उदाहरणके लिये गुर्जरेश्वर पुरोहित सोमेश्वर महाकवि रचित कीर्तिकौमुदी नामक काव्यके कुछ पद्य यहां पर उद्धृत कर दिये जाते हैं:—

चिकीर्षिता श्रीसन्निवेन तीर्थ-

यात्राऽथ सोऽयं शरदाऽऽसमेनः।

महात्मनामीहितकार्यसिद्धौ

विधिर्विधत्ते हि सदानुकूल्यम् ॥ १

पाथेयवन्तः पथि योग्यगुण्याः

शोपानहः सोदकभाजनाश्च।

श्रीवस्तुपालेन समं जनौघाः

प्रयाणकाय प्रवगा बभूवुः ॥ ४

आकारितस्तेन रुतादरेण

दृग्दपि धाद्वजनः समेतः।

ययुस्तदायानि पुनर्यज्ञांसि

दिगन्तरेभ्योऽपि दिगन्तराणि ॥ ५

समं समभैरपि बन्धुवर्ग-

निस्सर्गबन्धुर्विबुधव्रजस्थः।

शुभे मुहूर्तेऽथ शुभैर्निमित्तै-

मैन्त्री स्वनाथानुमतः प्रतस्थे ॥ ६

रथैस्तुरंगैः करभैर्महोक्षै-

१ उपदेशतरंगिणी, पृ० २४७.

२ देखो, सोमेश्वररचित कीर्तिकौमुदी, सर्ग ९; ठक्कुर अरिसिंह रचित सुकृतसंकातेनकाव्य, सर्ग ५; वानचंद्रसूरि रचित वसंतविलास महाकाव्य, सर्ग १०-११-१२-१३; और उदयप्रभसूरिकृत धर्माभ्युदयमहाकाव्य, सर्ग १५, इत्यादि।

जगमुस्तदा केऽपि कथंचनापि ।
मन्त्रीश्वरे धर्मधाराधुरीणे

तस्मिन् विश्राम भरस्तु तेषाम् ॥ १०
न वाहनं यस्य स तस्य वाहनं
नासीद्धनं यस्य स तस्य वित्तम् ।

न चीवरं यस्य स तस्य वस्त्रं
कल्पद्रुकरूपः प्रददौ पृथिव्याम् ॥ ११

भुङ्क्ते स्म सर्वेष्वपि भुक्तवत्सु
शेते स्म सुतेषु स यात्रिकेषु ।
प्रबुध्यते स्म प्रथमं तदिदं

संघप्रभुत्वव्रतमाचचार ॥ १२
प्रभूतभोज्यानि बहुदकानि
सुगौरसान्युन्मदमानवानि ।
तस्यातिदुर्गेऽपि पथे प्रयाणा-
न्युद्यानलीलासदृशान्यभूवन् ॥ १३

याऽऽप्रसंगेषु जगाम येषु
पुरेषु पैरेच्छिततोरणेषु ।
तेषामधीशैः सविशेषमेव
समान्यमानः सममानयत्तान् ॥ १४

अन्यथ्यमानः पथिकैरनेकै-
र्वस्तुन्यनेकान्यपि वस्तुपालः ।
तेभ्यः प्रभूतानि पथि प्रयच्छ-
न्नाहं करोति स्म न कुप्यति स्म ॥ १५

पुरश्च पृष्टेऽपि च पार्श्वयोश्च
परिस्फुरन्तः खरहेतिहस्ताः ।
यात्राजनं वर्त्मनि तस्य ज्ञप्त्वा-
दश्वादिहृदाः सुभटा ररक्षुः ॥ १६

समुद्रतैर्जार्णिजिनेन्द्रहर्म्यै-
र्नवैः सरोभिश्च सरोजरम्यैः ।

प्रस्थानमार्गः सचिवस्य सोऽभू-
दज्ञानतामप्युपलक्षणीयः ॥ १७

यावन्ति विम्बानि जिनेश्वराणां
श्वेताम्बराणां च कदम्बकानि ।

मार्गेषु तेषां सुपिताभितार्तिः
पूजां स निर्वर्त्य ततः प्रतस्थे ॥ १८

स पंचपैर्निर्दिष्यप्रपञ्च-
प्रयाणकैः प्रीणितभक्ष्यलोकः ।

धराधरं धर्मधुरंधरं

शत्रुंजयं शत्रुजयी जगाम ॥ २१ ।

-कीर्तिकौमुदी, सर्ग ९ ।

इन श्लोकोंका भावार्थ यह है कि-शरत्कालके आने पर मंत्री वस्तुपालने तीर्थयात्राके लिये तैयारी की । उसके साथ गांवके अन्यान्य लोक भी भत्ता, वाहन, जलादिके वर्तन इत्यादि मार्गमें आवश्यक ऐसी सब चीजें लें ले कर तैयार हुए । मंत्रीने दूर दूर देशोंके यात्रकोंको भी संग्रहमें आनेके लिये आदर पूर्वक आमंत्रण किया था इससे वे भी सब लोक आ पहुंचे । इस प्रकार सब लोगोंके तैयार हो जाने पर, अपने कुटुंबी, सगे, सन्बन्धी, स्नेही इत्यादि सब जनोंके साथ, राजाकी आज्ञापूर्वक, मंत्रीने शुभ मुहूर्तमें प्रयाण किया । यात्रियोंमेंसे कोई रथोंपर, कोई घोड़ोंपर, कोई ऊंटोंपर, कोई बैलोंपर, इस तरह जुदा जुदा वाहनों पर सवार होकर चलते थे, पर उन सबका भार मंत्रीके शिरपर था । साथ चलनेवाले यात्रियोंमेंसे जिसके पास वाहन नहीं था उसको वाहन देकर, जिसके पास धन नहीं था उसको धन देकर और जिसके पास वस्त्र नहीं था उसे वस्त्र देकर मंत्रीने उस समय साक्षात् कल्पवृक्षके समान आचरण किया था । संघमें सब मनुष्योंके भोजन कर लेनेपर मंत्री भोजन करता था, सबके सोजाने बाद सोता था और सबके ऊठनेके पहले ऊठता था—इस प्रकार संघकी संपूर्ण प्रतिपालना करता था । यात्रियोंको हमेशा उत्तम प्रकारका भोजन कराया जाता था, मीठा पानी पिलाया जाता था और दूध-दही आदि गोरस खिलाया जाता था । इस कारण वह विपम मार्गकी मुसाफरी भी लोगोंको उद्यानलीलाके जैसी आनंददायक हो गई थी । जिन जिन गांवों-नगरोंमें वह संघ पहुंचता था वे सब गांव-नगर वहांके निवासियोंकी ओरसे ध्वजा-तोरणादिसे खूब सजाये जाते थे और वहांके अधिकारी वगैरह सब जन आदरपूर्वक उस संघकी पेशवाईमें आते थे । स्थान स्थानमें अनेक याचक जन आकर मंत्रीके पास अनेक प्रकारकी याचना करते थे और वह सबको यथायोग्य दान देकर संतुष्ट करता था—परंतु इस विषयमें न कभी वह अहंकार ही प्रद-

शित करता था और न तिरस्कार ही । रास्तेमें चलता हुआ वह संघ आगे, पीछे और अगल-बगलमें, अर्थात् चारों ओर, हाथोंमें शस्त्र लिये हुए थोड़े सवारोंसे संरक्षित रहता था । मार्गमें जितने भी जीर्ण-शीर्ण मन्दिर और तालाब आदि जलाशय मिलते थे उन सबको ठीक-ठाक या नवीन बनवाता हुआ वह संघ चला जाता था । इस कारण उस रास्तेसे निकलकर जानेवाले अज्ञात जनोंको भी चिरकाल तक उस संघके प्रयाणका परिचय मिलता रहता था । इसी तरह रास्तेमें जितने मन्दिर आते और उनमें जितनी जिनमूर्तियाँ होती थीं उन सबकी पूजा-अर्चा करवाई जाती थी । एवं रीत्या प्रयाण करता हुआ आंतर और बाह्य दोनों प्रकारके शत्रुओं ऊपर जय प्राप्त करनेवाला वह महामंत्री ५—६ ही दिनोंमें शत्रुजय पर्वतपर पहुँच गया था । इत्यादि ।

विक्रमकी १५ वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें, सं० गुणराज नामका एक प्रसिद्ध धार्मिक श्रावक हो गया है जो कर्णावतीका निवासी था । उसने शत्रुजय, गिरनार, आव, राणकपूर, मांडव, इंडरगढ आदि गुजरात, काठियावाड, मेवाड, मारवाड, मालवा, वागड इत्यादि देशोंके प्रसिद्ध प्रसिद्ध तीर्थोंकी यात्रा निमित्त बहुत बड़ा संघ निकाला था । इस संघमें मुख्य आचार्य तपागच्छके सोमसुंदर सूरि थे । ऊर्ध्वके उपदेशसे यह संघ निकला था । इस संघका विस्तृत वर्णन सोमसोभाग्य नामक काव्यके ८ वें सर्गमें किया हुआ है । काव्यका वनानेवाला कवि प्रतिष्ठासोम स्वयं सोमसुंदर सूरिका हस्तदीक्षित शिष्य था । इस लिए उसका यह वर्णन प्रायः आंखों देखा कदा जा सकता है ।

जिज्ञासु पाठकोंको तो इस बारेमें कुछ उक्त काव्य ही को पढ़ना चाहिए । परंतु कुछ नमूना दिखा-नेके लिये उसके थोड़ेसे पद्य यहांपर भी दे दिये जाते हैं:—

दागलिकापर्व समायर्थो मुदां

साम्राज्यदानप्रतिभूनेभं भुवि ।

श्रीतीर्थयात्राकृतये कृती तदा

महायमं निर्मितवान् महेश्वराद् ॥

सजीक्रियन्ते स्म मनोरथैः समं

रथा महेश्वरैः स्वगृहध्वयोमयाः ।

सुखासनप्रोद्भुरसिंहविष्टरा-

दांष्टं गरिष्ठं भुवि तैर्विवापितम् ॥

परःसहस्राश्वतुरास्तुरंगमा

भात्ता उदात्ता हृदयंगमाः पुनः ।

द्रव्यैर्ब्रियन्ते स्म मया महोमया

अग्रेसरा वेगभृतां च वेसराः ॥

अहिम्मदश्रीश्रुतपातर्षाहिराद्

सत्प्राभृतप्रीतमना मनीषिणम् ।

दिव्यावरैश्च किल पर्यधापयत्

कवाहिमुद्यैः सह भूरिभिर्जनैः ॥

समार्षयद् द्वारगतिं निजां च तं

वचं नफेरीप्रमुखं नृपोचितम् ।

परःसहस्रान् सुभटान् महोद्भटान्

प्रोन्मादिनस्तानमितांश्च सादिनः ॥

श्रीतीर्थयात्रारफुरमाणमीकितं

द्वौ सदैवत्यकरं च यस्य तत् ।

स मार्गणप्राणिगणस्य कामितं

संपूरयन् श्रीगुणराजसेवराद् ॥

भव्यं मुहूर्तं श्रुपभावभाषितः

संवाञ्छितः सौवपुराच्चचाल सः ।

कुंभः शुभात्मोभरितोऽस्य संपूर्वा-

यभूत् मार्गे सधवाशिरस्थितः ॥

इति प्रकृष्टैः शकुनैः प्रमातिवैः

संपृचितस्वोज्ज्वलमंगलौदयः ।

श्रीवीरमग्राम इति प्रसिद्धिदत्-

पुरं ययौ श्रीगुणराजसाधुराद् ॥

तस्मिन्मिलन्ति स्म पुरं नरेश्वरो-

द्भुरा नराः पुण्यपराश्रतुर्दशाम् ।

प्रवर्द्धने स्मानचसंध उच्चक-

दिनेदिने वादिरिवेन्दुदर्शने ॥

देवालयाः श्रीनिलया दशाऽल्लभाः

सौवर्णदण्डवजकुम्भशोमिताः ।

चमत्कृताक्षेपजगत्त्रया स्फुरा-

न्निचैर्विचित्रैर्वैरशिलिकल्पितैः ॥

जैनन्दविभ्यः सहिता महोच्छ्रिता-

स्तुर्द्वैतश्च ग्रीवैः सुभगंभविष्णवः ।

रथाधिरूढा दृढबन्धवन्धुराः
 पथि प्रचेलुः त्रिदशाचलाचलाः॥
 तत्पृष्ठतः शिष्टगारिष्ठशेखरः
 खरांशुभास्वद् द्युतिसन्ततिस्ततः ।
 पुराच्चचालाचलकन्दरावली-
 र्वाधैः प्रकुर्वन् प्रतिशब्दमण्डिताः ॥
 श्रीश्रिकरीशोभितपृष्ठयो लसन्-
 सुखासनक्षमापतिवाहनस्थिताः ।
 साम्यं दधाना निविडं विद्वैजसो
 महेभ्यराजस्तदनु प्रतस्थिरे ॥
 तरंगरंगतुरगाद्भिन्नसत्त्वैः
 खरैश्चलत्स्यन्दनचक्रमण्डलैः ।
 भृशं समुत्खातमिलारजोऽभितः
 प्राच्छाद्यत्तापनविम्वमम्बरं ॥
 तदाभुजप्रोत्कटसद्भटावली-
 हक्कानिनादैर्हयराजिह्वितैः ।
 भेरी-नफेरी-स्वरनायिकास्त्रैः
 शृणालवत्कालकलिर्ननाश सः ॥
 श्रीसंघसत्कैः शकटैर्भरोत्कटै-
 निपीडितो मूर्ध्नि स शेषपन्नगः ।
 कष्टेन पातालतले स्थितस्तदा
 कुलाचलाश्चेलुरलं च भारिताः ॥
 सुखासन-स्यन्दन-राजवाहन-
 श्रीवाहिनीनां वरवाजिनां नृणाम् ।
 कश्चिद्विपश्चिद् गुणराजसंघराट्
 संघेन संख्यामकरोन्नरोत्तमः ॥
 श्रीमन्महीराजगजौ गजोद्धुरः
 कालूष वालाह्वय ईश्वरः रुती ।
 श्रीवाचसूनोस्तनया नयान्विताः
 पंचेष्टुपाधिकरूपसम्पदः ॥
 पंचाप्यमी पंचमुखाभविक्रमाः
 क्रमाञ्जनप्राक्षितिपा भटान्विताः ।
 पश्चात्पुरस्ताच्च सृजन्ति यत्नतः
 श्रीसंघरक्षां पथि सत्यधरिथिताः ॥
 पुरे पुरे श्रीमलिकाश्च राणकाः
 सोपायनाः सम्मुखमागताः समे ।
 चक्रुः प्रणामं गुणराजनामभृत्-
 संवेनिलुभूतलरममौलयः ॥

किं संप्रतिभूगतिरेप शासनं
 विभासयन् जैनमखण्डशासनः ।
 कुमारपालः किमु निर्मितामित-
 प्रभावनः पावनपुण्यभावनः ॥
 किं वस्तुपालोऽत्र मनोरथान् पृथून्
 रुतार्थयन्त्रार्थजनस्य शस्यधीः ।
 इत्थं सृजन्नुहसमूहभंगिनां
 धंघुकके संघपतिः समागमत् ॥

इन श्लोकोंका तात्पर्य यह है कि—जब हर्षके साम्राज्यका दान करनेवाला ऐसा दीपालिका पर्व आया तब—अर्थात् चातुर्मासकी समाप्तिके समय पर—गुणराज सेठने तीर्थयात्राके लिये खूब जबरदस्त तैयारी करनी शुरू की। उसके साथ और भी बड़े बड़े धनिक लोक मनोरथोंके साथ ही अपने अपने घरोंमें रथों वगैरहको सजाने लगे। तथा सुखासन, सिंहासन आदि जुदा जुदा तरहके वाहन बनाने लगे। हजारों ही ऊंची जातिके घोड़े तैयार किये जाने लगे तथा खच्चर और ऊंट सामानसे लदे जाने लगे।

यों तैयारी कर वह चतुर सेठ अनेक प्रकारकी बहुमूल्य भेंटें लेकर अपना राजकर्ता जो अहम्मद बादशाह था उसके पास गया और वे भेंटें उसके सामने रख कर उसको खूब खुश किया।

बादशाहने भी बदलेमें, अपने कयाहि (?) आदि सहचारियोंके साथ, गुणराज सेठको आदरपूर्वक किमती सरपाव देकर उसका उचित सन्मान किया। इसके उपरांत बादशाहने सेठको संघमें ले जानेके लिये अपना निजका जो बादशाही खेमा था वह समर्पण किया और नफेरी आदि शाही बाजे भी—कि जो खास राजाओंहीके आगे बजाये जा सकते हैं—बजानेके लिये देकर सेठका बहुमान किया। ऊंघर्की रक्षाके लिये हजारों ही प्यादे और घोड़े-सवार सिपाही भी बादशाहने उसके साथ भेजे।

इस प्रकार यात्राके लिये शाही फरमान लेकर, सकल समुदायके साथ, भव्य मुहूर्तमें, याचकगण-को इच्छित दान देते हुए, शुभ शकुनपूर्वक गुणराज सेठने अपने नगरसे प्रस्थान किया।

कर्णावतीसे रवाना होकर संघ वीरमगांव प

हुंचा जहां चारों दिशाओंमेंसे असंख्य मनुष्य आ आकर उस संघमें शामिल हुए। फिर शुरुपक्षके चंद्रकी तरह दिन प्रतिदिन वह समुदाय इस प्रकार अन्यान्य स्थानोंसे आनेवाले जनसमूहसे खूब बढ़ता गया।

संघमें सबसे आगे रथारूढ देवालय (मन्दिर) चलते थे, जो खूब ऊंचे होकर सोनेके कलश और ध्वजा दंडादिसे अलंकृत थे, कुशल कारीगरोंकी की हुई अनेक प्रकारकी चित्र विचित्र रचनाओंके कारण देखनेवालेको चमत्कृत बनाते थे और जिनके अंदर भव्य आकृतिवाली जिन प्रतिमायें सुशोभित थीं।

देवालयाँके पीछे पीछे, सूर्यके समान तेजस्वी ऐसा गुणराज सेठ चलता था जिसके आगे बजनेवाले बाजोंके प्रतिध्वनिते रास्तेमें आनेवाले बड़े बड़े पहलूद शत्रुघ्नमान हो जाते थे। संघपतिके पीछे पीछे, संघमेंके अन्यान्य बड़े बड़े धनाढ्य लोक चलते थे जो राजाओंके उचित ऐसे सुखासनोंमें बैठे हुए थे और जिनकी अगल-बगलमें नोकर लोक अथवा गिरीयां लेकर चलते थे। अन्य बाफोंके सैकड़ों ही लोक घोड़े जुड़े हुए रथोंमें बैठे हुए चलते थे कि, जिन रथोंके घोड़ोंकी सुरियोंसे तथा पहियोंसे उड़ती हुई धूलके कारण सारा आकाश ढंकसा जाता था।

सुभटोंके हुंकारोंसे, घोड़ोंकी हिनहिनाटोंसे और भेरी नफेरी आदि बाजोंके घोर शब्दसे, देखनेवालेको मानों यह प्रतीत होता था कि कलिकाल अब इस जगत्मेंसे नष्ट हो गया है और फिर सत्-युगका संचार हो रहा है। उस संघके साथ इतनी गाड़ियां थीं कि जिनके भारसे दबकर ही मानों शेषनाग पातालमें चला गया है और कुलाचल कम्पित हो रहे हैं। संघके साथ इतने रथ, सुखासन, पालखियां, घोड़े और मनुष्य आदि थे कि जिनकी संख्या कोई बड़ा विद्वान् भी नहीं कर सकता था।

संघपति गुणराज सेठके महीराज, गजराज, कालू, वाला और ईश्वर नामके पांच पुत्र थे, जो सिंहके समान पराक्रमी और कामके समान रूपवान् थे। ये पांचों पुत्र संघकी रक्षासंबंधी सारी

व्यवस्था रखते थे और सुभटोंके साथ इनमेंसे कोई संघके आगे, कोई पीछे और कोई अगल-बगलमें चलता था। इनका पराक्रम और तेज इतना था कि राजा और राणा भी आकर इनके पैरोंमें पड़ते थे।

जिस जिस गांव और नगरमें सं० गुणराजका वह संघ पहुंचता था वहां के मलिक और राणक आदि सब अधिकारी लोक भेंटें ले लेकर संघके सामने आते थे और जमीनपर सिर टेककर उसको प्रणाम करते थे।

गुणराज सेठके इस महान् संघको देखकर लोकोंके मनमें, पुराणे ग्रन्थोंमें वर्णन किये हुए संप्रतिराजा, कुमारपालराजा और महामंत्री वस्तुपाल आदिके संघोंका स्मरण हो आता था और क्षणभर उनको यही भास हो जाता था कि क्या यह राजा संप्रति, या कुमारपाल, अथवा मंत्री वस्तुपाल ही तो संघ लेकर नहीं आ रहा है? इस प्रकार महान् ठाठके साथ चलता हुआ गुणराजका वह संघ क्रमसे झुंझुका शहरमें पहुंचा। इत्यादि।

खरतर गच्छके महोपाध्याय जयसोमके उपदेशसे सिंधके फरीदपुर नगरसे, वि. सं. १४८४ में, पंजाबके प्रसिद्ध प्राचीन स्थान कांगडेके जैन मंदिरोंकी यात्राके लिये जो संघ निकला था उसका बहुत ही मनोरंजक वर्णन, हमारी संपादन की हुई विज्ञप्ति-त्रिवेणी नामक पुस्तकमें किया हुआ है, जिसमेंका कुछ भाग प्रकृतोपयोगी होनेसे यहां पर दिया जाता है।

“संघको चलते समय बहुत अच्छे और अनुकूल शकुन हुए। फरीदपुरसे थोड़ी ही दूरी पर विपासा (व्यासा) नदी थी। उसके किनारोंपर, जहां जाम्बु, कदम्ब, नीम्ब, खजूर आदि वृक्षोंकी गहरी घटा जमी हुई थी और नदीके कल्लोलोंसे ऊठी हुई ठंडी वायु मन्द मन्द रातीसे चली आती थी, ऐसे चांदिके जैसे चमकिले रेतीके मैदानमें संघने अपने प्रयाणका पहला पड़ाव किया। दूसरे दिन नदीको पार करके जालंधरकी ओर संघने प्रस्थान किया। संघमें सबसे आगे सिपाही चलते थे जो मार्गमें रक्षणके निमित्त लिये गये थे। उनमेंसे किसीके

हाथमें तलवार थी तो किसीके हाथमें खड्ग था। कोई धनुष्य लेकर चलता था तो कोई जब-रदस्त लठ्ठ उठाये हुआ था। इस प्रकार सबसे आगे उछलते, कूदते और गर्जते हुए सिपाही चले जाते थे। उनके पीछे बड़ी तेजीके साथ चलने-वाले ऐसे बड़े बड़े बैल चलते थे जिन पर सब प्रकारका मार्गोपयोगी सामान भरा हुआ था। उनके बाद संघके लोकें चलते थे जो कितने एक गाड़ी घोड़ों आदि वाहनों पर बैठे हुए थे और कई एक देव-गुरु-भक्ति निमित्त पैदल ही चलते थे। कितने ही धर्मी जन तो साधुओंकी समान नंगे ही पैर मुसाफरी करते थे। इस प्रकार आविच्छिन्न प्रयाण करता हुआ और रास्तेमें आनेवाले गाँवों को लांघता हुआ संघ निश्चिन्दीपुर के पास के मैदानमें, सरोवर के किनारे आ कर ठहरा। संघके आनेकी खबर सारे गाँवमें फैली और मनुष्योंके झुंडके झुंड उसे देखनेके लिये आने लगे। गाँव का मालिक जो सुरत्राण (सुल्तान) करके था वह भी अपने दिवान के साथ एक ऊँचे घोड़े पर चढ़ कर आया, और जन्मभरमें कभी नहीं देखे हुए ऐसे साधुओंको देखकर उसे बड़ा विस्मय हुआ। उपाध्यायजीने उसे रोचक धर्मोपदेश सुनाया, जिसे सुन कर नगरके लोकोंके साथ वह बड़ा खुश हुआ और साधुओंकी स्तुति कर उसने सादर प्रणाम किया। बादमें संघपति सोमाका सम्मान कर अपने स्थान पर गया। संघ वहाँ से प्रयाण कर क्रमसे तलपाटक पहुँचा। वहाँ पर गुरुओंको वन्दन करने के लिये देवपालपुरका श्रावकसमुदाय आया और अपने गाँवमें आनेके लिये संघको अत्याग्रह करने लगा। उन लोकों को किसी तरह समझा-बुझाकर संघने वहाँ से आगे प्रयाण किया और विपाशा (व्यासा) नदीके किनारे किनारे होता हुआ क्रमसे मध्य देशमें पहुँचा। जगह जगह ठहरता हुआ संघ इस देश को पार कर रहा था, कि इतनेमें एक दिन, एक तरफसे पोपरेश यशोरथके सैन्यका और दूसरी ओरसे शकन्दर के सैन्यका, " भगो, दोड़ो, यह फौज आई, वह फौज आई," इस प्रकारका चारों तरफसे कोलाहल सुनाई

दिया। इसे सुनकर संघके हाँस ऊड़ गये। सब दि-ड्मूढ़ हो गये। यात्रीलोक दिलमें बड़े घबराये और अब क्या किया जाय इसकी फिक्रमें निश्चेष्टसे हो रहे। किसी प्रकार हाँस संभालकर और परमात्माका ध्यान धर संघ पीछा लौटा और विपाशा के तटका आश्रय लिया। नावों में बैठ कर जलदी से उस को पार किया और कुंगुद नाम के घाट में हो कर मध्य, जांगल, जालन्धर और काश्मीर इन चार देशोंकी सीमाके मध्य में रहे हुए हरियाणा नामके स्थान में पहुँचा। इस स्थलको निष्पद्रव जान कर वहाँ पर पड़ाव डाला। वहाँ पर, कानुक यक्षके मंदिर के नजदीक, शुचि और धान्यप्रधान स्थान में, चैत्र सुदि एकादशी के रोज सर्वोत्तम समय में, नाना प्रकार के वाद्योंके बजने पर और भाट-चार-णों के, बिरुदावली बोलने पर, सब संघने इकट्ठा हो कर, साधुश्रेष्ठ सोमा को, उसके निषेध करनेपर भी, संघाधिपतिका पद दिया। मल्लिकवाहनके सं० मागटके पौत्र और सा० देवा के पुत्र उद्धर को महाधर पद दिया गया। सा० नीवा, सा० रूपा और सा० भोजा को भी महाधर पद से अलंकृत किया गया। सैलहस्त्य का विरुद वृक्षसगोत्रीय सा० जिनदत्त को समर्पण किया गया। इस प्रकार वहाँ पर पद्मीदान करनेके साथ उन उन मनुष्योंने संघ की, भोजन-वस्त्र-आभूषणादि विविध वस्तुओं द्वारा भक्ति और पूजा कर याचक लोकों को भी खूब दान दिया। संघके इस कार्यको देख कर मानों खुश हुआ हुआ और उस के गुणों का गान करनेके लिये ही मानों गर्जना करता हुआ दूसरे दिन खूब जोर से मेघ वर्षने लगा। बेर बेर जितने बड़े बड़े ओले बादल में से गिरने लगे और झाड़ों तथा झूपड़ीयों को उखाड़ कर फेंक देनेवाला प्रचण्ड पवन चलने लगा। इस जलवृष्टिके कारण संघ को वहाँ पर पाँच दिन तक पड़ाव रखना पड़ा। ६ वें दिन सवेरे ही वहाँ से कूच की। सपा-दलक्षपर्वत की तंग घाटियों को लांघता हुआ, सघन झाड़ियों को पार करता हुआ, नाना प्रकारके पावेताय प्रदेशों को आश्रय की दृष्टि से देखता हुआ और पहाड़ी मनुष्योंके आचार—विचारोंका

अनुभव करता हुआ संघ फिर विपाशाके तट पर पहुँचा। उसे सुखपूर्वक ऊतर कर, अनेक बड़े बड़े गाँवोंके बीच होता हुआ, और तत्तद् गाँवों के लोको और स्वामियों को मिलता हुआ, क्रम से पाताल-गंगा के तट ऊपर पहुँचा। उसे भी निरायास पार कर क्रम से आगे बढ़ते हुए और पहाड़ों की चोटियों को पैरों नीचे कुचलते हुए संघ ने दूरसे सोनेके कलशवाले प्रासादोंकी पंक्तिवाला नगरकोट्ट, कि जिसका दूसरा नाम सुशमिपुर है, देखा। उसे देख कर संघ-जनोंने तीर्थके प्रथम-दर्शन-से उत्पन्न होने वाले आनंदानुसार, दान धर्मादि सुकृत्यों द्वारा अपनी तीर्थभक्ति प्रकट की। नगर-कोट्टके नीचे याणगंगा नदी बहती है जिसे ऊतर कर संघ गाँवमें जानेकी तैयारी कर रहा था कि इतने में उसका आगमन सुन कर गाँवका जैनसमुदाय, सुन्दर वस्त्राभूषण पहन कर, स्वागत करनेके लिये सामने आया। अनेक प्रकारके वादियों और जयजयारवोंके प्रबुध घोषपूर्वक महान् उत्सव के साथ, नगर में प्रवेश किया। सहर के प्रसिद्ध प्रसिद्ध मुहल्लों और बाजारोंमें धूमता हुआ संघ, साधु क्षीमसिंहके बनाये हुए शान्तिनाथ-देव के मंदिर के सिंहद्वार पर पहुँचा। 'निसीही निसीही नमो जिणाणं' इस वाक्य को तीन बार बोलता हुआ जिनालयमें जाँ कर, खरतरगच्छक

आचार्य श्रीजिनेश्वरसूरिकी प्रतिष्ठित की हुई शान्तिजिनकी प्रतिमा का दर्शन किया। तीन बार प्रदक्षिणा दे कर, नाना प्रकारके स्तुति-स्तोत्रों द्वारा अत्यंत आनन्दपूर्वक प्रभुकी पर्युपासना की। इस प्रकार संवत् १४८४ वर्षके ज्येष्ठ सुदि पंचमी-के दिन, अपनी चिरकाल की दर्शनोत्कण्ठाको पूर्ण कर फरीदपुरका संघ कृतकृत्य हुआ। शान्तिजिन के दर्शन कर संघ फिर नरेन्द्र रूपचन्द्र के बनाये हुए मंदिर में गया और उस में विराजित सुवर्णमय श्रीमहावीरजिन विवको पूर्ववत् वन्दन-नमन कर, देवल के दिखाये हुए मार्गसे युगादिजिनके तांसरें मंदिर में गया। इस मंदिरमें भी-उसी तरह परमात्माकी उपासना-स्तवना कर निज जन्म को सफल किया।

(विज्ञप्तिविशेष, प्रस्तावना, पृ० ३७—३९)

इस प्रकार और भी अनेक ग्रन्थोंमें अनेक संघोंका वर्णन मिलता है। इस लेखमें हमारा उद्देश सारे संघोंका इतिहास लिखनेका नहीं है, परंतु संघ किस तरहसे निकाले जाते हैं उसका स्वरूप बतलानेका है। इस लिये नमूनेके तौर इतने वर्णन दे कर इस विषयको समाप्त किया जाता है। संघोंका क्रमवार इतिहास हम कभी भविष्यमें लिखना चाहते हैं।

जेसलमेरके पटवोंके संघका वर्णन ।

ऊपर हमने 'तीर्थयात्राके लिये निकलनेवाले संघोंका वर्णन' दिया है। इस प्रकारका एक बड़ा भारी संघ गत शताब्दीके अंतमें, मारवाडके जेसलमेर नगरमें रहनेवाले पटवा नामसे प्रसिद्ध कुटुंबवाले आसवालोंने निकाला था। इस संघका वर्णन, उसी कुटुंबका बनाया हुआ, जेसलमेरके पास अमरसागर नामक स्थानमें जो जैन मंदिर है उसमें एक शिला पर, उसी समयका लिखा हुआ है। यह शिलालेख मारवाडी भाषामें और देवनागरी लिपिमें लिखा गया है। नीचे इस लेखकी

ज्यों कि त्यों नकल दी जाती है। इस लेख की एक कापी प्रवर्तक श्रीकान्तिविजयजी महाराजके शास्त्रसंग्रहमेंसे मिली है; जो उन्होंने किसी मारवाडी लहियेके पास लिखवाई है और दूसरी नकल, घडौदाके राजकीय पुस्तकालयके संस्कृत विभागके सद्गत अध्यक्ष श्रीयुत चिमनलाल डाह्याभाई दलाल एम. ए. के पाससे मिली है जो उन्होंने मेरे लिये जेसलमेरके किसी यतिके पाससे लिख मंगवाई थी।

॥ ओं नमः ॥

। दूहा ।

रिपभादिक चउवीस जिन पुण्डरीक गणधार ।

मन वच काया एक कर प्रणमु वारंवार ॥ १

विघन हरण संपतिकरण श्रीजिनदत्तसुरिंद ।

कुशल करण कुशलेश गुरु वन्दु खरतर इंद ॥ २

जाके नाम प्रभावतै भगटे जय २ कार ।

सानिषकारी परम गुरु सदा रहो निरधार ॥ ३

संवत् १८९१ रा मिति आषाढ सुदि ५ दिने श्रीजेशलमेरु नगरे महाराजाधिराज महारावलजी श्री १०८ श्रीगजसिंघजी राणावत श्रीलपजी वापजी विजयराज्ये वृद्धखरतर भट्टारकगच्छे जंगमयुगप्रधान भट्टारक श्रीजिनहर्षसूरिमिः पट्टप्रभाकर जं । यु । म । श्री १०८ श्री जिनमहेन्द्रसूरि उपदेशात् श्रीवाफणागोत्रे देवराजजी तत्पुत्र गुमानचंदजी— भार्या जेतां । तत्पुत्र ५—(१) बहादरमल्लजी--भार्या चतुरां । (२) सवाईरामजी-- भार्या जीवां । (३) मगनीरामजी--भार्या परतापां । (४) जोरावरमल्लजी--भार्या चोथां । (५) प्रतापचंदजी--भार्या मानां । एवं बहादरमल्लजी तत्पुत्र (१) दानमल्लजी (२) सवाईरामजी तत्पुत्र सामसिंघ, माणकचंद । सामसिंहपुत्र रतनलाल । (३) मगनीरामजी तत्पुत्र बभूतसिंघजी । तत्पुत्र २ पूनमचंद दीपचंद । (४) जोरावरमल्लजी तत्पुत्र २ सुरतानमल चंनणमल । सुरतानमल पुत्र २ गंभीरचंद्र इंद्रचंद्र । (५) प्रताप चंदजी पुत्र ३ हिमतराम-बेठमल-नथमल । हिमतरामपुत्र जीवन । जेठमल पुत्र मूलो । गुमानचंदजी पुत्र्यां २ झवू-बीजू । सवाई रामजी पुत्र्यां ३ सिरदारी-सिणगारी-नानुडी । मगनीरामजी तत्पुत्र्यां २ हरकवर-हस्तू । सपरिवार सहितेन सिद्धाचलजीरो संघ काढ्यो । जिणरी विगत—

जेशलमेर उदैपुर कोटैसुं कुंकुमपत्र्यां सर्व देसावरामे दीनी । च्यार २ जमण कीया नालेर दीया पछै संघ पाली भेलो हूवो । उठे जीमण ४ कीया । संघतिलक करायो । मिति महासुदि १३ दिने म । श्रीजिनमहेन्द्रसूरिजी श्रीचतुर्विंशसंघसमक्षे दीयो । पछे संघ प्रयाण कीयो । मार्गमें देशना सुणतां पूजा पडिकमणादि करतां साते क्षेत्रांमें द्रव्य लगावतां जायगा २ समेला होतां रथजात्रा प्रमुख महोच्छव करतां । श्रीपंचतीर्थीजी वांभणवाडजी आवूजी जीरावलेजी तारंगेजी संखेश्वरजी पंचासरजी गिरनारजी तथा मारगमाहे सहरांरा गामांरा सर्व देहरा जुहारया । इणमांत सर्व ठीकाणें मंदिर २ दीठ चढापो कीयो । मुगट कुंडल हार कंठी भुजवंध कडा श्रीफल नगदी चंद्रवा पुठीया इत्यादिक मोटा तीर्थमाथे चढापो धणो हूवो । गहणो सर्व जडाळ हो सर्व ठीकाणें लांहण जामण कीया सहसावनरा पगथीया कराया । उठेसु सात कोष ठेरे—गामसुं श्रीसिद्धगिरिजी मोत्यांसुं बघायनें पाळी-ताणें बडा हगामसुं गाजावाजतां तलेटीरो मंदिर जुहार डेरां दाखल हुवा । हुजे दिन मिति

वेशाख सुदी १४ दिने शांतिक पुष्टिक हुतां श्रीसिद्धगिरीजी पर्वतपर चढ्या, श्रीमुलनायक चोमुखोजी खरतरवशीरा त्या दुजा वश्यां सर्व जुहारी मास सवा रया। उठे चढापो घणो हुवो। अढाइ लाख जाती मेला हुवा। पुरब, मारवाड, मेवाड, गुजरात, ठुंढाड, हाडोती, कछभुज, मालवो, दक्षण, सिंध, पंजाब प्रमुख देशारा। उठे लांण रू० १ सेर १ मिश्री घर दीठ दीवी जीमण ५ संघव्यां मोटा कीया जीमण १ बाई बीजु कीयो ओर जीमण पण घणा हुवा। श्रीचोमुखाजीरे वारणें आलामे गोमुख यक्ष चक्रेश्वरीरी प्रतिष्ठा करायन पहराइ चोमुखाजीरो सिखर सुधरायो एक नवो मंदिर करावण वास्ते नॉव भराई। जुना मंदिरारा जीर्णोद्धार कराया जन्म सफल कीयो। गुरुभाक्ती इण मुजब कीवी। इग्यारे श्रीपूज्यजी था २१०० साधु साध्वी प्रमुख चौरासी गछारा। तिहां, प्रथम स्वगछरा श्रीपूज्यजीरी भक्ति साचवी। हजार ५ रो नगद माल दीयो दूजो खरच भर दीयो पछे अनुक्रमें सारा दुजा श्रीपुजारी साधु साध्वीयांरी भक्ति साचवी। आहार पांणी गाडीयांरो भाडो तंबु चीवरो ठाणें दीठ रू० ४१ दीया नगद। दुशाला वालांन दुशाला दीया। सेवग ५०० हा। जिणानें जणें दीठ रू० २१ दीया। रोटी खरच अलग। पहेरणारा मोजा ओषध खरची सारूं रुपीया चाहीज्या जिणानें दीया। पछे। म। श्रीजिनमहेन्द्रसुरिजी पासे सिंधव्यां ३१ संघमाला पहरी जिणें माला २ गुमास्ते सालगराम महेश्वरीने पहराइ। पछे बडा आडंबरसु तलेटीरो मंदिर जुहार डेरा दाखिल हुवा। जाचक्रानें दान दीनो। पछे जीमण १ कीयो। साधर्म्याने शिरपाव दीया। राजा डेरे आयो। जिणें हाथी सिरपावमें दीयो। दुजा मार्गमें राजवी नबाब प्रमुख आया डेरे, जिणानें, राजमुजब सिरपाव दीया। श्रीमुलनायकजीरे मंडाररे ताला ३ गुजरातीयांरा था सु चोथो तालो संघव्यां आपरो दियो। सदावर्त सरू हेईज। ईसा २ मोटा काम करचा पछे संघ कुशलक्षेमसु अनुक्रमें राधणपुर आयो। जेठे अंगरेज श्रीगोडीजीरा दर्शन करणें आयो। उठे पांणी नही थो सु गेबाउ नदी नीसरी। श्रीगोडीजीने हाथीरे होदे विराजमान कर संघने दर्शन दिन ७ इकलग करायो चढापेरा साढा तीन लाख रूपीया आया सवा महीनो रया, जीमण घणा हुवा। श्रीगोडीजीरे विराजणने बडो चोतडो पक्को करायो ऊपर छतरी बणाई। घणो द्रव्य खर्च्यो बडो जश आयो अक्षत नाम कीयो। साथे गुमास्तो महेश्वरी शालगराम हो जिणें जैनरा शिवरा सर्व तीर्थ कराया। पछे अनुक्रमें संघ पाली आयो। जीमण १ करन दानमलजी कोटे गया पछे भाई ४ जेसलमेर आया। डेरा दरवाजे बाहर कीया पछे सामेलो बडा ठाठसुं हुवो। श्रीरावलजी सामा पधान्या। हाथीरे होदे, संघव्याने श्रीरावलजी आपरे पुठे बेषाणने सारा शहिरमें हुय देहरा जुहार ऊपाश्रये आय हवेल्यां दाखल हुवा। पछे सर्व महेश्वरी वगैरे छत्तीस पांनने लुगायां समेत पांच पकवानसुं जीमाया। ब्राह्मणाने जणे दीठ रू० १ दक्षणारो दीयो पछे श्रीरावलजी जनानें सहित संघव्यारे हवेली पधान्या। रूपीयांसुं चोतरो कीयो। सिरपेच कंठी मोत्यांकी कडा जडाउ दुशाला नगदी हाथी घोडा पालखी निजर कीया। पाछा श्रीरावलजी इण मुजब हीज शिरपाव दीयो। एक लोद्वोजी गाम तांबापत्रां पेटे दीयो इतो इजारो कीयो।

आगे पिण इणारी हवेली—उदैपुर राणाजी, कोटेरा महारावजी, वीकानेररा किषनगढरा बुंदीरा राजाजी इन्दोररा हुलकरजी प्रमुख सर्व देशारा राजवी जनानें समेत इणारे घरे पधान्या देणो लेणो हजारारो कीयो । दिछिरे पातसाहरी अंगरेजारे पातसाहरी दीयोडी सेठ पदवी हे सो विक्षातही ज हे । पछे संघरी लाहण न्यातमें दीवी पुतली १ सोनेकी वाली १ मीश्री सेर १ घर दीठ दीशी । जीमण कीया पछे सेरमें ठावाठावानें सीरपाव दीया । गढमांहेलां मंदिरां लोद्वे कपाश्रये वडो चढापो कीयो इण मुजवही ज उदयपुर कोटे देणो लेणो कीयो । संघमें देहरासररो रथ हो जणरा इकावन सो लागा । त्रगडा सोनें रूपेरा २ जिणरा दश हजार लागा मंदिररा सोनें रूपेरी वासणांरा १५ हजार लागा । दुजा फुटकर सराजांमरा लाख १ रू० लागा ।

हवे संघमें जावतो हो जिणरी वीगत—तोफां ४, पलटनरा लोग ४०००, अशवार १५००, नगारे नीसाण समेत । उदैपुर राणाजीरा असवार ५०० नगारे निसाणे समेत । कोटेरा महारावजीरा अशवार १०० नगारे नीसाण समेत । जोधपुरे राजाजीरा असवार ५० नगारे नीसाण समेत । पायदल १०० जेसलमेररा रावलजीरा, असवार २०० टुकरे नवाबरा, असवार ४०० फुटकर असवार २०० घर ओर अंगरेजी जावतो, चपडासी तिलंगा सोनेरी रूपेरी घोटवाला जायगा २ परवानां वोलावा एवं पालख्या ७ हाथी ४ म्याना ५१ रथ १००, गाढ्यां ४००, उंठ १५००, इतरातो संवव्यांरा घर । संघरी, गाढ्यां उंठ प्रमुख न्यारा, सर्व खरचरा, २३०००००, तेवीसलाख रू० लागा ॥

इति संघरी संक्षेप प्रशस्ती लिखी ।

ओर—पण ठीकाणे २ धर्मरा काम करचा सो संक्षेप लिखीये छै—श्री धुलेवेजीरे वारणें नोवत खांनो करायो गहणो चढायो, लाख १ लागा । मक्षीजीरे मंदिररो जीर्णोद्धार करायो । उदैपुरमें मंदिर, दादासाहिवरी छतरी, धर्मशाला कराइ । कोटेमें मंदिर धर्मशाला दादासाहिवरी छतरी कराइ । जेसलमेरमें अमरसागरमें बाग करायो जिणमें मंदिर करायो जयवंतरो उपाश्रय करायो लोद्वेमें धर्मशाला कराइ, गढमाथे जमी मंदिरके लिये लीवी वीकानेरमें दादासाहिवरी छतरी कराइ इत्यादिक ठीकाणें २ धर्मरा आहीठाण कराया श्रीपुज्यजीरा चोमासा जायगा २ कराया पुस्तकांरा भंडार कराया भगवतिजी प्रमुख पुण्या प्रश्न दीठ २ मोती घन्या । कोटामें दोय लाख रूप्यादेकर बंदीखानो छेडायो बीज पांचम अठम इग्यारस चउदशरा उजमणा कीना इत्यादिक काम घरमरा कीया ओर कर रयाहे । इत्यलम् ॥

सवइयो ३१ सो—

शोमनीक जे साणमें वाफणा गुमानचंद ताके सुत पांच पांडव समान हे ।

संपदामें अचल बुद्धिमें प्रबल रावराणाही मानें जाकी कान हे ।

देवगुरु धर्मरागी पुन्यवंत वडभागी जगत सहु वात मानें प्रमान हे ।

देशहु विदेशमांह कीरत प्रकाश कीयो सेठ सउहेठ कवि कर्त बखानहै ॥ १ ॥

दुहा—

अठारसे छत्रुवे जेठमास सुदि दोय ।
 लेख लिख्यो अति चुंपपुं भावियण वांचो जोग ॥ १ ॥
 सकल सुरि शिर मुगटमणि श्रीजिनमहेन्द्रसुरिंद ।
 चरणकमल तिनके सदा सेवे भिवियण वृंद ॥ २ ॥
 कीनो आग्रहथकी जैसलमेर चोमास ।
 संघ सहु मक्ति करे चढते चित्त उल्लास ॥ ३ ॥
 ताकी आज्ञा पाय करि धरि दिलमें आणंद ।
 ज्युं थी त्युं रचना रची मुनि केसरीचंद ॥ ५ ॥
 भुलो जो परमादमें अक्षर घ टही बाध ।
 लिखत खेट आइ हुवे, सो खमीयो अघराध ॥ ५ ॥

॥ इति प्रशस्ति सम्पूर्णम् ॥

के निकालनेवालेके वंशज आज भी माजूद ह और मालवाके रतलाम वगैरह शहरोंमें उनकी बड़ी बड़ी दुकानें चलती हैं । इस संघके जैसा बड़ा संघ, इसके बाद जैन समाजमेंसे फिर कोई नहीं निकला और शायद अब कोई निकाले वैसी आशा भी नहीं है ।

इस कुटुंबने संवत् १९२८ में, जैसलमेरमें जो एक बड़ा भारी प्रतिष्ठामहोत्सव किया था उसका लेख भी उपर्युक्त लेखवाले मंदिरमें लगा हुआ है । यह लेख कुछ संस्कृत और कुछ मारवाडी भाषामें है । संग्रहकी दृष्टिसे इस लेखको भी यहाँपर प्रकट कर दिया जाता है ।

“ स्वस्ति श्रीविक्रमादित्यराज्यात् संवत् १९२८ शालीवाहनकृत शके १७९३ प्रवर्तमाने मासोत्तममासे माघमासे धवलपक्षे त्रयोदश्यां तिथौ गुरुवासरे महाराजाधिराज महारावलजी श्री श्री १००८ श्री वैरीशालजी विजयराज्ये श्रीमज्जेसलमेरवास्तव्य ओस-वंशे वाफना गोत्रीय संघवी सेठ गुमानचंदजी तत्पुत्र प्रतापचन्द्रजी तत्पुत्र हिमतरामजी जेठमलजी नथमलजी सागरमलजी उमेदमलजी तत्परिवार मूलचंद सगतमल केसरीमल रिपभदास मांगीदास भगवानदास भीखचंद चिंतामणदास लुणकिरण मनालाल कन्नैयालाल सपरिवार-युतेन आत्मपरकल्याणार्थ श्रीसम्-क्त्वोद्दीपनार्थ च श्री जैसलमेरनगरसत्क अमरसागरसमीपवर्तिनि समीचीनाऽऽरामस्थाने श्रीरिपभदेवजिनमंदिरं नवीने कारापितं तत्र श्री आदिनाथ विंवं प्रचीन वृहत्स्वरतरगणनाथेन प्रतिष्ठितं तत् श्रीजिनमहेन्द्रसूरि पदपंकजसेविना वृहत्स्वरतरगणः श्रीश्वरेण चतुर्विधसंघसहितेन श्रीजिनमुक्तसूरीणां विधिपूर्वमहता महोत्सवेन शो-भनहये श्रीमूलनायकचैत्ये स्थापितं । पुनः अनेक विद्वानामंजनशिलाका कारिता । पुनर्द्वितीयभूमिप्रासादे स्वप्रतिष्ठित श्री पार्श्वनाथविंव मुलनायकस्थापितं पुनर्बांश विहरमान प्रतिष्ठा कृतं मंदिरस्य दक्षिणपार्श्वे दादासाहिव कुशलसूरि गुरुमूर्ति स्थापनकृता । तथाच जिनदत्तसूरि कुशलसूरि चरणपादुका पुनरपि श्रीजिनहर्षसूरि महेन्द्रसूरि चरणपादुका स्थापिता ।

माई सवाईरामजीके घरका आया । रतलामसुं चि० सोभागमल चांदमल सौभाग्यमलकी माजी वगेरे आया । उदेपुरसुं चि० सिरदारमल तथा इणारी माजी वगेरे आया । ओर

पण घणे देशावरांसु संघ आयो । स्वामीवच्छल प्रमुखकरी ३ श्रीसंघकी भाक्ति करी । तथा पांच शिष्याने श्रीपूज्यजी महाराजके हाथसे दीक्षा देराइ । दिन १५ तक बडो ठाठ उछव नित्य नवीन पूजा प्रभावना हुइ । श्रीदरवार साहिव पधःन्या । तोफांका फेर हुवा । सेठांके पगमें सेनो बगसीयो । फेर श्रीसंघसमेत जेसलमेर आया उजमणा प्रमुख कीना । श्री-पूज्यजी महाराजकी पधरावणी २ कीनी जिणमें हजारा रुपियांको माल असबाब भेट कीनो । उपाध्याय बगेरे ठावा ठावा ठाणानें रोकडा शालजोडी इत्यादि यथायोग्य दीना । उपाध्याय साहिवचंदजी गणि । पं. । प्र. । भेरजी गणि पं. प्र. अमरचंदजी गणि प्रमुख ठाणा ४१ था । ठाणें दीठ रू. १० दश रोकडा थान प्रत्येके दीना । परगच्छीय यति-यांको सतकार अछीतरे कीनो । श्रीसरकारकी पधरामणी कीनी । घोडा लवाजमो नजर कीनो । मुसद्दी बगेरे सर्वनें यथायोग्य शिरोपाव दीना ॥

श्रीजिनभद्रसूरि शःखायां पं. प्र. श्रीमयाचंदजी गणि तत्शिष्य पं. सरूपचंदजी मुनि जेसलमेरु आदेशिना इयं प्रशस्ति रचिता ।

शिलावट विरामके हाथसुं श्रीमंदिरजी वणिया जिणके परिवारने लेनेकी कंठियां तथा कडीकी जोडियां मंदील डुष्टा थान बगेरे शिरोपाव दीना ॥

श्रीमंदिरके मूल गुंभारमें आसेपासे दक्षिणकी तर्फ परतापचंदजीकी खडी मूर्ति छे । उत्तरकी परतापचंदजीकी भार्याकी खडी मूर्ति छे । निजमंदिरके सामने पूर्वकी तर्फ पश्चिममुखी चोत्तरो कराय जिण ऊपर परतापचंदजीकी तथा भार्यासहित सपरिवार सही-तकी मुरतीयां स्थापित किनी ।

सम्बत् १९४५ मिति मार्गसिर सुदी २ वार बुध । दशकत सगतमल जेठमलार्णी वाफनाका । शुभं ।

दुहा—अष्टकर्म वन दाहके भये सिद्धजिनचंद ।

ता सम जो अध्या गिणे ताकुं वंदे चंद ॥

कर्मरोग ओपधसमी ग्यानसुधारस वृष्टि ।

शिवसुख अमृत बेलही जय जय सम्यक्दृष्टि ॥

एहीज सद्गुरु सीख छे एहीज शिवपुर माग ।

लेजो निज ग्यानादि गुण करजो परगुण भाग ॥

भेद ग्यान श्रवण भयो समरस निरमलनीर ।

अन्तर धोबी आत्मा धोवे निजगुण चीर ॥

कर दुःख अंगुरी नेनदुःख तन दुःख सहज समान ।

लिख्यो जात है कठणसुं शठ मानस आशान ॥

॥ इत्यलम् ॥

शोक समाचार ।

[१]

जैन साहित्य संशोधक के पाठकोंको यह समाचार देते हुए हमें बड़ा दुःख होता है कि, कलकत्ता नगर के प्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय डॉ. सतीश-चन्द्र विद्याभूषणजीका गत तारीख २५ अप्रैलको असमयहीमें स्वर्गवास हो गया । विद्याभूषणजी भारतवर्ष के नामी विद्वानोंमेंसे एक थे । आप अंग्रेजी भाषा के तो आचार्य (एम्. ए) थे ही, साथमें संस्कृत, प्राकृत, पाली, तिब्बती आदि भाषाओं के भी उत्तम ज्ञाता थे । ब्राह्मण, बौद्ध और जैन धर्म के दर्शन शास्त्रोंमें आपकी उल्लेख योग्य गति थी और पुरातत्त्व शास्त्र के आप अच्छे पण्डित थे । आप स्वभाव के बड़े सरल और हृदयसे पूरे निष्पक्षपात थे । ज्ञानार्जन करना ही आपका परम ध्येय था । आपका विद्याव्यासंग आश्चर्यजनक था । अंग्रेजीकी एम्. ए. परीक्षा के पास करने के पहले ही संस्कृत भाषामें आपने इतनी व्युत्पत्ति कर ली थी कि जिससे नवद्वीप-विबुध-जन-सभाने प्रसन्न होकर आपको ' विद्याभूषण ' की पट्टी प्रदान की थी । एम्. ए. पास करने के बाद कुछ काल तक आप कृष्णनगर कालेजमें संस्कृत के प्रोफेसर रहे । इसी समय के मध्यमें आपने काव्य और न्यायशास्त्रका अभ्यास भी आगे बढ़ाया, और साथमें तिब्बती भाषाका ज्ञान भी संपादन किया । आपकी इस योग्यताको देखकर बंगालकी सरकारने आपको तिब्बती भाषाका अनुवादक नियत किया और साथमें उसका एक शब्दकोष बनानेका काम दिया । यह काम आपने बड़ी योग्यता के साथ समाप्त किया । इससे सरकारने आपको फिर कलकत्ता-संस्कृतकालेज के अध्यापक के पद पर नियुक्त किया । वहां आपने अध्यापकी करते हुए पाली भाषा के अध्ययनका प्रारंभ किया और सन् १९०१ में उसकी एम्. ए. की परीक्षा देकर उसमें प्रथम श्रेणीमें प्रथम नम्बर प्राप्त किया । आपके इन परीक्षापत्रोंकी जांच करनेवाला उस समयमें भारतमें वैसा कोई विद्वान् नहीं था इस लिये वे पत्र लन्दन विश्वविद्यालय के

पालीभाषा और बौद्ध साहित्य के प्रधानाध्यापक महाशय रीज डेवॉडिके पास भेजे गये थे । इन परीक्षक महाशयने सतीश चन्द्रजी के वे परीक्षापत्र पढ़कर कलकत्ता युनिवर्सिटी के रजिस्ट्रारको लिखा कि—इनका पाली भाषाका ज्ञान सर्वोत्तम दर्जेका है । इसके बाद आपको वहांसे बदली हुई और फिर आप प्रेसीडेन्सी कालेज के सिनियर प्रोफेसर बनाये गये ।

सन् १९०५ में जब बौद्ध तीर्थोंकी यात्रा करने के लिये घी-सी-लामा हिन्दुस्थानमें आये तब भारत सरकारने आपको लामा महोदय के साथ घूम कर उन्हें भारत के बौद्ध तीर्थोंका ऐतिहासिक महत्त्व समझानेका काम दिया । आपने यह काम इतनी उत्तमता के साथ किया कि जिससे लामा महाशयने खुप होकर, प्रेमोपहार के रूपमें आपको एक रेशमी चादर—जिसे वे लोग ' खाताग ' करते हैं—समर्पित की । आपकी इस प्रकारकी सब विषयोंमें निपुणता देखकर भारत सरकारने आपको महामहोपाध्यायकी उत्तम पाण्डित्य और सम्मान-सूचक पट्टी प्रदान की ।

इसी अरसेमें आपने ' मिडिवल स्कूल आफ दि इन्डियन लॉजिक ' नामक जैन न्याय और बौद्ध न्याय के इतिहास विषयकी प्रसिद्ध पुस्तक लिखी जिसके कारण कलकत्ता युनिवर्सिटीने आपको ' डाक्टर आफ फिलॉसफी ' की प्रधान उपाधिसे सम्मानित किया ।

सन् १९०९ में, बंगाल सरकारने आपको बौद्ध धर्मका साविशेष प्रत्यक्ष ज्ञान संपादन करने के लिये लंका भेजा । वहां पर, सुमंगल स्थविर—जो लंका के प्रधान बौद्ध स्थविर और कोलंबो के विद्योदय कालेज के अध्यक्ष थे—के पास उस विषयका तलस्पर्शी ज्ञान संपादन किया । वहांसे फिर आप बनारस पहुंचे और वहां पर न्याय आदि दर्शन शास्त्रोंमें उत्तीर्णता प्राप्त की ।

फिर १९१० में आप कलकत्ता संस्कृत कालेज के प्रधानाध्यापक बनाये गये और तबसे आखिर तक आप इसी पद पर प्रतिष्ठित रहे । इसके सिवाय, साहित्य और शिक्षा विषयक अने सभा-सोसाटि-

योंके आप अध्यक्ष और सदस्य आदि समय समय पर नियुक्त किये गये थे।

कलकत्तेमें, शास्त्रविशारद जैनाचार्य विजयधर्म-सूरिजीसे आपकी मुलाकात हो गई थी जिससे आपको जैनसाहित्यसे भी बहुत कुछ परिचय मिल गया था। आप उक्त जैनाचार्यजीके बड़े प्रशंसक थे और उनकी प्रेरणासे आपने कलकत्ता-विश्वविद्यालयके पठनक्रममें जैनसाहित्यको भी कुछ स्थान दिलाया था। जैन न्यायके इतिहास विषयक उपर्युक्त पुस्तकके सिवाय जैनसाहित्यके प्रथम तर्क ग्रन्थ न्यायावतारका आपने अंग्रेजीमें अनुवाद भी किया है। भारतके दर्शन शास्त्रोंके इतिहासमें आपको बड़ा रस था और इस लिये इस विषयमें आपने अंग्रेजी और आपनी मातृभाषा बंगलामें अनेक छोटे बड़े निबन्ध लिखे हैं।

जैन साहित्यविषयक आपका प्रेम देख जैन समाजने भी आपका यथोचित गौरव किया था। सन् १९१३ में बनारसमें जो अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभाका अधिवेशन हुआ था उसके आप अध्यक्ष बनाये गये थे और सभाने आपको 'जैनसिद्धान्त महोदधि' की उपाधि समर्पित कर सत्कृत किया था। इसके अगले वर्ष जब जोधपुरमें जैनसाहित्य सम्मेलन हुआ तब भी आप उसके सभापति नियत किये गये थे।

गतवर्ष जब यहाँ पर (पूनेमें) 'प्रथम प्राच्यविद्यापरिषद्' हुई थी तब आप यहाँ पर भी आये थे और परिषद्के पालीभाषा और बौद्धसाहित्य विषयक विभागके अध्यक्ष बनाये गये थे। उस समय हमारी भी आपसे भेंट हुई थी और परिषद्में जब हरिमद्रसूरिका समय निर्णय विषयक हमारा लेख पढ़ा गया तब खास तौरसे उसे सुननेके लिये आप वहाँ पर उपस्थित हुए थे। हरिमद्रसूरिके समयके विषयमें आपका और हमारा मतभेद था। इसलिये इस विषयमें खास चर्चा करनेके लिये, उक्त परिषद्की समाप्तिके दिन आप उत्कटापूर्वक हमारे स्थानपर भी आये थे; और बहुतसी बातचीत कर बड़े प्रसन्न हुए थे। चलते समय आप हमसे आग्रह कर गये थे कि, जब हमारा उक्त निबन्ध

छपकर प्रकाशित हो जाय तो तुरन्त उसकी एक प्रति आपके पास भेज दी जाय, कि, जिससे आप आपनी जैन न्यायके इतिहास विषयक उपर्युक्त पुस्तककी दूसरी आवृत्तिमें, जो वर्तमानमें छप रही है, हरिमद्रसूरिके समयवाला उल्लेख ठीक संशोधित कर दिया जा सके। परन्तु खेद है कि, हमारे उस निबन्धके प्रकाशित होनेके पहले ही, गत २५ अप्रैलको आप इस क्षणभंगुर संसारको छोड़कर स्वर्गमें जा बसे।

आपकी इस अकालमृत्युसे भारतवर्षके विद्या-व्यसनी विद्वानोंमेंसे एक बड़ी भारी व्यक्ति अदृश्य हो गई और जैन साहित्यका एक प्रतिष्ठित और प्रामाणिक पण्डित लुप्त हो गया।

[२]

हमें इन पंक्तियोंके लिखते हुए अत्यन्त दुःख होता है कि, इस पत्रके प्रथम अंकमें, जिन प्रो० सी. वी. राजवाडेका 'जैनधर्मका अध्ययन' शीर्षक लेख प्रकट हुआ है और जिनका संक्षिप्त परिचय हमने उसी अंकके 'सम्पादकीयविचार' वाले एक नोटमें दिया है, वे आज इस संसारमें नहीं है। गत ८ मईको नाशिकमें जहाँ, पर आरोग्यप्राप्तिके लिये पिछले कुछ महीनोंसे आप विश्रान्ति ले रहे थे, आपका शरीरपात हो गया। जैन साहित्यसंशोधकके गतांकमें प्रकाशित उक्त लेख और हमारे नोटको आप देख भी नहीं पाये। यह किसकी कल्पना थी कि इस प्रस्तुत अंकमें हमें अपने पाठकोंको आपका कोई विशिष्ट लेख भेंट करनेके बदले आपकी मृत्युके लिये दुःखोद्गार भेंट करने पड़ेंगे। कालस्य कुटिला गतिः।

राजवाडेजी बड़े बुद्धिशाली और एक होनहार विद्वान् थे। आपको ग्रेज्युएट हुए अभी पूरे १० वर्ष भी नहीं हुए थे। सन् १९१२ में यहाँ (पूना) के फर्ग्युसन कालेजमें अध्ययन समाप्त कर आपने बी. एस्. सी. की डिग्री प्राप्त की और १९१४ में पाली और अंग्रेजीकी एम्. ए. परीक्षा पास की। इसके बाद तुरन्त ही आप वरोडा कालेजमें पाली और अंग्रेजीके प्रोफेसर नियुक्त हुए। वहाँ आपने अपने अध्यापन कार्यके सिवाय पालीसाहित्यके

प्रकाशनका कार्य भी शुरू किया। आपकी यह बड़ी उत्कट इच्छा थी कि समग्र पाली साहित्य देवनागरी लिपिमें छपाकर प्रकट किया जाय, ताकि जिससे भारतवासी,—जो आज पिछले डेढ़ हजार वर्षसे इस अनन्यतुल्य साहित्यका परिचय भुले हुए हैं—पुनः परिचय प्राप्त कर सकें और उसके द्वारा सम्यक् समुद्ध भगवान् गौतम बुद्धके असूल्य उपदेशोंका आस्वादन कर सकें। इससे आपने सबसे पहले 'हत्थवनगल्लविहारवंस' नामकी एक छोटीसी पाली पुरितका छपाई और उसके बाद 'मज्झिमानिकाय' का एक भाग प्रकट किया। इसी बीचमें आपने विविध परिशिष्ट और उपयुक्त टिप्पणियोंके साथ 'दीर्घनिकाय' का समग्र अनुवाद भी अपनी मातृभाषा मराठीमें किया। इसका एक भाग बड़ौदा राज्यकी औरसे प्रकाशित होनेवाली ग्रन्थमालामें प्रकट भी हो चुका है। आप शीघ्र ही, अपने सहाध्यायी और सहकारी प्रो० बापट (फर्ग्यूसनकालेज, पूना) और प्रो० भागवत (सेंट जेवियर कालेज बम्बई)के संयुक्त परिश्रमसे प्रसिद्ध बौद्धग्रन्थ विसुद्धिमग्गकी एक सर्वोत्तम देवनागरी आवृत्ति प्रकट करनेकी तैयारी कर रहे थे।

आपका विद्याध्यासंग बड़ा उत्कट था। अंग्रेजीके आप आचार्य थे ही; साथमें आप जर्मन और फ्रेंच भाषाओंका भी अपेक्षित ज्ञान रखते थे। भारतीय भाषाओंमें संस्कृत, पाली, प्राकृत जैसी प्राचीन और शास्त्रीय भाषाओंका यथेष्ट अध्ययन कर आपने बंगाली, गुजराती, हिन्दी जैसी वर्तमान देशभाषाओंमें भी आवश्यकीय प्रवेश कर लिया था।

जबसे आपका हमारे साथ परिचय हुआ तबसे जैनसाहित्यका विशिष्ट अध्ययन करनेकी भी आपकी तीव्र लालसा हो गई थी। जैनसाहित्यसंशोधकके लिये आपने जैन और बौद्ध साहित्य विषयक तुलनात्मक लेखमालाके लिखनेका स्रोत्साह स्वीकार किया था। जैनग्रन्थोंके प्राप्त करनेकी आप कितनी उत्कट आकांक्षा रखते थे इसका परिचय तो पाठकोंको हमने गतांकमें जो नोट दिया है उसीसे मिल सकेगा। भावनगरसे हमारे एक सज्जन (श्रीयुत हीरालाल अमृतलाल शाह) ने कुछ जैन ग्रन्थ जब

आपके पास नाशिक भेजे, तब आप अधिक अस्वस्थ होनेके कार। आपके सम्बन्धियोंने उन ग्रन्थोंका आपसे जिकर न करके ज्यों के त्यों एक किनारे रख दिये। पीछेसे जब आपको उसकी खबर लगी तब आप बहुत अधीर हो ऊठे और बिना उन ग्रन्थोंके दर्शन किये और पत्रे उलट-पुलट किये आपको चेन नहीं पडा। उन ग्रन्थोंको देखते ही आपने हमको, वैसी अस्वस्थतामें भी एक पत्र लिखा और पुस्तकोंकी प्राप्ति के लिये प्रसन्नता प्रकट की। इसीका नाम सच्चा विद्याध्यासंग है।

कूर कालने इस प्रकार असमयहीमें आपको ऊठा ले जा कर भारतवर्षके एक तेजस्वी विद्वत्कारको उदित होनेके पहले ही अस्तंगत कर दिया। आपकी अमर आत्माको अक्षय शांति मिले यही हमारी आपके लिये अन्तिम प्रार्थना है।

[३]

गत जुलाई मासकी अंतिमरात्रि भारतवर्षके इतिहासमें बड़ी दुःख और खेदजनक रात्रि मानी जायगी। क्योंकि उस कालरात्रिके दुःखोत्पादक अधम वातावरणने भारतके आद्वितीय प्रतापवान् और प्रकाशपूर्ण प्रदीपको सदाके लिये निर्वाणवस्थामें पहुंचा दिया। हम ये शब्द अपने लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक महोदयको मृत्युको लक्ष्य कर कह रहे हैं। लोकमान्यका अधिक परिचय देनेकी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि भारतमें ऐसा कोई अभागा प्राणि नहीं है जो लोकमान्यको थोड़ा बहुत नहीं जानता हो। और वाकी यों आपका पूर्ण परिचय देनेकी शक्ति भी किसमें है। चाहे जितना भी लंबा परिचय लिखा जाय तो भी वह हमेशा अपूर्ण ही रहेगा।

आपमें जिन अनेकानेक उत्तमोत्तम शक्तियोंने आकर निवास किया था, उनमेंसे एक एक शक्ति ही मनुष्यको संसारमें पूज्य और मान्य बना सकती है, तो फिर ऐसी अनेक शक्तियोंके केन्द्रभूत बने हुए आपके महान् व्यक्तित्वकी पूज्यता और मान्यताका तो माप ही कैसे किया जाय। आप क्या नहीं थे? आप प्रकाण्ड प्रतिभाशाली थे, उत्कृष्ट सदाचारी थे, परम परोपकारी थे, अगाध

धैर्यवान् थे, आदर्श कर्तव्यवान् थे, असाधारण ज्ञानवान् थे, महान् देशभक्त थे, अनुपम लोकप्रिय थे, सर्वोत्तम राष्ट्रसूत्रधार थे, गंभीर राजनीतिज्ञ थे, संपूर्ण स्वार्थत्यागी थे, निष्काम कर्मयोगी थे, धुरंधर साहित्य सेवी थे, उत्तम लेखक और निपुण वक्ता थे; सब कुछ थे और संपूर्ण रीतिभे थे।

जैन साहित्य संशोधकके कार्य क्षेत्रकी विशिष्टताको लक्ष्य कर, हम यहां पर आपकी अनेकानेक शक्तियोंमेंसे केवल उस एक ही शक्तिका संक्षिप्त उल्लेख करते हैं जिसके कारण आप संसारमें एक श्रेष्ठ विद्वान् माने गये। वह शक्ति आपकी अत्यंत सूक्ष्म संशोधक बुद्धि-गहन गवेषणा शक्ति थी। आपकी इस संशोधक बुद्धिका जर्मनी, इंग्लैंड और अमेरिकाके विद्वानों तकने गौरव किया है। विद्वानोंको आपकी इस शक्तिका प्रथम परिचय सन् १८९२ में मिला था। उस वर्ष लण्डन नगरमें होनेवाली 'प्राच्य विद्वानोंकी आंतरराष्ट्रीय परिषद्' (The International Congress of Orientalist) में वेदोंकी प्राचीनताके विषयमें आपने एक गहन गवेषणा और अत्यन्त अनुसन्धानपूर्ण मौलिक निबन्ध भेजा था जो फिर अगले वर्ष (सन् १८९३) 'ओरायन (ORION)' के नामसे पुस्तकरूपमें प्रकाशित किया गया था। इस पुस्तकमें आपने ज्योतिष शास्त्रके नियमानुसार नक्षत्रोंकी गति ऊपरसे यह बतलाया है कि, ऋग्वेदमें जो 'ओरायन = आग्राहायण नक्षत्र संबंधी ऋचायें मिलती हैं उनसे उनका रचना समय कमसे कम ई. स. से ४००० वर्ष पूर्व होना सिद्ध होता है। आपकी इस गवेषणाको पढ़ कर प्रो. मेक्षमुलर, विटनी, वेबर, बुल्हर और ब्लुमफील्ड जैसे प्रख्यात संशोधक विद्वानोंने आपकी शोधक बुद्धिकी उत्तम प्रशंसा की थी। डॉ. ब्लुमफील्डने तो आपकी इस गवेषणाको "विज्ञान और संस्कृतके जगत्में एक हलचल मचा देनेवाली घटना" बतलाई थी और कहा था कि "निस्सन्देह, इस पुस्तकसे साहित्य संसारके आगामी वर्षमें खूब सनसनी फैल जायगी। इस वर्ष, इतिहासको तिलककी खोजके फलको अपनाने ही में सारा समय लगा देना होगा।"

तिलक महाशयके इस सिद्धान्तकी, जर्मनीके विद्वान् डॉ. जेकोबीके सिद्धान्तसे अचिन्त्य समानता हो गई थी। क्यों कि डॉ. जेकोबी भी अपनी स्वतंत्र गवेषणाद्वारा वेदोंका रचना समय लगभग वही स्थिर कर सके जो तिलक महाशयने किया। इससे पुरा तत्त्वज्ञानमें आज यह सिद्धान्त तिलक-जेकोबी (Tilak-Jacobi theory) के संयुक्त नामसे व्यवहृत होने लगा है।

ऐसा ही अनुसन्धानात्मक दूसरा ग्रन्थ आपका 'वेदोंमें आर्योंका उत्तर ध्रुवनिवास (The Arctic Home in the Vedas)' है। यह ग्रन्थ सन् १८९७ में जब आपको दूसरी बार कारागृहवास मिला था तब लिखा गया था। वेद, ब्राह्मण आदि संस्कृत ग्रंथ, पारसियोंके जिन्द-अवेस्ता ग्रन्थ और पश्चिमीय विद्वानोंके लिखे हुए भूगर्भविद्या सम्बन्धी नवीन ग्रन्थोंका सूक्ष्म अध्ययन और मनन कर आपने इस ग्रन्थकी रचना की है। इस ग्रन्थमें आपने वेद, ब्राह्मण, पुराण, अवेस्ता इत्यादि शास्त्रोंके अनेकानेक प्रमाण देकर, यह प्रतिपादित किया है कि वेदकालीन आर्यलोग उत्तर ध्रुवके प्रदेशमें निवास करते थे। कारागृहमें बैठे बैठे, इस ग्रन्थके लिखनेके लिये अपेक्षित साधनोंके अध्ययन-मनकी अनुमति सरकारने आपको प्रो. मेक्षमुलरके अनुरोधसे दी थी। पीछेसे उन्हीं प्रोफेसर महोदयके विशेष परिश्रम और प्रयत्नसे सरकारने आपको असमय ही में बन्धनमुक्त भी कर दिया था। कारागृहमेंसे निकले बाद आपने उक्त प्रो. को एक कृतज्ञतापूर्ण पत्र लिखा जिसमें अपने किये हुए इस नवीन अनुसन्धानका कितना एक उपयुक्त सार भी लिख भेजा। इस सारको पढ़ कर प्रोफेसर महाशयने तिलक महोदयको लिखा था कि "कितनी एक वैदिक ऋचाओंका अर्थ आपके बतलाए मुताबिक ठीक हो सकता है; परंतु कदाचित् उनके आधारपरसे निकाला हुआ सिद्धान्त भूस्तर शास्त्रके सिद्धान्तके साथ मेल नहीं खायगा, ऐसी मुझे शंका है।" खेद है कि तिलक महाशयके इस ग्रन्थके प्रकाशित होनेके पहले ही-यह ग्रन्थ सन् १९०३ में प्रकाशित हुआ-प्रो. मेक्षमुलरका देहान्त

होगया, जिससे उनके अधिकारयुक्त अभिप्रायसे आपका यह ग्रन्थ वञ्चित रहा। परन्तु, दूसरे विद्वानोंने आपकी इस कृतिका भी खूब सत्कार किया। बोस्टन विश्वविद्यालयके अध्यक्ष डॉ. चारिनेने इस पुस्तकके विषयमें कहा था कि "इन्डो-इरानी विद्वानोंने जितनी पुस्तकें इस विषयपर आजतक लिखी हैं उन सबमें यह पुस्तक अधिक निश्चयात्मक है। जो कोई स्वर्गीय मि. नील की 'देव रात्रि' (The night of Gods) का और इस पुस्तकका पारायण कर लेगा वह संभवतः फिर कभी यह न पूछेगा कि आयोंका आदिम निवासस्थान कहां है।"

आपको जब सन् १९०८ में तीसरी बार जेलयात्राका हुक्म हुआ तब मंडालेके एकान्तवासमें बैठ कर आपने वह गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र

लिखा, जो आज भारतके प्रत्येक धर्मजिज्ञासु जनके घरमें विराजमान हो रहा है तथा प्रत्येक विद्वान् और विद्यार्थीके लिये एक अत्यावश्यक पाठ्य ग्रंथ बन रहा है। इस ग्रन्थमें आपने अपने जीवनके समग्र विचार स्रोतोंको एकत्र कर शास्त्र रूप महासरोवरके रूपमें वद्ध कर दिया है। पूर्विय और पाश्चात्य तत्त्वज्ञानकी सभी मुख्य मुख्य विचार-श्रेणियोंका गंभीर मन्थन कर आपने इस अमूल्य ग्रन्थरत्नको प्रकट किया है। आपके नामको अजरामर बनानेवाला केवल यही एक ग्रन्थरत्न पर्याप्त है।

आपके देह विलयसे संसारका एक श्रेष्ठ और प्रखर ज्योतिःपूर्ण ज्ञानस्वरूप महानक्षत्र अस्त हो गया।



चित्र-परिचय ।



१—गत अंकमें जो दर्शनीय चित्र दिये गये हैं उनमें पहला रंगीन चित्र पावापुरीके जलमंदिरका है। पावापुरी पटना जिलेकी खुवे विहार तहसीलका एक छोटासा गांव है। जैन समाजकी मान्यता अनुसार श्रमण भगवान् श्रीमहावीरदेवकी निर्वाण-भूमि यही पावापुरी है। इस लिये जैनियोंका यह एक परम पवित्र तीर्थस्थल है। इस गांवके पास एक कमलसरोवर नामका अच्छा तालाब है। इस तालाबमें हमेशा असंख्य कमलपत्र खिले रहते हैं इसलिये इसका नाम भी कमलसरोवर पड़ गया है। इस सरोवरके मध्यमें एक भव्य मंदिर बना हुआ है, जिसमें संगमरमरके बन हुए भागवान् महावीर स्वामीके पूजनीय चरणोंकी स्थापना की हुई है। मंदिर बड़ा खूबसूरत और दर्शनीय है। भावुक मनुष्योंके हृदयमें वहां पर जानेसे बड़ी शक्ति उत्पन्न होती है और कुछ काल तक वहां पर बैठ कर ध्यान धरनेसे अपूर्व शान्ति प्राप्त होती है।

इसी मंदिरका वह सुन्दर चित्र है। चित्रमें मंदिर, सरोवर, आसपासके किनारों पर लगे हुए वृक्ष, इत्यादि सभीका मनोहर दृश्य दिखाई दे रहा है। आरा निवासी उत्साही जैन युवक श्रीयुत कुमार देवेन्द्र प्रसादजीने अपनी ओरसेही वह चित्र जैनसाहित्यसंशोधकके पाठकोंको भेंट किया है। तदर्थ आप साधुवादके पात्र हैं।

२—गतांकका दूसरा हाफटोन चित्र, भारत प्रसिद्ध वीरभूमि चितोड़ नगरीके समीपमें रहा हुआ इतिहास प्रसिद्ध चितोड़गढ़ (किला) मेंके एक अति प्राचीन जैन कीर्तिस्तंभ (Jain Tower.) का है। चितोड़के किलेमें दो कीर्तिस्तंभ हैं जिनमें एक जो अधिक ऊंचा और विशेष प्रसिद्ध है वह १५ वीं शताब्दीमें सुप्रसिद्ध राणा कुंभा द्वारा बनाया गया है और इससे उसका असली नाम

‘कुंभमेरु’ है। दूसरा स्तंभ यह जैन कीर्तिस्तंभ है। ‘कुंभमेरु’ की अपेक्षा यह जैन कीर्तिस्तंभ बहुत प्राचीन है और पुरातत्त्वज्ञोंने ११ वीं या १२ वीं शताब्दीमें इसके बननेका अनुमान किया है। यह किसी दिगम्बर जैनका बनाया हुआ है। क्यों-कि इसमें जो जिनमूर्तिमां लगी हुई हैं वे दिगम्बर हैं।

यह स्तंभ ८० फीट ऊंचा है। समुद्रकी सतहसे इसकी ऊंचाई १५०० फीट और नीचेकी जमीनसे ६०० फीट है। यह किलेकी सबसे ऊंची भूमिपर बना हुआ होनेसे इसका शिखर किलेमेंके सभी मकानोंसे ऊंचा दिखाई देता है। इसके शिखरका जीर्णोद्धार हाल हीमें-दस बारह वर्ष पहले-सरकारने बड़ा खर्च करके करवाया है। सारे हिंदु-स्थानमें जैनियोंका यही एक मात्र महत्त्वका पुरातन कीर्तिस्तंभ मौजूद है। इसका समग्र ऐतिहासिक वर्णन आगेके किसी अंकमें, एक स्वतंत्र लेख द्वारा पाठकोंको सुनायेंगे।

चित्रमें जो दो जुदा जुदा ब्लाक हैं उनमें दाहिनी तरफवाला ब्लाक स्तंभकी उस अवस्थाका दर्शन करा रहा है जब उसके शिखरका जीर्णोद्धार नहीं किया गया था। बाईं तरफका दृश्य जीर्णोद्धारके अनन्तरका है।

३—इस अंकमें करहेडाके पार्श्वनाथ जैन मंदिरका चित्र दिया जाता है। यह गांव उदयपुर [मेवाड़] राज्यमें आया हुआ है और चितोड़-उदयपुर रेलवे लाइनके बीचमें पड़ता है। गांव बिल्कुल छोटासा मामुली है। गांवसे बहार, कुछ फासले पर यह मन्दिर बना हुआ है। मन्दिर पर जिनालय है और बड़ा भव्य है। मन्दिरमें पार्श्वनाथ तीर्थंकर की मनोहर मूर्ति प्रतिष्ठित है। पुराने लेखोंमें इस गांवका नाम ‘करहेटक’ ऐसा लिखा हुआ मिलता है। यह मन्दिर १४ वीं शताब्दीके लगभगका बना हुआ अनुमान किया जाता है। ऐतिहासिक वर्णन फिर कभी दिया जायगा।



जैन माहित्य मंशोधक



महामहोपाध्याय डॉ. सुनीलचंद्र विद्याभूषण, एम. ए. पी. एच्. डी।

जैन साहित्य संशोधक



स्वर्गीय श्रीमान् बाल गंगाधर तिलक ।

નમોત્થુ ણં સમણસ્સ મગ્ગઓ મહાવીરસ્સ ।

જૈન સાહિત્ય સંશોધક

ભાગ ૧]

ગુજરાતી લેખ વિભાગ

[અંક ૨

સોમપ્રભાચાર્ય વિરચિત કુમારપાલ પ્રતિબોધ ।

(ગ્રંથ પરિચય)

[ઘડોદરાના વિદ્યાવિલાસી નૃપતિ શ્રીસયાજીરાવ ગાયકવાડ સરકાર તરફથી, ' ગાયકવાડઝ્ ઓરિયન્ટલ સીરીઝ ' નામે ૫-૬ વર્ષથી એક ગ્રંથમાલા પ્રકટ થવા લાગી છે જેની અંદર સંસ્કૃત, પ્રાકૃત, અપભ્રંશ આદિ ભાષાઓમાં લખાણવાળા પ્રાચીન અને દુર્લભ્ય ગ્રંથો પ્રકાશિત થાય છે. એ ગ્રંથમાલાના મૂલ ઉત્પાદક અને મુખ્ય સંપાદક સ્વર્ગસ્થ વિદ્વાન્ શ્રાવક શ્રીયુત ચિમનલાલ ડાહ્યાભાઈ દલાલે પાટણ અને જેસલમેર (રાજપૂતાના) નાં જૂના જૈન પુસ્તક મંદારોનું સૂક્ષ્મ નિરીક્ષણ કરી તેમાંથી કેટલાક ઉત્તમ અને અલભ્ય-દુર્લભ્ય જૈન ગ્રંથો, ઉક્ત સીરીઝમાં પ્રકટ કરવા માટે યાસ ચુંટી કાઢ્યા હતા. એ ગ્રંથોમાં સોમપ્રભાચાર્યવિરચિત કુમારપાલ પ્રતિબોધ નામનો પણ એક પ્રાકૃત ભાષામય મોટો ગ્રંથ છે જેનું સંપાદન કાર્ય સ્વર્ગસ્થ ભાઈ દલાલે ઘણા આગ્રહપૂર્વક મને સોંપ્યું હતું. એ ગ્રંથ હવે છપાઈને તૈયાર થયો છે. એની પ્રસ્તાવના જે મારા તરફથી લેખવામાં આવી છે, તે જૈન સાહિત્ય સંશોધકના વાચકોને યાસ વાંચવા લાયક હોવાથી, અત્ર પ્રકટ કરવામાં આવે છે. મૂલ પુસ્તકમાં આ પ્રસ્તાવનાનો ફ્રેંચી અનુવાદ તથા સંસ્કૃતસાર આપવામાં આવ્યો છે.—મુનિ જિનવિજય ।]

સ્તુમસ્ત્રિસન્ધ્યં પ્રશુહેમસૂરેરનન્યતુલ્યાપ્તપદેશશક્તિમ્ ।

અતીન્દ્રિયજ્ઞાનવિવર્જિતોઽપિ યઃ ક્ષોણિભર્તુર્વ્યધિત પ્રવોધમ્ ॥

સત્વાનુકમ્પા ન મહીભુજાં સ્યાદિત્યેપ કલૃપ્તો વિતથઃ પ્રવાદઃ ।

જિનેન્દ્રધર્મં પ્રતિપદ્ય ચેન, શ્લાઘ્યઃ સ કેષાં ન કુમારપાલઃ ॥

—સોમપ્રભાચાર્ય ।

ગુજરાતના ચૌલુક્યવંશના પ્રસિદ્ધ નૃપતિ કુમારપાલને જૈનાચાર્ય હેમચંદ્રસૂરિય સમય સમય ઉપર જે રીતે જૈનધર્મના સિદ્ધાન્તોનો, વિવિધકથા—આલ્યાનો દ્વારા બોધ આપ્યો હતો; અને તે બોધનું શ્રવણ

કરી જે રીતે કુમારપાલે જૈનધર્મનો સંપૂર્ણ સ્વીકાર કર્યો હતો તેનું સામાન્ય વર્ણન આ ગ્રંથમાં આપવામાં આવ્યું છે. ગ્રંથકારે આ ગ્રંથનું નામ 'જિનધર્મ-પ્રતિબોધ' પવું રાખ્યું છે; પરંતુ, ગ્રંથના અંતે, પુષ્પિકાલેખમાં 'કુમારપાલ-પ્રતિબોધ' પવું નામ લખેલું મળવાથી, તેમ જ ગ્રંથગત વિષયનો નામમાત્રના નિર્દેશથી પણ વાચકોને ધ્યાન આવી શકે તેવા હેતુથી; મેં આ પુસ્તક ઉપર એ જ નામ અંકિત કરવું વધારે યોગ્ય ધાર્યું છે.

આ ગ્રંથની પ્રસ્તુત આવૃત્તિ, ગુજરાતની પ્રાચીન રાજધાની પાટણ શહેર (જે વર્તમાનમાં વડોદરા—રાજ્યના કડીપ્રાંતમાં એક સાધારણ તાલુકાનું સ્થાન ભોગવે છે) માંના જૈન પુસ્તક માંડાગારમાંથી મળી આવેલા તાડપત્રાત્મક પુસ્તક ઉપરથી તૈયાર કરવામાં આવી છે. એ તાડપત્રના એકંદર ૨૫૫ પાનાં છે. પ્રત્યેક પાનું ૨ ફીટ ૭ ઇંચ લાંબું અને માત્ર ૨ ઇંચ પહોળું છે, એ પાનાના પ્રત્યેક પૃષ્ઠ (એક બાજુ) ઉપર ત્રણથી પાંચ પંક્તિઓ, કાળી શાહીથી દેવનાગરી લિપિમાં લખેલી છે. દરેક પંક્તિમાં લગભગ ૧૪૦ થી ૧૫૦ જેટલા અક્ષરો આવેલા છે. પ્રત્યેક પંક્તિ ત્રણ વિભાગોમાં વહેંચાણેલી છે, અને દરેક વિભાગની વચ્ચે એક એક ઇંચ જેટલી ખાલી જગ્યા રાખવામાં આવી છે. એ ખાલી રાખેલી જગ્યામાં, આજના પુસ્તકનાં વધારા પાનાંઓ ભેગાં બાંધી લેવા માટે એક છિદ્ર પાડી તેમાં સંલગ્ન દોરી પરોવેલી છે. આ પુસ્તક સંવત્ ૧૪૫૮ માં સંભાતમાં લખાણેલું છે. આ સમય પછી લખાણેલું વીજું કોઈ તાડપત્ર જૈન મંડારોમાં મારા જોવામાં આવ્યું નથી. આ ઉપરથી હું એમ અનુમાન કરું છું કે, ગુજરાતમાં—અને સાધારણ રીતે પશ્ચિમ અને ઉત્તર હિંદુસ્થાનમાં પણ—તાડપત્ર ઉપર પુસ્તક લખવાના ઇતિહાસમાં આ પુસ્તક સૌથી અંતિમ સ્થાન ભોગવે છે. જૈનોનાં ઇતિહાસિક સાધનો ઉપરથી જણાય છે કે ઈસવીની ૧૪ મી શતાબ્દિના પ્રારંભમાં જ તાડપત્રો ઉપર ગ્રંથો લખવાનો વહીવટ કરી થવા માંડ્યો હતો અને તાડપત્રોનું સ્થાન કાગળો લેવા માંડ્યું હતું. તે વખતે દરમ્યાન પાટણ, સંભાત, જેસલમેર (રાજપૂતાના) આદિ—જૈન પુસ્તક માંડાગારો માટે પ્રસિદ્ધ થયેલા—જૂના શહેરોમાં તાડપત્ર ઉપર લખેલા જે વિશાળ પુસ્તકસંગ્રહો હતા તે વધારાની સાથે અને ઘણી જાડપથી કાગળો ઉપર ઉતારાઓ થવા લાગ્યા હતા. વર્તમાનમાં કાગળ ઉપર લખેલાં જૂનામાં જૂનાં જે પુસ્તકો ઉપલબ્ધ થાય છે, તે વધારાં તે જ વખતનાં લખેલાં છે. તેમ જ તાડપત્ર ઉપર અર્વાચીનમાં અર્વાચીન જે પુસ્તકો છે તે પણ તે જ વખતનાં છે. તે પછી લખેલાં તાડપત્રો મળતાં નથી. આ ઉપરથી એમ માની શકાય કે એ પ્રદેશોમાં કાગળનો પ્રવેશ તે જ વખતે થયેલો હોવો જોઈએ. પ્રકૃત તાડપત્રના લેખન કાળમાં તાડપત્ર ઉપર લખવાનો પ્રચાર વધુ જ વિરલ થઈ ગયેલો હોવો જોઈએ. અને લહિઆઓ તાડપત્ર ઉપર લખવાના અભ્યાસ અને શાહીની ચનાવટ વિગેરેની કઠાને મૂલી જવાની તૈયારીમાં હોવા જોઈએ. કારણ કે પ્રકૃત તાડપત્ર ઉપરનું લખાણ જૂનાં તાડપત્રો કરતાં ઘણા જ હલકાં પ્રકારનું દૃષ્ટિગોચર થાય છે. ૧૨ મા ૧૩ મા સૈકાનાં તાડપત્રોની લિપિ જેટલી સુંદર અને શાહી જેટલી ઉત્તમ હોય છે તેટલી આમાં દેખાતી નથી. આ તાડપત્રની શાહી ઘણી જ પીકી અને અનેક સ્થલેથી તો તે અત્યાર આગમચ ચરી પડી—મુંસાઈ ગઈ છે. કોઈ કોઈ પૃષ્ઠમાં તો પંક્તિઓની પંક્તિઓ તેવી રીતે અદ્વય થઈ ગઈ છે અને તેના લીધે લખાણ વાંચવું પણ વધુ કઠણ થઈ પડે છે. ત્યારે આના કરતાં ૨૦૦-૩૦૦ વર્ષ જૂનાં તાડપત્રોની શાહી જોઈએ છીએ તો આજે પણ તેવીની તેવી ચલકતી અને કાળી દેખાઈ આવે છે. જૂનાં તાડપત્રોની જેટલી લેખન-શુદ્ધિ પણ આ પુસ્તકમાં જલવાણી જણાતી નથી. આનું કારણ એ છે કે પ્રાચીનકાળમાં લહિઆઓ સાધારણ રીતે સંસ્કૃત—પ્રાકૃત ભાષાનું સામાન્ય જ્ઞાન ધરાવનારા થતા હતા. તેમ જ ઘણાક વિદ્વાનો તે વખતે જાતે જ પુસ્તકો લખતા હતા. તેથી તે વખતનાં પુસ્તકોમાં સાધારણ રીતે અશુદ્ધિઓ વધુ અલ્પ પ્રમાણમાં મળી આવે છે. પરંતુ પ્રકૃત તાડપત્રના લેખનસમયમાં, તાડપત્રો ઉપરથી કાગળો ઉપર ગ્રંથો ઉતારાવવાનું કામ ઘણા વિશાળ પ્રમાણમાં શરૂ થયેલું હોવાથી, તેટલા કામને પહોંચી વળે પડેલા, ભાષાજ્ઞાનસંપન્ન લહિઆઓના અભાવને લીધે, માત્ર અક્ષરાકૃતિ સમ-

જવા પુરતું જ્ઞાન ધરાવનારા અને મક્ષિકાસ્થાને મક્ષિકા ચિતરનારા લહિઆઓ પાસેથી એ કાર્ય કરાવવામાં આવતું હતું. તેથી જૂના ગ્રંથોની નકલો કરતાં એ ઘણાં લહિઆઓના હાથે ઘણી અશુદ્ધિઓ તે ગ્રંથોમાં દાખલ થઈ ગઈ હતી. આ જ કારણને લઈને કુમારપાલ પ્રતિવોધના પ્રકૃત આદર્શમાં પણ લેખન-અશુદ્ધિઓ ઘણા મોટા પ્રમાણમાં પ્રવિષ્ટ થઈ ગયેલી જોવાય છે. આ પુસ્તકની નકલ કરનાર કાયસ્થ પેતાનું ભાષાજ્ઞાન કેવું હશે તેનું અનુમાન, પુસ્તકના અંતમાં તેણે જે સંવત્ વિગેરેના ઉલ્લેખ વાળો પુષ્પિકાલેખ લખ્યો છે, તે ઉપરથી થઈ શકે તેમ છે.

ઉલ્લિખિત તાડપત્ર સિવાય એક વીજું પણ તાડપત્ર પ્રસ્તુત ગ્રંથનું મને મળ્યું છે, જે પાટણના સંઘ-ધીના પાડાના નામે ઓળખાતા પુસ્તકમંડારની માલિકીનું છે. એ તાડપત્ર, ઉક્ત તાડપત્ર કરતાં ઓછા જૂનું અને વિશેષ શુદ્ધરિતે લખાવેલું છે. પરંતુ એ ઘણું જ અપૂર્ણ—ઁકિત છે. એમાં ૫૧ થી તે ૩૦૫ નંબર સુધીનાં પાનાં છે. આ ગ્રંથના ચતુર્થ પ્રસ્તાવમાં દેશાવકાસિક વ્રતોપરિ જે પવનંજયની કથા આપેલી છે તેના મધ્યભાગથી જ એ તાડપત્ર ઁકિત થઈ ગયું છે. એની સાઈઝ ૨'૭" + ૨" લાંબી-પહોળી છે. પ્રત્યેક પૃષ્ઠમાં ૩ થી ૫ લાઈનો આવેલી છે, અને દરેક લાઈનમાં ૧૦૫ થી ૧૨૦ સુધી અક્ષરો લખેલા છે.

આવી રીતે પ્રસ્તુત પુસ્તકનો અઁકડ એવો એક જ ઉપર્યુક્ત આદર્શ મને મળવાથી (અને યાં સુધી હું જાણી શક્યો છું, બીજો સંપૂર્ણ પ્રાચીન આદર્શ અન્યત્ર ક્યાંયે છે પણ નહિ) અને તે પણ વિશેષ અશુદ્ધ હોવાથી, આ ગ્રંથના સંશોધનનું કામ મારા માટે ઘણું જ કઠણ થઈ પડ્યું હતું.

સોમપ્રભાચાર્ય

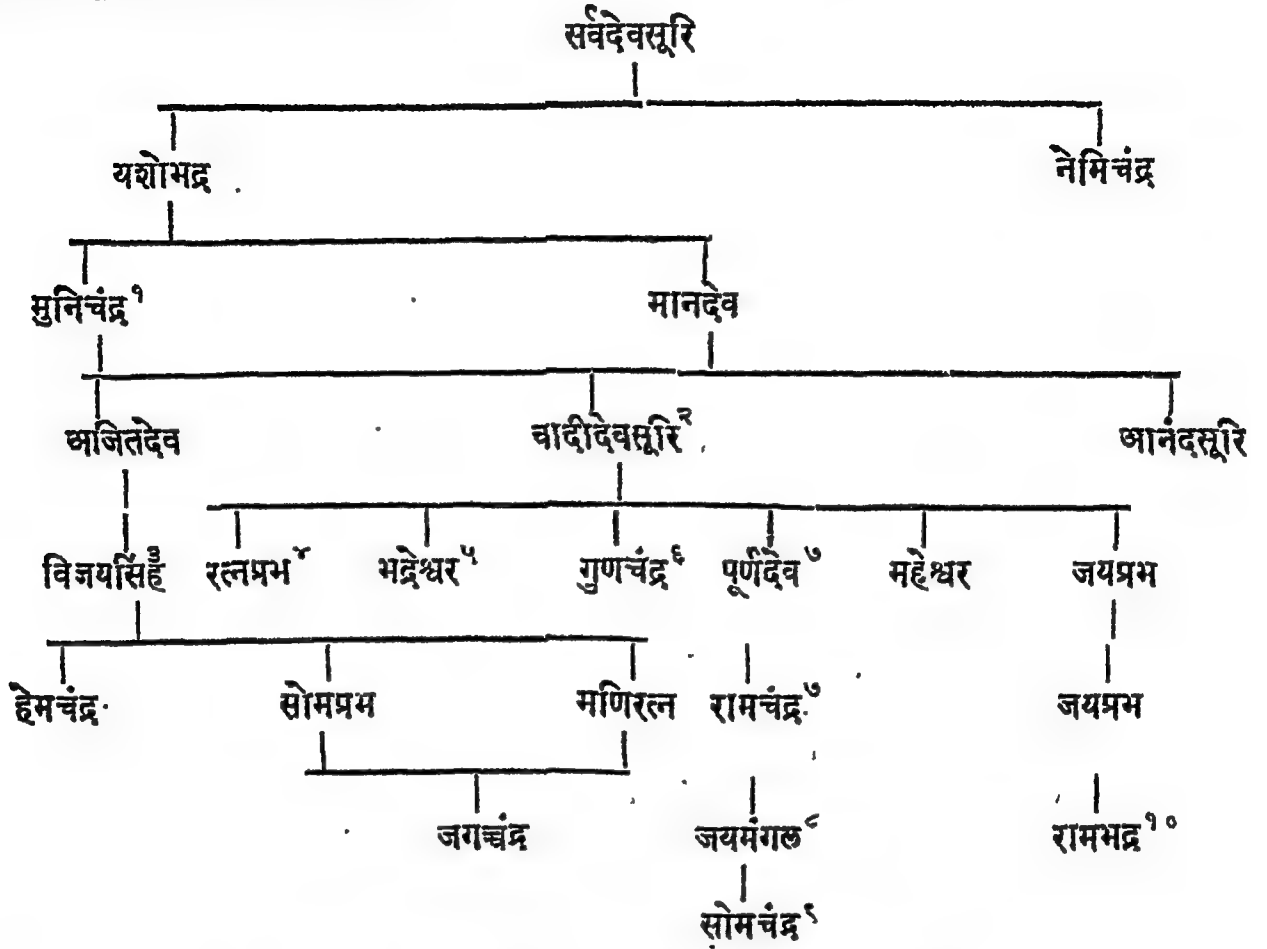
ગ્રંથકાર સોમપ્રભાચાર્ય એક સુપ્રસિદ્ધ અને સુજ્ઞાત જૈન વિદ્વાન્ છે. તેમણે પ્રસ્તુત ગ્રંથ વિક્રમ સંવત્ ૧૨૪૧ માં, પટલે કુમારપાલ રાજાના મૃત્યુ પછી માત્ર ૧૧ વર્ષે બનાવ્યો હતો. આ ઉપરથી તેઓ રાજા કુમારપાલ અને આચાર્ય હેમચંદ્રના સમકાલીન હતા એ સ્વતઃ સિદ્ધ છે. તેમણે આ ગ્રંથ, નેમિનાગના પુત્ર શ્રેષ્ઠી અભયકુમારના હરિશ્ચંદ્રાદિ પુત્ર અને શ્રીદેવી આદિ પુત્રિઓની પ્રીત્યર્થે, પ્રાગ્વાટજાતીય કવિચક્રવર્તી શ્રી-શ્રીપાલના પુત્ર કવિ સિદ્ધપાલની વસતિ (જૈન મંદિર યા જૈન ઉપાશ્રય) માં રહીને રચ્યો છે; તથા શુદ્ધ હેમચંદ્રાચાર્યના મહેન્દ્રમુનિ^૧, વર્ધમાન^૨ અને ગુણચંદ્ર^૩ નામે વિદ્વાન્ શિષ્યોએ તેને અથથી તે હિત સુધી સાંભળ્યો છે. અભયકુમાર શ્રેષ્ઠી, આ જ ગ્રંથમાં જણાવ્યા પ્રમાણે, કુમારપાલ રાજાએ અનાથ અને અસમર્થ જનોના ભરણ પોષણ માટે ઓળેલા સત્રાગાર આદિ ધર્મોદાય યાતાઓનો ઉપરી હતો. (જુઓ પૃષ્ઠ ૨૧૯-૨૦). કવિચક્રવર્તી શ્રી-શ્રીપાલ ગુજરાતનો એક સર્વશ્રેષ્ઠ કવિ અને સિદ્ધરાજ જયસિંહનો ઘણો માનીતો તેમ જ સ્વીકૃત ભ્રાતા હતો. તેનો પુત્ર સિદ્ધપાલ પણ ઉત્તમ કોટિનો કવિ હોઈ કુમારપાલ રાજાનો પ્રીતિપાત્ર અને શ્રદ્ધેય સુહૃદ્ હતો. આ કવિકુલના સંબંધમાં મેં અન્યત્ર સાવિસ્તર લખ્યું છે, (—જુઓ દ્રૌપદી સ્વયંવર નામે સિદ્ધપાલ પુત્ર કવિ વિજયપાલ રચિત નાટકની મારી પ્રસ્તાવના.) તેથી અહીં પુનઃરાવૃત્તિ કરતો નથી. શ્રીપાલ કવિ, સોમપ્રભાચાર્યના પૂર્વાચાર્ય દેવસૂરિનો ચરણોપાસક હતો તેથી એ કવિ-કુટુંબનો, તેમના શિષ્યસમુદાય ઉપર સવિશેષ અનુરાગ હોય તથા તે સાધુ-સમૂહનો પણ એ કુટુંબ ઉપર વિશેષ આદરભાવ હોય તે સ્વાભાવિક છે. સોમપ્રભાચાર્યના ગુરુઓ તથા અન્ય સાધુઓ અણહિલપુરમાં ઘણું કરીને એ કવિકુટુંબના મકાનોમાં જ નિવાસ કરતા હતા. સોમપ્રભાચાર્યે પોતાનો બીજો વૃહદ્ગ્રંથ નામે સુમતિનાથચરિત્ર પણ એ કુટુંબની વસતિમાં જ વસીને બનાવ્યો હતો.

૧ આ મહેન્દ્રમુનિએ હેમચંદ્રાચાર્યરચિત અનેકાર્થનામસંગ્રહ નામક કોષ ઉપર અનેકાર્થકૈરવાકરકૌસુદી નામે ટીકા લખી છે, —જુઓ, પીટર્સન રિપોર્ટ ૧, પૃ. ૫૧.

૨ વર્ધમાનગણિએ કુમારવિહારપ્રશસ્તિ બનાવી છે. —જુઓ, પીટર્સન રિપોર્ટ ૩, પૃ. ૩૧૬.

૩ ગુણચંદ્રગણિએ, પ્રવ્રન્ધશતકર્તૃ મહાકવિ રામચન્દ્રને નાલ્યદર્પણ નામક ગ્રન્થ લખવામાં સહાયતા કરી હતી.

કુમારપાલ પ્રતિબોધની પ્રશસ્તિ તથા બીજા ગ્રંથોક્ત ઉલ્લેખો ઉપરથી સોમપ્રભાચાર્યની ગુરુપરંપરા-
દિનો વંશવૃક્ષ નીચે પ્રમાણે થાય છે:—



૧ ઉપદેશપદ, અને કાન્તજયપતાકા, લલિતવિસ્તરા, યોગર્ષિદુ આદિ હરિભદ્રાચાર્યરચિત ગ્રંથો ઉપર ટીકા-ટિપ્પણ-
દિના પ્રસિદ્ધ લેખક.^૧

૨ સ્યાદ્વાદરત્નાકર નામક મહાનુ જૈનતર્કમન્યના પ્રणेता.

૩. ધર્મસાગરગણિય પોતાની પટ્ટાવલીમાં આ વિજયસિંહને, ચાલુચંદ્રરચિત વિવેકમઝ્જરીવૃત્તિના સંશોધક (' શ્રીવિ-
જયસિંહસૂરિ:—વિવેકમઝ્જરીશુદ્ધિકૃત્ । ') લખ્યા છે પરંતુ તે ખૂલ છે. તે વૃત્તિના સંશોધક આ વિજયસિંહ નથી, પરંતુ
નાગેન્દ્ર શત્રુજના વિજયસેનસૂરિ છે. જુઓ પીટર્સનનો ૩ જો રીપોર્ટ પૃ. ૧૦૩. આ વિજયસિંહનો એક શિલાલેખ આરાસણના
જૈનમંદિરમાંથી મળી આવ્યો છે, જે સંવત્ ૧૨૦૬ ની સાલનો છે. જુઓ મારું પ્રાચીન જૈનલેખસંગ્રહ નામનું પુસ્તક, લેખ
નંબર ૨૮૯.

૪. રત્નપ્રભે રત્નાકરાવતારિકા નામે સુદ્ધાત તર્કગ્રન્થ બનાવ્યો છે. ઉપદેશમાલાવૃત્તિ આદિ બીજા પળ એમના કેટલાક
પ્રસિદ્ધ ગ્રંથો ઉપલબ્ધ છે.

૫. ભદ્રેશ્વરે વાદી દેવસૂરિને સ્યાદ્વાદરત્નાકર ગ્રંથ રચવામાં મુખ્ય સહાયતા કરી હતી. તથા પોતાના ગુરુના અવસાન
પછી તેમની ગાદીના મુખ્ય આચાર્ય એ પોતેજ નીમાયા હતા.

૬. ગુણચંદ્રે હૈમવિઘ્નમનામે વ્યાકરણવિષયક એક ઊંઘુ ગ્રંથ બનાવ્યો છે.

૭. જાલોરના એક શિલાલેખમાં આ બન્ને ગુરુ-શિષ્યનો ઉલ્લેખ કરેલો છે.

૮. સુંધાટેકરી (મારવાડ) ઉપર આવેલી ચાલુગદેવની પ્રશસ્તિના કર્તા.

૯ વૃત્તરત્નાકરની વૃત્તિકરનાર.

૧૦ પ્રવુદ્ધરોહિણેય નાટકના રચનાર,

આ વંશવૃક્ષમાં આપેલી વ્યક્તિઓ જૈનસાહિત્ય અને જૈનઇતિહાસમાં સુપ્રસિદ્ધ છે. ૫ સાધુઓમાંના કેટલાક તો ઘણા મોટા ગ્રંથકારો છે અને તેમની ચનાવેલી અનેક કૃતિઓ આજે પણ જૈનસાહિત્યની શોભા વધારી રહી છે. આ ઉપરથી પ્રસ્તુત ગ્રંથકારનો સમુદાય કેટલો વધો વિદ્વાન, પ્રતિષ્ઠિત, અને સાહિત્યોપાસક હતો તેનો ધ્યાન આવી શકે છે. સોમપ્રમાચાર્યના એક ગુરુશ્રાતા નામે હેમચંદ્રે નામેયને-મિ નામનું દ્વિસંધાન કાવ્ય ચનાવ્યું છે જેનું સંશોધન હુદ કવિચક્રવર્તી શ્રીપાલે કર્યું હતું.^૧ સોમપ્રમાચાર્યની ગાદી ઉપર સુપ્રસિદ્ધ જગન્નંદ્રસૂરિ આવ્યા હતા જેઓ તપાગચ્છના નામે ઓળખાતા સુવિસ્તૃત સાધુસમુદાયના મૂલ્ય પુરુષ મનાય છે. પટ્ટાવલિઓ પ્રમાણે, સોમપ્રમાચાર્યનો મહાવીરની પદ્મ પરંપરામાં ૪૩ મો તંબર છે.

સોમપ્રમાચાર્યના વિદ્યમાન ગ્રંથો

કુમારપાલ પ્રતિવોધ સિવાય સોમપ્રમાચાર્યના વીજા ત્રણ ગ્રંથો ઉપલબ્ધ થાય છે. જેમાં એક તો સુમતિનાથચરિત્ર છે. ૫ ગ્રંથમાં જૈનધર્મના પાંચમા તિર્થંકર સુમતિનાથનું ચરિત્ર વર્ણવામાં આવ્યું છે. તે ચરિત્ર પણ કુમારપાલ પ્રતિવોધની માફક મુખ્ય કરીને પ્રાકૃત ભાષામાં જ રચેલું છે; અને તેમાં પણ જૈનધર્મના સિદ્ધાન્તોનો વોધ આપતી પુરાણકથાઓ કલ્પિત છે. તેની શ્લોકસંખ્યા લગભગ સાઠા નવ હજાર ઉપર છે. પાટણના જૈન મંડારોમાં ૫ ચરિત્રના હસ્તલેખો મારા જોવામાં આવ્યા છે^૨ ત્રીજો ગ્રંથ સૂક્તિમુક્તાવલી નામે પ્રસિદ્ધ ૧૦૦ પદ્યાવાળો એક પ્રકીર્ણ પ્રવંધ છે. ૫ પ્રવંધનું પ્રથમ પદ્ય 'સિન્દુરપ્રકર' એવા વાક્યથી શરૂ થતું

૧ આ કાવ્યનો અંતની પ્રશસ્તિના કેટલાક શ્લોકો નીચે પ્રમાણે છે:—

મક્ત: શ્રીમુનિચંદ્રસૂરિસુગ્રો: શ્રીમાનંદવસ્ય ચ શ્રીમાન્ સોઽજિતદેવસૂરિરભવત્ પદ્મકંદુગધામ્બુધિ: ।

સથ: સંસ્કૃતગવ્યપથલહરીપૂરેણ યસ્ય પ્રમાઽઽક્ષિપ્તા વાદિપરંપરા તૂળતુલાં ઘટે સ્મ દૂરીકતા ॥

શ્રીમાનમૂદ્ વિજયસૂરિમુખ્ય શિષ્યો યેન X X X સ્મરસ્ય શરાન્ શૃદ્ધીત્વા ।

ક્લૃપ્તં ચતુર્ધિરનર્થ શરયન્તમથે વિશ્વં તદેકવિશિખેન વશં ચ નિન્યે ॥

શ્રીહેમચન્દ્રસૂરિર્વમૂદ્ શિષ્યસ્તથાપરસ્તસ્ય । ભવહતયે તેન કૃતો દ્વિસંધાનપ્રવચ્નોઽયમ્ ॥

एकाहनिप्पन्नमहाप्रचन्धः श्रीसिद्धराजप्रतिपन्नवन्धुः । श्रीपालनामा कविचक्रवर्ती सुधीरिमं शोधितवान् प्रवचनम् ॥

૨ ૫ ચરિત્રની અંતની પ્રશસ્તિ પણ ઘણા અંશે કુમારપાલ-પ્રતિવોધના જેવી જ છે, અને તે નીચે પ્રમાણે છે:—

ચન્દ્રાર્કાં ગુરુવૃદ્ધનમસઃ કર્ણાવતંસૌ ક્ષિતેર્ધૃયો ધર્મરસસ્ય સર્વજગતસ્તત્ત્વાલોકે દશૌ ।

નિર્વાણાવસયસ્ય તોરણમહાસ્તમ્ભાવમૂતામુભાવેકઃ શ્રીમુનિચન્દ્રસૂરિરપરઃ શ્રીમાનદેવપ્રભુઃ ॥

શિષ્યન્નયોરજિતદેવ ઇતિ પ્રસિદ્ધઃ સૂરિઃ સમગ્રગુણરત્નનિષિર્વમૂદ્ ।

પ્રીતિ યદાદ્વિગ્રમલે મુનિશૃંગરાજિરાસ્વાદિતશ્રુતરસા તરસા વચન્ધ ॥

શ્રીદેવસૂરિમુખા યમ્બુરુન્યેઽપિ તત્ત્વાદપયોજહંસાઃ । બેપામવાધારચિત્તસ્થિતીનાં નાલીકૈમત્રીમુદમાતતાન ॥

વિશારદશિરોમણે રજિતદેવસૂરિપ્રભોર્વિનેયનિલકોઽમવદ્ વિજયાસિંહસૂરિગુંદઃ ।

જગત્રયવિજેતુર્મિર્ધમલશાલવમર્ષિતં વ્યમેદિ ન કદાચન સ્મરશૈર્વદીયં મનઃ ॥

ગુરોસ્તસ્ય પદામ્બોજપ્રસાદાન્મન્દધોરપિ શ્રીમાન્ સોમપ્રમાચાર્યશ્ચરિત્રં સુમતેર્વ્યધાત્ ॥

પ્રાગ્વાટાન્વયસાગરેન્દુરસમપ્રજ્ઞઃ કૃતજ્ઞઃ ક્ષમી વાગ્મી સૂક્તિસુધાનિધાનમજનિ શ્રીપાલનામા પુમાન્ ।

યં લોકોત્તરકાવ્યરન્જિતમાતિઃ સાહિત્યવિદ્યારતિઃ શ્રીસિદ્ધાધિપતિઃ કવ્યન્દ્ર ઇતિ ચ આતેતિ ચ વ્યાહરત્ ॥

સૂનુસ્તસ્ય કુમારપાલનૃપતિપ્રીતેઃ પદં ધોમતામુત્તંસઃ કવિચક્રમસ્તકમાણિઃ શ્રીસિદ્ધપાલોઽભવત્ ।

યં વ્યાલોક્ય પરોપકારકરુણાસૌજન્યસત્યક્ષમાદાક્ષિણ્યૈઃ કલિતં કલૌ કૃતયુગારમ્ભો જનો મન્યતે ॥

તસ્ય પૌપધશાલાયાં પુરેઽણહિલપાટકે । નિષ્પ્રત્યૂહમિદં પ્રોક્તં પરાર્થાન્તં (?) ॥

અનામોગાત્ કિઞ્ચિત્ કિમપિ મતિવૈકલ્યવશતઃ કિમપ્રૌત્સુક્યેન સ્મૃતિવિરહદોષેણ કિમપિ ।

મયોત્સૂત્રં શાસ્ત્રે યદિહ કિમપિ શ્રોક્તમશ્વિલં ક્ષમન્તાં ધોમન્તસ્તદસમદયાપૂર્ણહૃદયાઃ ॥

હોવાથી તે 'સિંદુરપ્રકર' ના નામે; તથા સોમપ્રભાચાર્ય રચિત હોઈ તેમાં એકંદર ૧૦૦ પદ્યોનો સંગ્રહ હોવાથી 'સોમશતક' ના નામે પણ ઘણીક વચ્ચે લખાય—ઓલખાય છે. એ પ્રબંધ જૈનસમાજમાં ઘણોજ પ્રસિદ્ધ છે અને અનેક સ્ત્રીપુરુષોના મુખે કંઠસ્થ હોય છે. એ પ્રબંધ ભર્તૃહરિના નીતિશતકની શૈલીમાં લખાણો છે; અને અહિંસા, સત્ય, અસ્તેય, શીલ, સૌજન્ય આદિ વિષયો ઉપર સંક્ષિપ્ત પરંતુ હૃદયંગમરીતે તેમાં વિવેચન કરેલું છે. એની રચના બહુજ સરલ, સરસ અને સુબોધ છે. એમાંનાં કેટલાક પદ્યો આ પ્રસ્તુત ગ્રંથમાં—કુમારપાલ પ્રતિબોધમાં પણ ગ્રથિત થઈને નજરે પડે છે.

ગ્રીજો ગ્રંથ 'શતાર્થ કાવ્ય' નામે છે. એ ગ્રંથ સોમપ્રભાચાર્યના સંસ્કૃત ભાષાજ્ઞાનવિષયક અનુસાર પાંડિત્યને પ્રકટ કરે છે. એ ગ્રંથ માત્ર એક વસંતાતિલકા હંદ રૂપે છે^૧, જેના જુદા જુદા સો અર્થો કરવામાં આવ્યા છે. આ કૃતિના લીધે વિદ્વાનો તરફથી તેમને શતાર્થિકનું ખાસ પાંડિત્યસૂચક ઉપનામ પ્રાપ્ત થયું હતું અને તેથી પાછલના ઘણાક ગ્રંથકારો તેમને એ ઉપનામ સાથે જ ઉલ્લેખે છે.^૨ એ એક વૃત્તાત્મક ગ્રંથના મિત્ર મિત્ર સો અર્થો તેમને જાતે જ ટીકા કરીને ચતાવ્યા છે. ટીકાના પ્રારંભમાં પાંચ શ્લોકો લખી સ્વવિવાક્ષિત સો એ અર્થોની અનુક્રમણિકા આપી છે. પ્રારંભમાં જૈનધર્મના ૨૪ તીર્થંકરોના અર્થો લખી; વચ્ચે બ્રહ્મા, નારદ, વિષ્ણુ આદિ વૈદિક દેવો વિગેરેના અર્થો પણ આલેખ્યા છે. અને છેવટે પોતાના સમકાલીન યવા, વાદી દેવસૂરિ અને હેમચંદ્રાચાર્ય જેવા જૈનધર્મના મહાન્ ધર્મગુરુઓના; જયસિંહ દેવ, કુમારપાલ, અજયદેવ અને મૂલરાજ જેવા ગુજરાતના કામિક ૪ ચૌલુક્ય રાજાઓના; કવિ સિદ્ધપાલ જેવા સર્વશ્રેષ્ઠ નાગરિકના; અને અજિતદેવ તથા વિજયસિંહ નામે પોતાના બંને ગુરુઓના અર્થો પણ અવતાર્યા છે. સર્વાંતે સ્વકીય અર્થ પણ વેસાર્યો છે અને સમાપ્તિમાં કોઈ શિષ્યના મુખેથી આત્મપ્રશંસાપર એવી પાંચ પદ્યોવાળી સંક્ષિપ્ત પ્રશસ્તિ પણ કહેવરાવી છે.

આ પ્રશસ્તિમાં જણાવ્યા પ્રમાણે સોમપ્રભ ગૃહસ્થાવસ્થામાં પ્રાગ્વાટ (પોરવાડ) જાતિના વૈદ્ય હતા. તેમના પિતાનું નામ સર્વદેવ, અને પિતામહનું નામ જિનદેવ હતું. જિનદેવ કોઈક રાજાનો મંત્રી હતો અને તે પોતાના સમયમાં બહુ પ્રતિષ્ઠિત પુરુષ હતો. સોમપ્રભે કુમારાવસ્થામાં જ જૈનદીક્ષા લઈ લીધી હતી, અને તીવ્રબુદ્ધિના પ્રભાવે સમસ્ત શાસ્ત્રોનો તલસ્પર્શી અભ્યાસ કરી આચાર્યપદવી પ્રાપ્ત કરી હતી. તેમની તર્કશાસ્ત્રમાં અદ્ભુત પટુતા હતી, કાવ્યવિષયમાં ઘણી ત્વરિતતા હતી અને વ્યાખ્યાન આપવામાં બહુ કુશલતા હતી.

કુમારપાલપ્રતિબોધ સાથે ઉક્તાનુસાર સોમપ્રભાચાર્યની વર્તમાનમાં ૪ કૃતિઓ ઉપલબ્ધ થાય છે. આ કૃતિઓમાં કાલાનુક્રમથી પ્રથમ કૃતિ તેમની સુમતિનાથ ચરિત્ર અને વીજી સૂક્તિમુક્તાવલી હોય તેમ જણાય છે. બૃહદ્વિષ્ણુનિકા નામે એક પ્રાચીન જૈનગ્રંથસૂચિમાં સુમતિનાથચરિત્રની રચના કુમારપાલના રાજ્યમાં થઈ હતી એવો ઉલ્લેખ કરેલો છે. શતાર્થવૃત્તની વૃત્તિના અંતે પણ તે ચરિત્રનું નામ આવેલું હોવાથી, તે વૃત્તિની પહેલાં એની રચના થઈ હતી એમ તો સ્વતઃસિદ્ધ થાય છે. શતાર્થવૃત્તની રચના ઈ. સ. ૧૧૭૭ થી ૧૧૭૯ ની વચ્ચે થઈ હોય, એમ માની શકાય. કારણકે એની અંદર અજયદેવની પછી ગુજરાતની ગાદિએ આવેલા મૂલરાજનો ઉલ્લેખ છે. આ મૂલરાજ ઇતિહાસમાં બાલ મૂલરાજના નામે પ્રસિદ્ધ છે. અને તેણે માત્ર બેજ વર્ષ—ઈ. સ. ૧૧૭૭ થી ૧૧૭૯ સુધી—રાજ્ય કર્યું હતું. કુમારપાલ પ્રતિબોધ તેમની છેલ્લી કૃતિ હોય તેમ લાગે છે.

૧ જુઓ—પૃષ્ઠ ૧૪૫, ૧૯૧, ૪૨૨ इत्यादि उपर आपेला संस्कृतपद्यो.

૨ મૂળ વૃત્ત આ પ્રમાણે છે:—

કલ્યાણસાર સવિતાનહરેક્ષમોહ । કાન્તારવારણસમાનજયાદેવ ।

ધર્માર્થકામદમહોદયવીરધીર । સોમપ્રભાવપરમાગમસિદ્ધસૂરે ॥

૩ 'સોમપ્રભો મુનિપતિવિદિતઃ શતાર્થી ।' મુનિસુંદરસૂરિકૃત ગુર્ણવલી ।

‘તતઃ શતાર્થિકઃ ક્ષ્યાતઃ શ્રીસોમપ્રભસૂરિરાટ્ ।’ —ગુણરત્નસૂરિકૃત ક્રિયારત્નસમુચય ।

આ કૃતિઓ સિવાય બીજી પળ તેમની કોઈ કૃતિ હોય તેમ અનુમાન થાય છે. કારણ કે શતાર્થ વૃત્તની વૃત્તિમાં કુમારપાલ રાજા સંબંધી અર્થ કરતાં “યદ્વોચામ” કરીને બે પદ્યો ટાંક્યાં છે જે ઉપલબ્ધ કૃતિઓમાં મળી આવતાં નથી.❧

કુમારપાલ પ્રતિબોધની રચના ગ્રંથકારે મુખ્યકરીને પ્રાકૃતભાષામાં કરી છે. છેવટના પ્રસ્તાવમાં કેટલીક કથાઓ સંસ્કૃતમાં આપી છે. તથા થોડોક ભાગ અપભ્રંશ ભાષામાં પણ ગુંથેલો છે. આ ઉપરથી લેખક પ્રાકૃત, સંસ્કૃત અને અપભ્રંશ એમ ત્રણે ભાષાઓના પાંડિત હતા તે સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે. ગ્રંથની રચના વહુ જ સરલ અને ભાષા તદ્દન સારી—આડંબર વિનાની છે. કર્તા જોકે, જેમ ઉપર ચતાવવામાં આવ્યું છે, એક ઉત્તમ કોટિના વિદ્વાન અને ગ્રંથકાર છે. પરંતુ તેમની વિદ્વત્તાની કોઈ વિશિષ્ટતા આપણને આ ગ્રંથમાં મળી આવતી નથી.

કુમારપાલ પ્રવંધના કર્તા જિનમંડનગણિય પોતાના પ્રવંધમાં અનેક સ્થલે, આ ગ્રંથમાંના પૈતિહાસિક ભાગનાં અવતરણો ટાંક્યાં છે. અને જયાર્સિંહ સૂરિય પોતાના સંસ્કૃત કુમારપાલચરિત્રમાં આ ગ્રંથની રચના શૈલીનું આવાદ અનુકરણ કર્યું છે. તે ઉપરથી જણાઈ આવે છે કે પાછળના ગ્રંથકારો પ્રસ્તુત ગ્રંથની સારી પેઢે અવગત હોવા જાઈએ.

કુમારપાલપ્રતિબોધની ઐતિહાસિક ઉપયોગિતા

આ ગ્રંથનું મહત્ત્વ પરિમાણ અને રચના-સમય તરફ દૃષ્ટિ કરતાં, ઇતિહાસ રસિક જિજ્ઞાસુઓને, આ ગ્રંથમાંથી કુમારપાલ અને હેમચંદ્રાચાર્યના જીવનવૃત્તાન્ત સંબંધી અજ્ઞાત અને અન્યત્ર અનુપલબ્ધ પૃષ્ઠી નવી નવી આવતો જાણવાની વિશેષ જિજ્ઞાસા રહે, એ સ્વાભાવિક છે. અને હું પણ પ્રથમ પૃષ્ઠી જ લાલસાથી આ ગ્રંથના સંપાદન-ભારને વહન કરવા સ્નાન્દ તત્પર થયો હતો. પરંતુ ગ્રંથનું સાચું અવલોકન કર્યા પછી મારે ઉદાસ મને જણાવવું પડે છે કે તેવી કોઈ નવીન વાચત, આ આટલા મોટા ગ્રંથમાંથી મળી આવી નથી, એટલું જ નહીં પરંતુ પ્રભાવકચરિત્રાંતર્ગત હેમચંદ્રપ્રવંધ, પ્રવંધચિન્તામણિગત કુમારપાલપ્રવંધાદિ જેવા, પ્રસ્તુત ગ્રંથ કરતાં સંક્ષિપ્ત અને કાલકૃત અર્વાચીન ગ્રંથોમાં જેટલી હકીકત, ઉક્ત થને વ્યક્તિઓના સંવંધમાં મળી આવે છે; તે કરતાં પણ ઘણી જ અલ્પ હકીકત આ ગ્રંથમાં આલેખેલી છે. આથી પૈતિહાસિક દૃષ્ટિએ તો આપણને આ ગ્રંથની કોઈ પણ પ્રકારની વિશેષ ઉપયોગિતા જણાતી નથી, એમ જો કહીએ તો તે અચુક નથી. અલગત પ્રાકૃત ભાષાના સાહિત્ય-પ્રકાશનની અપેક્ષા આની ઉપયોગિતા અવશ્ય સ્વીકારવા લાયક છે. કારણ કે એક તો પ્રાકૃતસાહિત્ય અભ્યાસસુધીમાં ઘણા જ અલ્પ પ્રમાણમાં પ્રકાશિત થયું છે, અને બીજું હવે સુંઘઈ યુનિવર્સિટીએ પોતાના પઠનક્રમમાં પાલીભાષાની માફક પ્રાકૃતભાષાને પણ ખાસ સ્થાન આપેલું હોવાથી એ ભાષાના સાહિત્યના પ્રકટીકરણની ઘણી જ આવશ્યકતા પ્રતીત થઈ રહી છે. તેવા પ્રસંગે પ્રાકૃત ભાષાના આ એક મહાન ગ્રંથનું પ્રકાશન એ ભાષાના અભ્યાસિઓને અવશ્ય આવકાર દાયક થઈ પડશે એમાં સંશય નથી.

* એ બે પદ્યો નીચે પ્રમાણે છે:—

ચૈલુક્યેન્દ્રેણ ચૈત્યે કુચ્ચલશનિકૈર્વન્ધુરાઃ સિન્ધુરહ્મીસ્કન્ધારુઢા વિધાતું જિનજનનમદે સૂતિકર્મપ્રપન્ચમ્ ।

પટ્પન્નાશત્સમીરપ્રમુખાનિજાનિજાચારંચાતુર્યધર્મસ્ફુર્જન્માણિક્યહેમાભરણકવાચિતાશ્રાક્રેરે દિક્કુમાર્યઃ ॥

દ્વાત્રિંશત્ત્રિંદશાધિપા નૃપગૃહાન્ ચૈત્યે દ્વિપાધ્યાસિતાઃ કલ્યાણાભરણાભિરામવપુષઃ કલ્યાણકાયુત્સવે ।

આત્રં કર્તુમમર્ત્યશૈલશિરાસે સ્વર્ગાદિવાખ્યાયયુસ્તન્મયે ચ કુમારપાલનૃપતિર્ભેજઽચ્યુતેન્દ્રધ્રિયમ્ ॥

૧ જુઓ મુનિ શ્રીચતુરવિજયજી સંપાદિત કુમારપાલપ્રવંધ—પૃ. ૧૦, ૧૭, ૫૮, ૮૦, ૯૦, ૯૪, ૯૫, ૯૭, ૧૦૬,

ઉક્તરીતે આ ગ્રંથમાં ऐतिहासिक वृत्तान्त विशेष ન મલવાથી અલગત આપણને અસંતોષ થાય એ સ્વાભાવિક છે, પરંતુ તે વિષયમાં ગ્રંથકાર કોઈ પણ પ્રકારના ઉપાલંભને પાત્ર નથી. કારણ કે ગ્રંથના પ્રારંભમાં જ તે પોતે હેમચંદ્ર અને કુમારપાલની સમગ્ર જીવન-વાર્તા લખવાના ઉદ્દેશ્યનો સ્પષ્ટ અસ્વીકાર કરે છે. આ ગ્રંથ લખવામાં લેખકનો ઉદ્દેશ્ય, કુમારપાલાદિનો ઇતિહાસ લખવાનો નથી. પરંતુ તે વ્યક્તિઓને લક્ષીને ધર્મોપદેશ આપતો એક કથા-ગ્રંથ ગુંથવાનો છે. તેઓ લખે છે કે—“યद्यपि कुमारपाल અને હેમચંદ્રાचार्यનું જીવન ચરિત્ર બીજી રીતિપણ ઘણું મનોહર છે. તો પણ હું આ ગ્રંથમાં જૈન ધર્મના પ્રતિબોધ સંબંધે જ કાંઈક કહેવા ઇચ્છું છું. શું અનેક પ્રકારની સ્વાદ વસ્તુઓથી ભરપૂર રસવતીમાંથી પોતાની ઇચ્છાનું સાર માત્ર કોઈ એક વસ્તુનું જ ભક્ષણ કરનાર પુરુષ કોઈની નિન્દાને પાત્ર થઈ શકે છે ? ”† અસ્તુ.

કુમારપાલ પ્રતિબોધનો ऐतिहासिक सार

આ સંપૂર્ણ ગ્રંથમાં જેટલો ભાગ ઇતિહાસ સાથે સંબંધ ધરાવે છે તે વાચકોના સૌકર્યાર્થ “કુમારપાલ પ્રતિબોધ-સંક્ષેપ” યથા શિરોલેખ નીચે પરિશિષ્ટ રૂપે જુદો આપ્યો છે. એ પરિશિષ્ટાત્મક ગ્રંથભાગ યાંથી જવાથી આજના ગ્રંથનો સંકલિત સાર સ્પષ્ટરીતે સમજાઈ જશે.

સંક્ષિપ્ત ऐतिहासिकसार આ પ્રમાણે છે:—

અળહિલપુર પાટણમાં, પ્રથમ ચૌલુક્યકુલમૃગાંક એવો મૂલ નામે રાજા થયો. તેના પછી ચામુંડરાજ અને તેના પછી ‘જગજ્ઞપણ’ એવું ઉપનામ પ્રાપ્ત કરનાર વલ્લભરાજ થયો. તેના પછી અનુક્રમે ટુર્લભરાજ, ભીમરાજ, કર્ણદેવ અને જયસિંહદેવ રાજા થયો. પૂર્વે થઈ ગયેલા ભીમદેવનો ક્ષેમરાજ કરીને એક પુત્ર હતો, તેનો પુત્ર દેવપ્રસાદ, તેનો પુત્ર ત્રિભુવનપાલ અને તેનો પુત્ર કુમારપાલ થયો. એ કુમારપાલ બહુ શૂર, વીર, ધીર, ત્યાગી, દક્ષ અને પરોપકારાદિ ગુણવાળો હતો. તેથી જયસિંહદેવનું મૃત્યુ થયા પછી પ્રધાનપુરુષોએ પરસ્પર વિચાર કરીને તેની ગાદી ઉપર કુમારપાલને બેસાડ્યો. તેણે ચારે દિશાઓમાં ચતુરંગ સૈન્ય સાથે દિગ્વિજય કરી પ્રજાને સંતોષકારક થાય તેવી રીતે રાજ્યનું પાલન કરવા માંડ્યું.

એક દિવસે તેણે કેટલાક વિદ્વાન્ અને વૃદ્ધ બ્રાહ્મણોને પોતાની પાસે બોલાવીને કહ્યું કે—‘જેના આચરણથી મનુષ્ય જન્મનું સાર્થક થાય તેવો સત્ય ધર્મ માર્ગ બતાવો.’ બ્રાહ્મણોએ વેદાદિશાસ્ત્ર વિહિત યજ્ઞયાગ સ્વરૂપ ધર્મ બતાવ્યો. પરંતુ તે ધર્મમાં પશુ-પ્રાણી આદિનો વધ વિહિત હોવાથી તેવો હિંસામય ધર્મ રાજાને રુચ્યો નહીં. તે મનમાં વિચાર કરવા લાગ્યો કે—‘જો પ્રાણીઓનો વધ કરવાથી પણ મનુષ્યને ધર્મ પ્રાપ્તિ થતી હોય તો પછી અધર્મ કયું કર્તવ્ય કરવાથી થાય છે ? શું બ્રાહ્મણો ધર્મનું સત્ય સ્વરૂપ જાણતા નથી ? અથવા તો જાણતા છતાં પણ મારી વિપ્રતારણા કરે છે ?’ આવી રીતે આ સંબંધમાં તે વિશેષ ચિંતન કરવા લાગ્યો અને તેના યોગે રાત્રિના સમયે તે નિદ્રા પણ પૂરી પ્રાપ્ત કરી શકતો નહીં. એક સમયે બાહડ નામના અમાત્યે આવીને રાજાને નમન કર્યું અને કહ્યું કે—‘રાજન્ ! તમને જો ધર્માધર્મના સ્વરૂપને જાણવાની જિજ્ઞાસા હોય તો હું કહું તે સાંભળો.’ એમ કહી બાહડ મંત્રીએ જૈનાચાર્ય હેમચંદ્ર સૂરિનો સંક્ષિપ્ત પરિચય આપ્યો.

મંત્રીએ જણાવ્યું કે—પૂર્વે, પૂર્ણતલ્લનામના ગચ્છમાં શ્રીદત્તસૂરિ નામે એક આચાર્ય થઈ ગયા. તેઓ પરિશ્રમણ કરતા એક વચ્ચે વાગડદેશના ‘ચણપુર’ નામના ગામમાં ગયા. ત્યાં તે વચ્ચે યશોભદ્ર કરીને એક રાજા રાજ્ય કરતો હતો. તે શ્રીદત્તસૂરિપાસે આવી હમેશાં ધર્મબોધ સાંભળવા લાગ્યો. દત્તસૂરિ ત્યાં કેટલોક સમય રહી અન્યત્ર ચાલ્યા ગયા. પાછળથી તે રાજાને સંસાર ઉપર વિરક્તિ થઈ આવી અને તેથી તે બધો રાજ્યમાર છોડી દત્તસૂરિપાસે દીક્ષા લેવા નિકળી પડ્યો. સૂરિ તે સમયે

† જહ વિ ચરિયં હમાણં મણોહરં અતિથિ બહુયમંત્રં પિ । તહિવ જિણધમ્મ-પઢિવાહે-વંધુરં કિં પિ જેપેમિ ॥

વહુ ભવસ-જુપાદ વિ રસવર્ણ મજ્ઞાઓ કિંચિ ભુંજંતો । નિય-ઇચ્છા-અણુરૂવં પુરિસો કિં હોઈ વચણિજ્જો ॥

‘હિંદુઆણાપુર’ માં રહેતા હતા તેથી રાજા ત્યાં ગયો. તેની પાસે એક વહુમૂલ્ય મુક્તાહાર હતો. તેને વેચી તેના દ્રવ્યથી ત્યાં એક ‘ચંડવીસજિનાલય’ નામે મોટું જૈનમંદિર વંધાવ્યું^૧ અને પછી સાધુ-પણું લઈ દત્તસૂરિનો શિષ્ય થયો. સાધુવ્રત લઈને તેણે અનેક પ્રકારનાં તપશ્ચરણો કર્યા અને ઝંડો શાસ્ત્રાભ્યાસ કરી યશોભદ્રસૂરિ નામે આચાર્યપદ પ્રાપ્ત કર્યું. આચાર્ય થયા પછી તેમણે લોકોને ધર્મોપદેશ આપવા જુદા જુદા સ્થલોમાં પરિભ્રમણ કર્યું. જ્યારે વૃદ્ધાવસ્થાના યોગે શરીર વહુ દિશ્વિલ અને શ્રીણપ્રાય થયું ત્યારે ઉજ્જયંત (ગિરનાર) તીર્થે ઉપર જઈ તેમણે અનશનવ્રત અંગીકાર કર્યું અને સંમાધિપૂર્વક સ્વર્ગસ્થ થયા. તેમના શિષ્ય પ્રવુમ્નસૂરિ કરીને થયા જેમણે ‘ઢાળચપગરણ (સ્થાન-કંપ્રકરણ)’ નામે ગ્રંથ વનાવ્યો. તેમના શિષ્ય ગુણસેનસૂરિ અને તેમના શિષ્ય દેવચંદ્રસૂરિ થયા. દેવ-ચંદ્રસૂરિએ પ્રવુમ્નસૂરિરચિત ‘ઢાળચપગરણ’ ઉપર ટીકા વનાવી છે. તથા ‘શાંન્તિજિનચરિત્ર’ લખ્યું છે.

એ દેવચંદ્રસૂરિ ફરતા ફરતા એક વચ્ચે ધંધુકા નામે ગામમાં ગયા. ત્યાં ચચ્ચ અને ચાહિણી નામે મોટું જાતીય વ્રણિદંપતીનો ચંગદેવ નામે એક પ્રતિભાવાનું બાલક તેમની પાસે આવવા લાગ્યો અને નિરંતર તેમનો ધર્મવોધ સાંભળવા લાગ્યો. તેમના ઉપદેશથી પ્રવુજ્ઞ થઈ બાલક ચંગદેવ તેમનો શિષ્ય થવા તૈયાર થયો, અને તેમની સાથેજ તે રહેવા-ફરવા લાગ્યો. ફરતા ફરતા દેવચંદ્રસૂરિ સંભાતમાં આવ્યા, અને ત્યાં, તે બાલકના મામા નામે નેમિ દ્વારા ચચ્ચ અને ચાહિણીને સમજાવી-મુક્તાવી, તેને દીક્ષા આપી અને ચંગદેવના વદલે સોમચંદ્ર નામ સ્થાપ્યું. અલૌકિક બુદ્ધિશાળી બાલક સાધુ સોમચંદ્ર થોડાજ સમયમાં સકલ શાસ્ત્રોનો અભ્યાસ કરી સમર્થ વિદ્વાન થયો અને ગુરુપ તેની પૂર્ણ યોગ્યતા જોઈ હેમચંદ્ર એવા નવીન નામની સાથે તેને આચાર્યપદ પ્રદાન કર્યું. હેમચંદ્રાચાર્યની વિદ્વત્તાથી મુગ્ધ થઈ સિદ્ધ-રાજ જયસિંહ દેવ તેમના ઉપર વહુ ભક્તિભાવ ધરાવતો હતો, અને દરેક શાસ્ત્રીય વાંચતના તેમની પાસે ચુલાસા મેળવી સંતુષ્ટ થતો હતો. તેમના ઉપદેશથી સિદ્ધરાજની જૈનધર્મ ઉપર પ્રીતિ થઈ હતી, અને તેના ઉપલક્ષ્યમાં તેણે ‘રાયવિહાર’ નામે એક જૈનમંદિર પાટણમાં, અને ‘સિદ્ધવિહાર’ નામે એક મંદિર સિદ્ધપુરમાં વંધાવ્યું હતું. સિદ્ધરાજના કથનથી હેમચંદ્રાચાર્યે ‘સિદ્ધહેમચાકરણ’ નામે સર્વાંગપૂર્ણ શબ્દશાસ્ત્ર વનાવ્યું હતું. હેમચંદ્રાચાર્યનો અમૃતોપમ ઉપદેશ સાંભળ્યા વિના સિદ્ધરાજને જરા પણ વેન પડતું ન હતું.

આવી રીતે હેમચંદ્રસૂરિનો પરિચય આપી અમાત્ય વાહડે કુમારપાલ રાજાને કહ્યું કે-‘મહારાજ ! તમને પણ જો ધર્મના યથાર્થ સ્વરૂપને જાણવાની ઇચ્છા હોય તો ભક્તિપૂર્વક એ આચાર્યની પાસે જઈ, એ સંવંધમાં પૃચ્છા કરો.’ મંત્રીનું આ કથન સાંભળી રાજા હમેશાં હેમચંદ્રાચાર્ય પાસે જઈ ધર્મવોધ સાંભળવા લાગ્યો.

આચાર્યજીએ પ્રથમ તો વિવિધ દૃષ્ટાંતો અને આસ્થાનો દ્વારા રાજાને યથાવસર પ્રાણિર્હિસા, શૂતરમ-ળ, માંસમક્ષણ, મચપાન, વેચ્યાગમન અને ધનાપહરણ इत्यादि દુરાચરણોથી મનુષ્ય અંત મનુષ્યસમાજની કેવી અધોગતિ થાય છે, તે ચારંવાર સમજાવી, તેની પાસેથી, આજના રાજ્યમાં તેવાં દુરાચરણોનો, રાજાશાના રૂપમાં સર્વથા નિષેધ કરાવ્યો. તદનંતર, તેમણે કુમારપાલને જૈનધર્મપ્રતિપાદિત દેવ, ગુરુ-અને ધર્મ તત્ત્વનો વિશિષ્ટ વોધ આપવા માંડ્યો. સદ્દેવ, સદ્ગુરુ, અને સદ્ધર્મની ઉપાસનાથી આત્માની કેવી પ્રગતિ થાય છે અને અસદ્દેવ, ગુરુ, અને ધર્મની ઉપાસનાથી કેવી અવગતિ થાય છે, તેની, વિવિધ કથાનકો દ્વારા સ્પષ્ટ સમજણ આપવા માંડી. સૂરિના એ વોધથી કુમારપાલની જૈનધર્મ તરફ પ્રીતિ વધતી ગઈ અને ક્રમે ક્રમે તે એ ધર્મ ઉપર અધિકાધિક અનુરક્ત થતો ગયો. જૈનધર્મ ઉપરના પોતાના અનુરાગના

૧ પ્રંધકાર સોમપ્રમાચાર્ય આ ઠેકાણે જણાવે છે કે-તે ‘ચંડવીસજિનાલય’ મંદિર આજે પણ ત્યાં (હિંદુઆણા પુરમાં) વિદ્યમાન છે.

ઉપલક્ષ્યમાં પ્રથમ તો તેણે ઢેકાણે ઢેકાણે જૈન મંદિરો બંધાવવા માંડ્યાં. સૌથી પ્રથમ તેણે પાટણમાં, શ્રીમા-લવંશીય મંત્રી ઉદયનના પુત્ર મંત્રી વાહુડ અને વાયડવંશીય ગરીસેઠના પુત્રો નામે સર્વદેવ અને સાંબસે-ઠની દેખરેખ નીચે 'કુમારવિહાર' નામે ચતુર્ધિશતિ જિનાલય યુક્ત મહાન અને ભવ્ય જૈનમંદિર બંધાવ્યું. એ વિહારના મુખ્ય મંદિરમાં, સ્ફટિકાનિર્મિત પાર્શ્વનાથ તીર્થંકરની મનોહર મૂર્તિ પ્રતિષ્ઠિત કરી; તેની આજુબાજુના બીજા ૨૪ જિનાલયોમાં સુવર્ણ, રજત અને પિત્તલ આદિ ધાતુઓની વનેલી જુદા જુદા તીર્થંકરોની પ્રતિમાઓ સ્થાપન કરવામાં આવી. તેના પછી કુમારપાલે 'ત્રિભુવનવિહાર' નામે અત્યુચ્ચ અને અતિભવ્ય મંદિર બંધાવ્યું. એ મંદિર ૭૨ જિનાલયોથી પરિવેષિત હતું. એનો વિશાલ આમલસાર અને તે ઉપરના કલશો સુવર્ણમય બનાવવામાં આવ્યા હતા. મૂળ મંદિરમાં નીલરત્નાનિર્મિત મહત્પ્રમાણ એવી નેમિનાથ તીર્થંકરની પ્રતિમા, અને આસપાસના ૭૨ જિનાલયોમાં, ભૂત, ભવિષ્ય અને વર્તમાનકાલના એમ ૭૨ તીર્થંકરોની પિત્તલમય પ્રતિમાઓ પ્રતિષ્ઠિત કરવામાં આવી. એ સિવાય, ૨૪ તીર્થંકરના, ૨૪ જુદાં જુદાં મંદિરો, તેમજ 'ત્રિવિહાર' પ્રમુખ બીજા પળ ઘણા વિહારો તેણે એકલા પાટણ શહેરમાં જ કરાવ્યા હતા. પાટણ સિવાય બીજાં નગરો અને ગામોમાં તેણે જે મંદિરો બંધાવ્યાં છે તેની તો સંખ્યા પણ કોઈ જાણતો નથી. એ મંદિરોમાં, જસદેવના પુત્ર દંડાધિપ અભયની દેખરેખ નીચે તારંગાપર્વત ઉપર બંધાવેલું અજિતનાથનું મહાન મંદિર ઘાસ ઉછેલ કરવા યોગ્ય છે.

આવી રીતે માત્ર જિનમંદિરો બંધાવીને જ કુમારપાલ પોતાની જૈનધર્મ પ્રત્યેની શ્રદ્ધા બતાવી અટકી ગયો ન હતો; પરંતુ એક પરમ શ્રદ્ધાલુ શ્રાવકની માફક તે હમેશાં જિનમંદિરમાં જઈ જિનમૂર્તિની ભાવ-પૂર્વક પૂજા પણ કરતો હતો અને જૈનધર્મનો મહિમા પ્રકટ કરવા માટે અગ્રાહિનકા મહોત્સવ વિગેરે જૈન ઉત્સવો પણ ઘણા ઠાઠથી ઉજવતો હતો. એ મહોત્સવો પ્રતિવર્ષ, ચૈત્ર અને આશ્વિન માસના શુક્લ પક્ષના છેલ્લા આઠ દિવસોમાં, પાટણના મુખ્ય અને પ્રસિદ્ધ મંદિર નામે 'કુમારવિહાર' માં કરવામાં આવતા હતા. મહોત્સવની સમાપ્તિના દિવસે-પટલે ચૈત્ર અને આશ્વિન માસની પૂર્ણિમાના દિવસે-સાંજના બંચતે, રથયાત્રાનો વરઘોડો નિકળતો. હાથિયે જોડેલા રથની અંદર પાર્શ્વનાથની મૂર્તિ સ્થાપવામાં આવતી. રથ પ્રથમ 'કુમારવિહાર' માંથી નિકળતો અને અનેક સામંત, મંત્રી, વ્યાપારી આદિના સમૂહથી વિંટલાપલો તે રાજમંદિરમાં જતો. ત્યાં રાજા જાતે વચ્ચ અને આભૂષણોથી રથસ્થ પ્રતિમાની પૂજા કરતો. અન્ય જનો તે વચ્ચતે વિવિધભાવવ્યંજક અને સ્તવનાસૂચક નૃત્ય અને ગાનાદિ કરતા. તે રાત્રિય રથને ત્યાં (રાજમંદિરમાં) જ રાજાવામાં આવતો અને બીજે દિવસે, સવારના વચ્ચતે, સિંહદ્વાર થકાર, તેના માટે ઘાસ ઉમા કરેલા મંડપમાં લઈ જવામાં આવતો. રાજા પણ ત્યાં સાથે જતો, અને સફળ જનસમૂહની સમક્ષ, રથસ્થ જિનપ્રતિમાની સૌથી પ્રથમ સ્વયમેવ આરતી ઉતારતો. પૂજા વિગેરે સઘળી ક્રિયા થઈ રહ્યા વાદ રથ પાછો નગરમાં આવવા નિકળતો. નગરના બધા રાજમાર્ગોમાં પરિભ્રમણ કરતો કરતો અને ઢેકાણે ઢેકાણે વાંધેલા મંડપો નીચે ઉમો રહેતો રહેતો, ઘણા આડંબરપૂર્વક રથ પાછો પોતાના સ્થાનકે પહોંચતો. આવી રીતે કુમારપાલ જાતે જૈનધર્મનો મહિમા કરતો અને પોતાના તાબામાંના બીજા માંડલિક રાજાઓ પાસે પણ તેવી રીતે કરાવતો. તેના હુકમથી બધા માંડલિક રાજાઓ પોતપોતાના નગરોમાં કુમારવિહારો બંધાવ્યા હતા, અને તેમની અંદર આવા મહોત્સવો પણ હમેશાં કરતા-કરાવતા હતા.

એક દિવસે કુમારવિહારમાં વેસીને કુમારપાલ હેમચંદ્રાચાર્ય પાસે ધર્મોપદેશ સાંભળતો હતો તે વચ્ચતે કેટલાક વિદેશી ધનાઢ્ય જૈન યાત્રિઓ આવીને આચાર્યને અને રાજાને પ્રણામ કર્યાં. તે યાત્રિઓ સૌરાષ્ટ્ર (કાઠિયાવાડ) દેશમાં આવેલાં જૈન તીર્થોની યાત્રા કરવા નિકળ્યા હતા; અને રસ્તામાં પાટણ શહેર આવ્યાથી, ત્યાંના મંદિરોની યાત્રા કરવા તથા આચાર્ય હેમચંદ્ર અને રાજા કુમારપાલ જેવા

जैनधर्मना महान् पुरुषोनां दर्शन करवा तेथो त्यां रोकाया हता. ते यात्रिओने जोईने कुमारपालना मनमां पण तीर्थयात्रा करवानी इच्छा थई, अने हेमचंद्राचार्यने पृछी यात्रानी तैयारी करवा मांडी. ज्योतिपिण बतावेला शुभ मुहूर्तमां, हेमचंद्रसूरिना प्रमुखपणानीचे तेणे पोताना चतुरंग सैन्य अने चतुर्विध संघ-साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप जैन जनसमूह-साथे सौराष्ट्र देश तरफ प्रयाण कर्तुं. मार्गमां आवतां ग्राम अने नगरोनां जिनमंदिरोनी पूजा-उपासना करता कुमारपालना ए महान् संघे रैवन (गिरनार) पर्वतनी नीचे आवेला गिरिनगर (जुनागढ) नी पासे जई पडाव नांख्यो.

गिरनार पर्वतनो चढाव बहु विपम होवाथी (ते वखते उपर चढवा माटे पगथिआं बांधलां न होतां) राजा उपर चढी नहीं शक्यो, तेथी प्रधान पुरुषोना हाथे पूजा आदिनी सामग्री मोकली दई पोतानी अशक्तता माटे खेद करतो ते त्यां नीचेज बेसी रह्यो. बाकी बीजा बधा यात्रिओ पर्वत उपर गयां अने जिनपूजा आदि तीर्थकृत्य करी यथावसरे पाछा नीचे आव्या. त्याथी ए संघ शशुंजय तीर्थनी यात्रा करवा गयो. त्यां बधा यात्रिओनी साथे राजा पण पर्वत उपर चढथो अने तीर्थनायक ऋषभदेवनी भक्तिपूर्वक पूजा-सेवा करी आनंदित थयो. शशुंजयना ए पवित्र जिनमंदिरनो जीर्णोद्धार कुमारपालनी आज्ञाथी बाहुड मंत्रिण थोडा ज समय पईलां कराव्यो हतो, तेथी ते मंदिर जोई राजा बहु खुशी थयो. आची रीते गिरनार अने शशुंजय नामना सौराष्ट्रना वने प्रसिद्ध जैनतीर्थोनी ठाठ साथे यात्रा करी राजा पाछो पोतानी राजधानीमां आव्यो.

गिरनार पर्वतना चढावनी विपमताना कारणे राजा ते उपर जे चढी नहीं शक्यो हतो अने तेना लींथे तीर्थपति नेमिनाथनी जे पूजा-अर्चा करी नहीं शक्यो हतो, तेथी तेने बहु खेद थयां करतो हतो. एक दिवसे पोतानी राजसभामां प्रसंगोपात वात निकळतां राजाए पूछ्युं के गिरनार उपर लोकोने चढवा माटे सुगम एवो रस्तो बंधावी आपे एवो कोई पुरुष छे? ते वखते कविचक्रवर्ती श्री श्रीपालना पुत्र कवि सिद्धपाले ते कार्य माटे राणिगना पुत्र आपन्नं नाम सूचव्युं. राजाए कविनी सूचनानुसार आपन्ने सौराष्ट्रनो वंडनायक (सुबेदार) नीमी गिरनार मोकल्यो अने त्यां पर्वत उपर पगथिआं बांधवानो हुकम कर्चो.

तदनंतर, कुमारपाले अनाथ अने असमर्थ श्रावक आदि जनोंना भरण पोषण अर्थे एक सत्रागार बंधाव्यो जेनी अंदर विविध जातनां भोजनो अने वस्त्रादि तेना अर्थिओने आपवामां आवतां हतां. तेमज ते सत्रागारनी पासेज एक पौषधशाला बंधावी के जेनी अंदर रहीने धर्मार्थी जने धर्मध्यान करता पोतानुं जीवन शांतरीते व्यतीत करी शके. सत्रागार अने पौषधशालानो कारभारे चलाववा माटे श्रीमालवंशीय नेमिनागना पुत्र श्रेष्ठी अभय कुमारनी योजना करी हती. ते श्रेष्ठी बहुज सत्यवत, दयाशील, सरलस्वभाव अने परोपकारपरायण हतो. तेनी आवा पुण्यदायक कार्य उपर थएली योग्य नियुक्तिने जोई कवि सिद्धपोल राजानी योग्य प्रशंसा करी हती.

त्यार वाद आचार्य हेमचंद्रे कुमारपालने श्रावक धर्ममां पालवा योग्य १२ व्रतोनो विस्तार साथे बोध कर्चो. प्राचीन कालमां आनंद अने कामदेवादि परम जैन गृहस्थोए जे रीते श्रावकधर्मनुं पालन कर्तुं हतुं, तथा प्रत्यक्षमां पण, खुद पाटण निवासी छड्डुअ नामना महान् धनाढ्य श्रावके जे रीते पोतानी पासे श्रावकना १२ व्रतोनो स्वीकार कर्चो हतो, तेनां उदाहरणो आपी हेमचंद्रसूरिण कुमारपालनी श्रावक-धर्म-अंगीकरण तरफ सुकाचि उत्पन्न करी. राजाए तेमना बोधानुसार एक राजर्षिने शोभे तेवी रीते श्रावकव्रतनो श्रद्धा पूर्वक स्वीकार कर्चो. अने आची रीते अंते कुमारपाले जैनधर्मनो पूर्ण स्वीकार करी ते एक परमार्हत जैन राजा थयो.

जैन थया पछी कुमारपालनी नित्यनी दिनचर्या आ प्रमाणे बतावचामां आची छे:—ते प्रति दिवस

પ્રાતઃકાલમાં વ્હેલો ઉઠતો અને સૌથી પ્રથમ, જૈનધર્મમાં સુપ્રસિદ્ધ ૯૫૫ પંચનમસ્કારમંત્રનું સ્મરણ કરતો. ત્યાર વાદ પોતાના ૬૫૫ દેવ-ગુરુનું ધ્યાન કરતો. પછી કાયશુદ્ધિ વિગેરે કરી, રાજમંદિરમાં આવેલા જિનમંદિરમાં જઈ જિનપ્રતિમાની પુષ્પ, નૈવેદ્ય વિગેરેથી પૂજા કરી પંચાંગ પ્રણિપાત કરતો; તથા યથા-શક્તિ નમોઞ્જારસી વિગેરે તપનું પ્રત્યાખ્યાન કરતો હતો. ત્યાર વાદ, અવસર થયે, હાથીના હોદે વેસી, અનેક સામંત, મંત્રી આદિ સાથે ' કુમાર વિહાર ' માં જતો, અને ત્યાં અષ્ટપ્રકારી પૂજા કરી ભાવપૂર્વક પ્રમુપ્રાર્થના કરતો. ત્યાંથી પછી તે હેમચંદ્રાચાર્ય પાસે જતો અને ચંદન, કર્પૂર તથા સુવર્ણકમલાદિથી તેમની ચરણપૂજા કરતો હતો. તદનંતર તેમની આગળ વેસાને ધર્મોપદેશ સાંભળતો અને ઉપદેશની સમાપ્તિ થયે યથાશક્તિ કાંઈક તપસ્યાનું પ્રત્યાખ્યાન કરી લગભગ મધ્યાહ્ન સમયે પાછો રાજભુવનમાં આવતો હતો. રાજમંદિરમાં આવી યાચક વિગેરે લોકોને યોગ્ય વૃત્તિનું ઈર્વતરણ કરી, પુનઃ નૈવેદ્ય વિગેરેના થાળો ભરી ગૃહચૈત્યની પૂજા કરતો અને પછી પોતે પવિત્ર ભોજનનું સેવન કરતો હતો.

ભોજન કર્યા વાદ તે સભામાં જઈને વેસતો અને ત્યાં જુદા જુદા વિદ્વાનો સાથે ધર્મશાસ્ત્ર અને તત્ત્વવિચારની વાતો કરતો તથા તેમની પાસેથી સાંભળતો. આ વિદ્વાનોમાં કવિ સિદ્ધપાલ મુખ્ય હતો. તે હમેશાં રાજાની આગળ વિવિધ પ્રકારની કથાવાર્તાઓ કરી તેના મનને શાંત અને સંતુષ્ટ રાખતો હતો.

દિવસના ચતુર્થ પ્રહરમાં (૫૮૯ લગભગ ૩૫૫ વાગ્યા પછી) કુમારપાલ રાજસભામાં સિંહાસન ઉપર જઈને વેસતો, અને ત્યાં આગળ સામંત, મંત્રી, માંડલિક અને સેઠ સાહુકાર આદિ રાજકીય અને પ્રજાવર્ગીય પુરુષો સાથે રાજ્યકારભાર સંબંધી વિચાર-વિનિમય ચલાવતો. તથા લોકોની વિદ્વમિઓ (ફર્યાદો)સાંભળતો અને તેનો યોગ્ય નિકાલ કરતો. રાજાનો ધર્મ છે ૯૫૫ જાણી ક્યારે ક્યારે, મહાવિગેરેની કુસ્તીઓ કે હાથી વિગેરેની સાટમારી જેવી રમતો પણ અલિપ્તમને તે જોતો હતો.

આવી રીતે રાજ્યકાર્ય કર્યા પછી, જો અષ્ટમી યા ચતુર્દશીનો દિવસ ન હોય તો, તે ઘડી દિવસ રહેતે સાયંકાલનું ભોજન કરતો—અષ્ટમી અને ચતુર્દશીના દિવસે તે એકજ વાર ભોજન લેતો હતો. ભોજન-કર્યા વાદ પુષ્પ આદિથી ગૃહચૈત્યની સાયંકાલિકી પૂજા કરતો અને ગ્રારવધૂઓ પાસે આરતી-મંગલાદિ કરાવતો. ત્યાર વાદ રાત્રિના કેટલાક સમય સુધી, ચારણ અને ગાયક આદિ જનો તેની આગળ વેસીને જે ગુણગાન તથા ગાયન-વાદન આદિ કરતા તે સાંભળતો અને ડ્યારે નિદ્રાનો સમય થતો ત્યારે મનમાં ત્રૈરાગ્ય અને બ્રહ્મચર્યના વિચારોનું ચિંતન કરતો શય્યાધીન થતો હતો.

તે જૈનધર્મપ્રસિદ્ધ નમસ્કારમંત્રનું સતત સ્મરણ કરતો રહેતો હતાં. ૫ મંત્ર ઉપર તેની બહુજ શ્રદ્ધા હતી. તે કહ્યાં કરતો હતાં કે, જે કાર્યો, વિપુલ સૈન્ય સાથે ડિગ્યાત્રા કરતી વખતે પણ મારાથી સિદ્ધ ન હોતાં થયાં, તથા જે શત્રુઓ મારી જાતની ચઢાઈથી પણ વશ ન હોતાં થયાં, તે કાર્યો આ નમસ્કાર મંત્રના પ્રભાવથી વિના યત્ને સિદ્ધ થાય છે; તથા તે શત્રુઓ અંબડ જેવા વણિગ્ દંડેશોથી પણ વશ થઈ રહ્યા છે. અત્યારે આ નમસ્કાર મંત્રના પ્રભાવથી મારા રાજ્યમાં કોઈ પણ સ્વચ્ચક્ર કે પરચક્રનો ભય નથી તેમજ ડુર્ભિક્ષાદિનું પણ ક્યાંય નામ સુધાં સંભળાતું નથી. इत्यादि.

આવી રીતે આ ગ્રંથમાં, સંક્ષેપમાં કુમારપાલના જૈન ધાર્મિક જીવનનો સાર આપવામાં આવ્યો છે. કુમારપાલ અને તત્કાલીન અન્યાન્ય પ્રસિદ્ધ પુરુષો, કે જેમનો ઉલ્લેખ પ્રસંગોપાત્ત આ ગ્રંથમાં કરવામાં આવ્યો છે, તેમના સંબંધમાં વિશેષ હકીકતો પ્રભાવકચરિત્ર, પ્રબંધચિન્તામાણિ, જયસિંહસૂરિકૃત-કુમારપાલચરિત્ર, ચારિત્રસુંદર રચિત-કુમારપાલચરિત્ર, જિનમંડન કૃત-કુમારપાલપ્રબંધ; इत्यादि પ્રાચીન ગ્રંથોમાં; તેમજ ફાર્વસકૃત રાત્તમાલા અને વૈષ્ણવેગેઝેટીઅર આદિ અર્વાચીન ઐતિહાસિક ગ્રંથોમાં યથાજ્ઞાત પ્રકટ થયેલી છે, તેથી તે સંબંધમાં અહીં કાંઈ લાંબું લખવું અનુપયુક્ત છે.

યદ્યપિ ઉક્તરૂપે આ ગ્રંથમાં ઐતિહાસિક વૃત્તાંત બહુજ અલ્પપ્રમાણમાં આપવામાં આવ્યો છે; તો પણ

જે આપ્યું છે તે સંપૂર્ણ વિશ્વસ્ત અને પ્રામાણિક છે; એમ આપણે સ્પષ્ટ કનુલ કરવું જોઈએ. કારણ કે ગ્રંથકાર સુદ કુમારપાલના સમકાલીનજ નહીં પરંતુ તેના અંતરંગ જીવનથી સવિશેષ પરિચિત્ત પણ હતા, એમ આપણે ઉપર આપેલા તેમના પરિચયથી નિશ્ચિત રૂપે સમજી શકીએ છીએ.

કુમારપાલના ધાર્મિક જીવનના સંબંધમાં તેના સમકાલીન એવા ત્રણ લેખકોના લેખેલાં વર્ણનો મળ્યા આવે છે. એ લેખકોમાં એક તો સુદ તેના ધર્મગુરુ આચાર્ય હેમચંદ્ર પોતેજ છે. તેમણે કુમારપાલ ચરિત્ર (પ્રાકૃતદ્વયાશ્રય) માં અને મહાવીરચરિત્રમાં તેના સંબંધમાં કેટલુંક સંક્ષિપ્ત વર્ણન આપ્યું છે. કુમારપાલચરિત્રમાં આ રહેલું વર્ણન અને પ્રસ્તુત ગ્રંથમાં આપેલું વર્ણન-તેમાંજ ખાસ કરીને તેની દિનચર્યા સંબંધી વર્ણન તો-તારવણી કરતાં લગભગ અર્થશઃ સંપૂર્ણ મળતું આવે છે. વીજી લેખક કવિ યશપાલ છે જેણે કુમારપાલના આધ્યાત્મિક જીવનને અનુલક્ષીને મોહરાજપરાજય નામનું નાટક રચ્યું છે. આ કવિ પોતાને અજયદેવ ચક્રવર્તી (કે જે કુમારપાલનો ઉત્તરાધિકારી હતો) નો ચરણસેવી વતાવે છે. તેથી એ પણ કુમારપાલનો સમકાલીન જ હતો, એ અર્થાન્ સિદ્ધ છે. 'મોહરાજપરાજય' માં, કુમારપાલે પોતાના રાજ્યમાંથી પ્રાણિહિસા, માંસભક્ષણ, ચૂતરમણ, વેશ્યાગમન આદિ પાપ વ્યસનોનો જે સર્વથા વહિષ્કાર કરાવ્યો હતો તેનું ઘણું મનોહર અને હૃદયંગમ વર્ણન કરેલું છે. ત્રીજા લેખક આ પ્રસ્તુતગ્રંથ પ્રણેતા સોમપ્રભાચાર્ય છે. આ ત્રણે લેખકો જવાબદાર અને પ્રમાણભૂત હોવાથી તેમના કથનમાં કોઈ પણ પ્રકારના સંદેહને અવકાશ નથી. આ લેખકોના ચાંકસ કથન ઉપરથી જણાય છે કે કુમારપાલ એક પરમધાર્મિક જૈન રાજા હતો. જૈન ધર્મે ઉપર તેની પૂર્ણ શ્રદ્ધા હતી અને એ ધર્મપ્રતિપાદિત આચાર-વિચારોનું પાલન કરવા તેણે સંપૂર્ણ કોશીશ કરી હતી; જૈન ધર્મનો પ્રસાર કરવા તેણે વનતા પ્રયત્નો કર્યા હતા; અને તેનો પ્રભાવ સ્થાપવા તેણે પોતાને તન્મય બનાવ્યો હતો. તે સ્વભાવથી સરલ અને વિચારથી ઉદાર હતો. જૈન ધર્મ ઉપર તેનો પૂર્ણ અનુરાગ હોવા છતાં પણ અન્યધર્મો ઉપર તેણે ક્યારે પણ પોતાનો અભાવ પ્રકટ કર્યો ન હતો. એક પ્રજાપાલક રાજા તરીકે તે દરેક ધર્મ ઉપર સમાન ભાવેજ આદર રાખતો હતો. તે જાતે સદાચારી અને સદગુણાનુરાગી હતો. તેના રાજ્યથી લોકો પૂર્ણ સુખી અને સંતુષ્ટ હતા. ક્ષિત્યલમ્.

કુમારપાલ પ્રતિબોધની ધંતની પ્રશસ્તિ નીચે પ્રમાણે છે.—

સુર્યાચન્દ્રમસૌ કૃતકૃતમસઃ કર્ણાવતંસી ક્ષિતેર્ધુર્યા ધર્મરથસ્ય સર્વજગતસ્તત્ત્વાલોકે દસૌ ।
 નિર્વાણાવસથસ્ય તોરણમહાસ્તમ્માવભૂતામુભાવેકઃ શ્રીમુનિચન્દ્રમૂરિરપરઃ શ્રીમાનદેવપ્રભુઃ ॥
 તયોર્વમ્બાજિતદેવમૂરિઃ શિષ્યોઃ વૃહદ્ગ્ચ્છનભઃશશાઙ્કઃ । જિનેન્દ્રધર્મામ્યુનિધિઃ પ્રપેદે ધનોદકઃ સ્ફૂર્તિમતીવ યસ્માન્ ॥
 શ્રીદેવમૂરિપ્રમુખા વમ્બુવુરન્યેડપિ તત્પાદપથાંજહંસાઃ । શ્રેષ્ઠામવાધારાચેતાસ્થિતીનાં નાલીકમૈત્રી મુદમાતતાન ॥
 વિશારદશિરામળેરજિતદેવસૂરસૂત્રકમામ્બુજમધુવ્રતો વિજયસિંહમૂરિઃપ્રભુઃ ।
 મિતોપકરણક્રિયાકચિરનિલ્લવાધી ચ ચધિરન્તનમુનિવ્રતઃ વ્યધિત દુઃપમાયામાપિ ॥
 તત્પદ્મપૂર્વાદ્રિસહસ્રરાદિમઃ સોમપ્રભાચાર્ય ઇતિ પ્રસિદ્ધઃ । શ્રીહિમયુરેશ્વ કુમારપાલદેવસ્ય ચંદં ન્યગદચ્ચરિત્રમ્ ॥
 મુકાવિરિતિ ન કીર્તિ નાર્થલાભં ન પૂજામહમભિલપમાણઃ પ્રાવૃત્તં વક્તુમેતત્ ।
 કિમુત કૃતમુમાભ્યાં દુષ્કરં દુઃપમાયાં જિનમતમતુલ્લં તત્કીર્તનાપુણ્યમિચ્છુઃ ॥
 ધર્મે નિર્બલતામવામુમતુલ્લં શ્રીહેમચન્દ્રપ્રભૌ મર્ષિત વ્યજિતુમદ્ધુતાં મળિતિપુ દ્ર્યુ પરામૌચિતીમ્ ।
 શ્રોતું ચિત્રકથાશ્રમત્કૃતિફલઃ કાવ્યં ચ લોકોત્તરં કર્તું કામયસે યદિ સ્ફુટગુણં તદ્ગ્રન્થેમતં શ્યુ ॥
 ગ્રામવાટાન્વયસાગેરેન્દુરસપત્નઃ કૃતત્તઃ ક્ષમી વાગ્મા સપ્તિયુવાનિવાનમજાને શ્રીપાલનામા પુમાન્ ।
 યં લોકોત્તરકાવ્યરજ્જિનમતિઃ સાહિત્યવિચારતિઃ શ્રીસેદ્ધાધિપતિઃ કર્વાન્દ્ર ઇતિ ચ પ્રાતેતિ ચ વ્યાહરન્ ॥
 પુત્રસ્તસ્ય કુમારપાલનૃપતિપ્રીતેઃ પદં ધીમતામુત્તંસઃ કવિચક્રમસ્તકમણિઃ શ્રીસિદ્ધપાલોડમવન્ ।
 મ્લદ્મં તદ્ગતતાવિદં કિમપિ ચન્નાયુક્તમુક્તં મયા તદ્બુદ્ધાભિરિદોચ્યતામિતિ બુદ્ધા બઃ પ્રાજ્ઞાલિઃ પ્રાર્થયે ॥

हेमसूरिपदपङ्कजहंसैः श्रीमहेन्द्रमुनिपैः श्रुतमेतत् । वर्द्धमान-गुणचन्द्र-गणिभ्यां साकमाकलितशास्त्ररहस्यैः ॥
यावन्निहताखिलसन्तमसौ नभासि चकास्तो रविचन्द्रमसौ । तावत्-हेमकुमारचरित्रं साधुजनो वाचयतु पवित्रम् ॥

विमलमतिमुषार्चिर्नेमिनागाङ्गजन्माऽभवदभयकुमारः श्रावकः श्रेष्ठिसुर्यः ।

अथ निजकरपदप्राप्तघमार्थपदा विजितपदकपदा तस्य पद्याति पत्नी ॥

तत्पुत्रा गुणिनोऽभवन् भुवि हरिश्चन्द्रादयो विधुताः श्रीदेवाप्रमुखाश्च धर्मधिपणापात्राणि तत्पुत्रिकाः ।

तत्प्रीत्यर्थमिदं व्यधायि तदुपद्वारागच्छात्मभि (?)-भूमिप्राणि च पुस्तकानिसोऽलेखयत् ॥

शशिजलधिसूर्यवर्षे शुचिमासे रविदिने सिताष्टम्याम् । जिनधर्मप्रतिबोधः क्लृप्तोऽयं गुर्जरैन्द्रपुरे ॥

प्रस्तावपञ्चकेऽप्यत्राष्टौ सहस्राण्यनुष्ठुभाम् । एकेकाक्षरसंख्यातान्यधिकान्यष्टभिः शतैः ॥

संवत् १४५८ वर्षे द्वितीयभाद्रपदशुद्धि ४ तिथौ शुक्रदिने श्रीस्तंभतीर्थे बृहद्ध (वृद्ध) पौषधशालायां भट्ट० श्रीजय-
तिलकसूरीणां उपदेशेन श्रीकुमारपालप्रतिबोधपुस्तकं लिखितमिदं ॥ कायस्थ ज्ञातीयमहं मंडालिकमुत पेतालिलितं ॥ चिरं
नंदतु ॥ छ ॥ उ० श्रीजयप्रभगणिसप्य (शिष्य) उ० श्रीजयमंदिरगणि सध्य (शिष्य) भट्टा० श्रीकल्याणरत्नसूरिगुरुभ्यो
नमः पं० व (वि) दारत्नगणि ।

सोमप्रभाचार्य रचित शतार्थवृत्तकाव्यनी टीकाना प्रारंभमां नीचे प्रमाणे ५ श्लोको आपवामां आ-
व्या छे जेमां १०० अर्थोनी अनुक्रमणिका आपवामां आवी छे.

अत्र स्तुताश्रुतवैशतिर्जनाः सिद्ध-सूर्य उगाध्यायाः । मुनि-पुण्डरीक-गौतम-सुधर्म-पञ्चव्रती-समयाः ॥

श्रुतदेवी-पुरुषार्थाः विधि-नारद-देव-विष्णु-चलभद्राः । श्रीः प्रद्युम्नश्च शङ्ख-शिव-गिरिसुता-स्कन्दाः ॥

हेरम्बः कैलाशो प्रह-देवगला जयन्त-घन-मदिराः । कनका-ऽवधि-सिंह-हय-करि-सरोज-भुजगाः शुकोऽरण्यम् ॥

मानसरो-ऽल-वैद्या-ऽनिलसुत-पत्नी-महा-गुरुचतुष्कम् । जयसिंह-कुमारनृपाः जयदेवो मूलराजश्च ॥

श्रीसिद्धपालकवि रजितदेवसूरि-गुरुवर्जयसिंहः । तच्छिष्यः सोमप्रभसूरिश्च शतार्थवृत्तकाविः ॥

शतार्थवृत्तनी वृत्तिना अंतमां सोमप्रभाचार्यना पिताविगेरेना उल्लेखवाला जे श्लोको आप्या छे
ते नीचे प्रमाणे छे.—

स एव शिष्यः स्वकृतैः कवित्वैर्गुरोर्गिरिम्ना जितकाञ्चनाद्रेः । गृहस्थभावा-ऽन्वयकीर्तनेन व्यनक्ति भक्ति पुनस्त्वत्तमेताम् ॥

प्राग्वाटान्वयनीरराशिरजनीजानिर्जिनार्चापरः संजातो जिनदेव इत्यभिधया चूडामणिर्मन्त्रिणाम् ।

यस्यैदार्य-विवेक-विक्रम-दया-दाक्षिण्य-पुण्यैर्गुणैः । साम्यं लब्धुमहर्निशं जगदपि क्लृप्यन्न विभ्राम्यति ॥

तस्याऽऽत्मजः सुजनमण्डलमौलिरत्नमुज्जृम्भितेन्द्रियजयोऽजानि सर्वदेवः ।

एकस्थसर्वगुणनिर्मितकौतुकेन धात्रा कृतोऽयमिति यः प्रथितः पृथिव्याम् ॥

सूनुस्तस्य प्रथमकमलादर्पणः पुण्यकामः कौमारेऽपि स्मरमदजयी जैनदीक्षां प्रपन्नः ।

विश्वेस्याऽपि श्रुतजलनिधेः पारमासाद्य जज्ञे श्रीमान् सोमप्रभ इति लसत्कीर्तिराचार्यवर्यः ॥

यो गृह्णाति समश्रुतं ब्रवीति यस्तत्कार्जुनं पाटवं काव्यं यस्त्वरितं करोति तनुते यः पावनीं देशनाम् ।

योऽयन्नान् सुमतेश्चरित्र + + भट्टाः सुक्तिपंडितपरं श्रीसोमप्रभसूरिरेव वृत्ते शतार्थं व्यधौन् ॥

ડૉ. હર્મન જેકોવીની જૈન સૂત્રોની પ્રસ્તાવના

(પ્રથમ ભાગ.)

[અનુવાદક—શાહ અંબાલાલ ચતુરભાઈ, વી. એ.]

[પ્રથમ અંકમાં ડૉ. હર્મન જેકોવીની કલ્પસૂત્રની પ્રસ્તાવનાનો અનુવાદ આપવામાં આવ્યો છે. આજ આ નીચે, ' પૂર્વના પવિત્ર પુસ્તકો (Sacred Books of the East) ' નામની સુપ્રસિદ્ધ ગ્રંથમાલામાં ' જૈન સૂત્રો ' નામે તેમનાં જે બે પુસ્તકો પ્રસિદ્ધ થયાં છે, તેમાના પહેલાં પુસ્તકની (નં. ૨૨) પ્રસ્તાવનાનો અનુવાદ ઉપસ્થિત કરવામાં આવે છે. ૫ પુસ્તકમાં આચારાંગ અને કલ્પસૂત્ર, ૫મ બે જૈન સૂત્રોના ભાષાંતરો પ્રકટ કરવામાં આવ્યાં છે.—સંપાદક.]

જૈન ધર્મની ઉત્પત્તિ તથા ઉત્ક્રાંતિના સંબંધમાં વિવેચન કરતી વખતે, કેટલાપણ વિદ્વાનો હજી પણ, જે શંકાશીલ કથન કરવું રીતસર સમજી રહ્યા છે, તે આ વિષયના સમગ્ર પ્રશ્નની વર્તમાન પરિસ્થિતિ જોતાં બિલકુલ યોગ્ય હોય તેમ જણાતું નથી. કારણ કે હવે જૈન ધર્મનું સાહિત્ય મોટા પ્રમાણમાં ઉપલબ્ધ થપ્તું છે અને તેથી જે ફોર્ડ વિદ્વાનને ૫ ધર્મના પ્રાચીન ઇતિહાસનાં સાધનોને સંગૃહીત કરવાની શ્રદ્ધા હોય તેને તેમાંથી તેવાં પુષ્કળ સાધનો મળી શકે તેમ છે. અને વળી આ સાધનો પણ પૂર્વાં નથી કે બેથી, તેમાં આપણને અશ્રદ્ધા રાખવાનું કારણ મળે. આપણે જાણીએ છીએ કે જૈનોના પવિત્ર પુસ્તકો—અર્થાત્ આગમો—પ્રાચીન છે.—જેને આપણે સંસ્કૃત કાળનું સાહિત્ય (Classical literature) કહીએ છીએ તે કરતાં સ્પષ્ટ રીતે વધારે પ્રાચીન છે. ૫ આગમોની પ્રાચીનતાના સંબંધમાં કહેવું જોઈએ કે તેમાંના ઘણાક ગ્રંથો, ઉત્તરીય બૌદ્ધોના સૌથી પ્રાચીન ગ્રંથોની સાથે તુલનામાં આવી શકે તેવા છે. હવે બૌદ્ધોના ૫ ગ્રંથો જો બુદ્ધ અને બૌદ્ધધર્મનો ઇતિહાસ તૈયાર કરવામાં સાચાં સાધનરૂપે સ્વીકારાયાં છે તો તેજ કોટિનાં જૈનોનાં પવિત્ર પુસ્તકો તેમના ઇતિહાસનાં પ્રામાણિક સાધન તરીકે શા માટે ન સ્વીકારી શકાય, તે સમજી શકાતું નથી. જો આ ગ્રંથો (જૈન

આગમો) પરસ્પર વિરુદ્ધ કથનોથી ભરેલા હોત અથવા તો તેમાં આવેલી તારીખોથી પરસ્પર વિરોધી અનુમાનો ઉભા થતાં હોત તો આવાં સાધનોના આધારે ઉત્પન્ન થપ્તલા વધા સિદ્ધાન્તોને શંકાશીલમને જોવાનું આપણા માટે ન્યાય્ય ગણાત. પરંતુ જૈનસાહિત્યનું સ્વરૂપ આ વાતમાં બૌદ્ધસાહિત્યથી પણ બહુજ અલપથંશે જૂઠું પડે છે,—ખાસ કરીને ઉત્તરીય બૌદ્ધ સાહિત્યથી. તો પછી શા માટે, આટલા વધા લેક્ષકો, જૈનસાહિત્યમાંથી મળી આવતી તે ધર્મની ઉત્પત્તિ અને સ્થિતિથી, ભિન્ન પ્રકારનાં અનુમાનો કરતા હશે ? આનું કારણ સ્પષ્ટ છે, અને તે યુરોપીય વિદ્વાનોએ જૈનધર્મ અને બૌદ્ધધર્મમાં પરસ્પર વાસ્તવિક અગર આભાસાત્મક જે સામ્ય જોલી કાઢ્યું છે, તેજ છે. ૫ વિદ્વાનોનું પદું માનવું છે કે આ બન્ને ધર્મોમાં જે આટલું વધું સામ્ય દૃષ્ટિગોચર થાય છે તેથી, તે પરસ્પર સ્વતંત્ર નહીં હોવા જોઈએ, પરંતુ એક બીજામાંથી ઉત્પન્ન થપ્તલા અથવા તો એક બીજાની શાખા રૂપે પ્રવર્તેલા હોવા જોઈએ. આ પ્રકારના, કારણ ઉપરથી કરાત-કાર્યના અનુમાનાત્મક અભિપ્રાયથી, ઘણા વિવેચકો—સમાલોચકોની દૃષ્ટિ કલુપિત થપ્તલી છે, અને અત્યારે પણ તેમ થતી જોવામાં આવે છે. આ પછીનાં પૃષ્ઠોમાં હું ૫ મિથ્યાધ્વાંતિને દૂર કરવાનો પ્રયત્ન કરીશ અને જૈનાગમો જે ચરેચરી પ્રામાણિક

કતા અને પ્રતિષ્ઠાને પાત્ર છે તે પુરવાર કરી આપીશ. આપણે આપણી ચર્ચાનો પ્રારંભ મહાવીર વિપયક ઝહાપોહથી કરીશું કે જેઓ જૈનધર્મના સંસ્થાપક, નિદાન તેના અંતિમ તીર્થંકર હતા. અહીં મારે જણાવી દેવું જોઈએ કે, મહાવીર એક અર્વાચીન સંપ્રદાય દ્વારા ઊભો કરેલો અથવા કલ્પી લીધેલો માત્ર સાંકેતિક પુરુષ છે, કે જે સંપ્રદાય પોતાના કલ્પિત સંસ્થાપકના મિથ્યાકાલ પછી ઘણી શતાબ્દો બાદ ઉત્પન્ન થયો હતો, એ જાતના ધ્રમને દૂર કરવા માટે પુરતું સાહિત્ય મળી ચૂક્યું છે.

શ્વેતાંબર તેમજ દિગંબર—એ બન્ને જૈન સંપ્રદાયો જણાવે છે કે મહાવીર કુણ્ડપુર અથવા કુણ્ડગ્રામના રાજા સિદ્ધાર્થના પુત્ર હતા. જૈનોની એવી માન્યતા છે કે આ કુણ્ડગ્રામ તે એક મોટું નગર હતું તથા સિદ્ધાર્થ તે એક ત્યાંનો પ્રતાપી રાજા હતો. પરંતુ કપિલવસ્તુ અને શુદ્ધોદનના સંબંધમાં બૌદ્ધોના કથનની માફક, જૈનોનું પણ આ ચર્ચા વસ્તુસ્થિતિનું અતિશયોક્તિ દ્વારા કરાવેલું એક મિથ્યા કથન છે. કુણ્ડગ્રામને આચારાંગસૂત્રમાં એક સંનિવેશ તરીકે જણાવેલું છે કે જેનો અર્થ ટીકાકારે 'યાત્રિઓ અથવા સાર્થવાહોનું વિશ્રામસ્થાન' એમ કરેલો છે. આ ઉપરથી જણાય છે કે તે (કુણ્ડગ્રામ) એક નર્જીવું સ્થાન હશે. તેના સંબંધમાં માત્ર પટલોજ સંપ્રદાય મળી આવે છે કે તે વિદેહમાં આવેલું હતું (આચારાંગ સૂત્ર ૨, ૧૫૬. ૧૭.) બૌદ્ધ તેમજ જૈન ગ્રંથોમાં પ્રસંગે પ્રસંગે મળી આવતા ઉલ્લેખો ઉપરથી મહાવીરની જન્મભૂમિના સ્થાનનો આપણે યોગ્ય નિર્ણય કરી શકીએ તેમ છીએ. બૌદ્ધોના મહાવગ્ગસૂત્રમાં આપણે વાંચીએ છીએ કે બુદ્ધ જ્યારે કોટિગામમાં વસતા હતા ત્યારે તેમને, તે સ્થાનની પાસે આવેલી વૈશાલીનામે રાજધાનીમાંથી લિચ્છવિઓ તથા અમ્બાપાલી નામની વેશ્યા મળવા આવી હતી. કોટિગામથી બુદ્ધ જ્યાં જાતિકો રહેતા હતા ત્યાં ગયા હતા, અને ત્યાં તેઓ જાતિ-

કોના ઇષ્ટિકાગૃહમાં ઉતર્યા હતાં. આ સ્થાનની નજીકમાંજ અમ્બાપાલી વેશ્યાનું અમ્બપાલિવન નામનું ઉદ્યાન હતું, જે તેણે બુદ્ધ અને તેમના સંઘને સમર્પિત કર્યું હતું. ત્યાંથી તેઓ વૈશાલી ગયા, અને ત્યાં લિચ્છવિઓના સેનાપતિને, જે નિર્પ્રયોનો એક શ્રાવક હતો, પોતાના ધર્મનો અનુયાયી બનાવ્યો. આ ઉપરથી બૌદ્ધોનું કોટિગામ અને જૈનોનું કુણ્ડગામ એ બન્ને એકજ હોય તેમ ઘણુંજ સંભવિત લાગે છે. નામના સામ્ય ઉપરાંત જાતિકોનો ઉલ્લેખ—કે જે જાતિકો સ્પષ્ટરૂપે મહાવીરની જન્મજાતિવાળા જ્ઞાત ક્ષત્રિયો જ છે—તથા સીંહ નામના જૈનનો ઉલ્લેખ પણ એકજ વાત તરફ અંગુલી નિર્દેશ કરે છે.

આ ઉપરથી ઘણું કરીને કુણ્ડગામ એ વિદેહની રાજધાની વૈશાલીનું એક માત્ર પરૂજ હતું. આ અનુમાનને, સૂત્રકૃતાંશુ ૧, ૩ માં મહાવીરને જે 'વૈશા-અર્થના વિપયમાં ટીકાકારો તથા અર્વાચીન ભાષાંતરકારોની શેરસમજૂતી થઈ હોય તેમ લાગે છે. મહાપરિનિવ્વાન સુત્તના ભાષાંતરમાં (S. B. E. Vol., XI) રાહસ્ય ડેવિડ્સ, પૃ. ૨૪ ની નોટમાં, આ પ્રમાણે લખે છે:—પ્રથમ 'નાદિક' શબ્દ બે વાર બહુવચનમાં વપરાયો છે—'પરંતુ ત્યાર પછી ત્રીજી વાર—એટલે છેલ્લા અવાંતર વાક્યમાં તે એક વચનમાં વપરાયો છે. આનો સુલાસો બુદ્ધઘોષ આપે છે—'એ નામના જલાશયના કાંઠા ઉપર એજ નામના બે ગામડાં હતાં.' પરંતુ મારા ધારવા પ્રમાણે બહુવચનમાં પ્રયુક્ત થયેલે જાતિકા શબ્દ તો ક્ષત્રિયોનો વાચક છે, અને એકવચની શબ્દ 'ગિજ્જકાવસથ' નું વિશેષણ છે, જે મહાપરિનિવ્વાન સુત્તમાં પ્રથમ સ્થાન નિર્દેશ વચ્ચે, તથા મહાવગ્ગ ૬, ૩૦, ૫ માં, આવે છે. આથી મહાપરિનિવ્વાનમાં જે જે સ્થળે નાદિક શબ્દ એકવચનાન્ત હોય ત્યાં ત્યાં તેના 'ગિજ્જકાવસથ' વિશેષ્યને અધ્યાહત માનવું જોઈએ. મારા મત પ્રમાણે 'નાદિક' એ રૂપ ઓટું છે અને મહાપરિનિવ્વાનનું 'જાતિક' રૂપ ચરું છે. મિ. રાહસ્ય ડેવિડ્સે પણ ભાષાંતરની અનુક્રમણિકામાં 'નાદિક' એ પટના પાસે છે. એમ જે જણાવ્યું છે તે ભૂલભરેલું છે. કારણ કે મહાવગ્ગની કથા ઉપરથી સ્પષ્ટ જણાય છે કે આ સ્થાન તથા કોટિગામ એ બન્ને સ્થળો વૈશાલીની નજીકમાં હતાં.

૧ જુઓ - વેબર, Indische Studien, XVI, p. 262.

૧ જુઓ ઓલ્ડનબર્ગની આવૃત્તિ પૃ. ૨૩૧, ૨૩૨; ભાષાંતર (બીજો ભાગ) પૃ. ૧૦૪. Sacred Books of the East, Vol. XVII.

૨ જે સૂત્રમાં 'જાતિકા' શબ્દ આવેલો છે તે સૂત્રના

લિપિ 'પટલે વૈશાલિક' એવું નામ આપેલું છે, તેથી પણ પુષ્ટિ મળે છે. તે સ્થળે, ટીકાકારે આ શબ્દનો અર્થ બે ભિન્ન ભિન્ન રીતિએ સમજાવ્યો છે; અને બીજે એક સ્થળે ત્રીજો અર્થ પણ આપેલો છે. આ પ્રમાણે મઠી આવતો અર્થવિરોધ, એમ સાચીત કરે છે કે વૈશાલિકનો ધર્મો અર્થ શાં કરવો તે સંબંધી સ્પષ્ટ સંપ્રદાય નહીં મઠી આવ્યો હશે; અને તેથી, અર્વાચીન જૈન વિદ્વાનોનાં કૃત્રિમ અર્થબોધનો તરફ આપણે દુર્લક્ષ આપવું યોગ્ય છે. વૈશાલિક શબ્દનો સ્પષ્ટાર્થ 'વૈશાલી નિવાસી' એવો થાય છે અને કુણ્ડગ્રામ વૈશાલીનું પરું હોવાથી મહાવીરનું તે નામ વાસ્તવિક ગણી શકાય છે;—જેમ ટર્નેહામગ્રીનનો રહેવાશી લંડનર (Londoner) તરીકે ઓલખાય છે તેમ. જ્યારે આ પ્રમાણે કુણ્ડગ્રામ વૈશાલીનું એક પરું માત્ર હતું, ત્યારે એ પણ સ્પષ્ટ છે કે તે ગામનો રાજા પણ વધારેમાં વધારે એક નાનો સરદારજ હોવો જોઈએ. જો કે જૈનો પોતાના અનુરાગાધિ-ક્યને લઈને, સિદ્ધાર્થ એક ચરેચર પ્રવલ રાજા હતા એમ કલ્પી તેની રાજલક્ષ્મીનો ઘણાંજ દેવીપ્યમાન અને આદર્શભૂત વર્ણોમાં ચિતાર આપે છે ચરા; પરંતુ તેમનાં વર્ણનોમાંથી અલંકારોનાં આભરણો ઉતારી લીધાં પછી એ સત્ય સહેલાઈથી પ્રકટ થઈ જાય છે કે સિદ્ધાર્થ એક મોટો રાજા નહીં પણ માત્ર અમીર હતા. અને તે આ પ્રમાણે:—સિદ્ધાર્થને અનેક સ્થળે માત્ર ક્ષત્રિયજ કહેલો છે, તથા તેની પત્ની જેનું નામ ત્રિશલા હતું, તેને પણ હમેશાં ક્ષત્રિયાણી તરીકેજ વર્ણવેલી છે. જ્યાં સુધી મને સ્મરણ છે, તેને દેવી તરીકે ક્યાંય લખી નથી. તેમજ ક્ષત્રિય ક્ષત્રિયો પણ દરેક સ્થળે તેઓ સિદ્ધાર્થના સમાન પદવાલા હોય તેવી રીતે વર્ણવામાં આવ્યાં છે નહીં કે તેના (સિદ્ધાર્થના) સામંતો અગર તાવેદારો તરીકે. આ હકીકતો ઉપરથી એમ માલુમ પડે છે, કે સિદ્ધાર્થ રાજા ન હતા, તેમ તે પોતાની જાતિનો નેતા પણ ન હતા; પરંતુ, પૂર્વીય દેશોમાંના જમીનદારો અને તેમાં પણ ખાસ કરીને દેશના પ્રતિષ્ઠિત ડમરાઓ જેટલી સત્તા ભોગવે છે તેટલી સત્તા ધરાવનારો તે એક ક્ષત્રિય હતા. છતાં પણ તે તેની સાથેના અન્ય સર-દારો કરતાં વધારે લાગવગવાલો હતા, એમ કહી

શકાય છે એમ કહેવાનું કારણ એ છે કે, તે પોતાના લગ્ન સંબંધના લીધે મોટા મોટા માણસો સાથે સંબંધ ધરાવતો હતા, તેવા ઉલ્લેખો મઠી આવે છે. તેની સ્ત્રી ત્રિશલા તે વૈશાલીના રાજા ચેટકની યહેન હતી. અને આ વિદેહના રાજવંશમાં ઉત્પન્ન થવાથીજ તે વેદેહી અગર વિદેહદત્તા કહેવાતી હતી.

મારા ચત્તિકાચિન્ત જાણવા પ્રમાણે વૌદ્ધ ગ્રંથોમાં વૈશાલીના રાજા ચેટકનો ઉલ્લેખ થયેલો નથી. પરંતુ તે ગ્રંથોમાં એવી હકીકત તો વાંચવામાં આવે છે કે વૈશાલીનું રાજ્યશાસન એક અમીર મંડલને સોંપવામાં આવ્યું હતું અને તે મંડલનો અધ્યક્ષ એક રાજા હતા. રાજ્યમાં અન્ય સત્તાધારી તરીકે માત્ર એક રાજપ્રતિનિધિ (Viceroy) અને બીજો સેનાપતિ હતા. લિચ્છવિઓના આ અજાયબી ભરેલા રાજ્યતંત્રની ક્ષાંત્રી જૈન ગ્રંથોમાં પણ આપણને થઈ શકે છે. નિર્યાવલી સૂત્રમાં એક વર્ણન છે કે—જ્યારે ચમ્પાના રાજા કૂળિક ઉર્ફે અજાતશત્રુએ ચેટક રાજા ઉપર મોટી સેના લઈ હુમલો કરવાની તૈયારી કરી, ત્યારે ચેટક રાજાએ કાશી, કોશલ, લિચ્છવિઓ અને મલ્લકિઓના ૧૮ સંયુક્ત રાજાઓને એકત્ર કરી, તેમને પૂછ્યું કે તમારો અભિપ્રાય કૂળિકની માગણીઓને પૂરી કરવાનો છે કે તેની સાથે યુદ્ધ કરવાનો છે? આ સિવાય એક એવો પણ ઉલ્લેખ મઠી આવે છે કે, મહાવીરના નિર્વાણ વખતે, આ ૧૮ રાજાઓએ તે પ્રસંગની યાદગીરી માટે એક ઉત્સવ ઉજવવાનો ઠરાવ કર્યો હતો. પરંતુ, આ ટેકાણે ચેટકનો, કે જેને એ સર્વે રાજાઓનો મહારાજા તરીકે ઘતાવવામાં આવે છે તેનો, પૃથક્ નામનિર્દેશ થયેલો નથી. આથી સંભવિત છે કે ચેટક

૧ જુઓ કલ્પસૂત્રની મારી આવૃત્તિ, પૃ. ૧૧૩. અહીં ચેટકને મહાવીરના મામા તરીકે જણાવેલો છે.

૨ જુઓ કલ્પસૂત્ર, જિનચરિત્ર, § ૧૧૦; આચારાંગ ૨, ૧૫, § ૧૫.

૩ Turnour in the Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal, VII, p. 992.

૪ Ed. Warren, p. 27.

૫ જુઓ કલ્પસૂત્ર, જિનચરિત્ર.

પણ અન્ય અઢાર સંયુક્ત રાજાઓ જેવો માત્ર એક ભાગીદાર રાજા હતો અને તેમના જેટલીજ તે સસાં ધરાવતો હતો. તથા, તે ઉપરાંત તેની સત્તા વૈશાલીના રાજ્યશાસનથી નિયંત્રિત હતી. આથી આપણે સમજી શકીએ છીએ કે પ્રથમ તો ચેટકનો પ્રભાવે કાંઈ વિશેષ નહીં હતો, અને બીજું તેનો પણ ઉપયોગ માત્ર બૌદ્ધોના પ્રતિસ્પર્ધી એવા જૈનોના પક્ષમાં જ થયો હતો; તેથી બૌદ્ધોએ તેનો ઉલ્લેખ કર્યો નહીં હોવો જોઈએ. જૈનોએ તેની સ્મૃતિ કાયમ રાખી, તેનું કારણ એ છે કે, તે એક તો પોતાના તીર્થંકર મહાવીરનો મામો થતો હતો અને બીજું એ ધર્મનો તે આશ્રયદાતા પણ હતો. આ ચેટક રાજાની લાગવગને લઈને જ વૈશાલી જૈન ધર્મનું એક સંરક્ષણ સ્થાન બન્યું હતું અને તેથી જ બૌદ્ધોએ તેને પાંખડી-ઓના એક મઠ તરીકે જણાવ્યું છે.

મહાવીરના કૌટુંબિક સંબંધનું આ નિરૂપણ કરવામાં મારો હેતુ કાંઈ કૃત્તૃહલરૂપ નથી; જો તેમ હોત તો તો હું આ સ્થળે તે સંબંધી સઘળી ઐતિહાસિક હકીકત—પછી તે ગમે તેટલી નજીવી હોત, ભેગી કરત. પરંતુ કૌટુંબિક સંબંધ વિષયક આ માહિતી અપવાતું ખાસ કારણ એ છે કે તે દ્વારા આપણે મહાવીરની સફળતાની પ્રાપ્તિનું રહસ્ય શોધી શકીએ છીએ.

મહાવીર તથા બુદ્ધ એ બંને કૃષ્ણસંબંધી દંતકથાઓમાં વર્ણવેલા યાદવો જેવા તથા વર્તમાનકાલીન રજપૂતો જેવા એક જાતના જાગીરદાર સામંત મંડલમાં જન્મ્યા હતા. આવી જાતના જાગીરદાર સામંત-મંડલોમાં કૌટુંબિક સંબંધો ઘણા મજબૂત અને ચિરસ્મરણીય હોય છે.

આપણે સ્પષ્ટ જાણીએ છીએ કે બુદ્ધ મુખ્યત્વે કરીને અમીર વર્ગને જ પોતાનો ઉપદેશ આપતા હતા તેમ જૈનો પણ પ્રારંભમાં બ્રાહ્મણો કરતાં ક્ષત્રિયોને ઊંચા માનતા હતા.^૧ પોતાના માર્ગનો પ્રસાર કરવામાં,

૧ જૈનો મહાવીરના સગાઓનાં નામો તથા ગોત્રો જણાવવામાં માત્ર ચોક્કસ જણાય છે. તેઓ તેમના સંબંધી બીજું કાંઈ વિશેષ લખતા નથી. કલ્પસૂત્ર, જિનચરિત્રો § ૧૦૧.

૨ જુઓ કલ્પસૂત્ર, જિનચરિત્રો §§ ૧૭ અને ૧૮.

મહાવીર તથા બુદ્ધ-બન્નેએ પ્રકટરીતે પોતપોતાના કુટુંબની સહાયતા અને લાગવગનો ઉપયોગ કર્યો હતો. તેમના બીજા પ્રતિસ્પર્ધીઓની અપેક્ષાએ તેમનો અધિક ઉત્કર્ષ થવામાં કેટલેક અંશે^૨ દેશના પ્રતિષ્ઠિત કુટુંબો સાથે તેમનો જે વિશિષ્ટ સંબંધ હતો, તે પણ એક મુખ્ય કારણ છે.

પોતાના માતૃપક્ષદ્વારા મહાવીર, મગધના રાજવંશ સાથે પણ સગપણ ધરાવતા હતા; કારણ કે ચેટકની ચેલુનાં નામની પુત્રીનું લગ્ન, રાજગૃહમાં વસતા, મગધના રાજા સેણિય-વિમ્બિસારે અથવા વિમ્બિસારની સાથે થયેલું હતું. જૈનો અને બૌદ્ધો બન્નેએ આ રાજાની, મહાવીર અને બુદ્ધના મિત્ર તથા આશ્રયદાતા તરીકે સ્તુતિ કરી છે. પરંતુ સેણિયનો પુત્ર કૂણિક અથવા તો બૌદ્ધોના કહેવા પ્રમાણે અજાતશત્રુ—જે વૈદેહી રાણી ચેલુનાના પેટે અવતર્યો હતો, તેણે પોતાના રાજ્યના પ્રારંભકાલમાં બૌદ્ધો તરફ કાંઈ પણ સહાનુભૂતિ બતાવી ન હતી; પરંતુ જ્યારે બુદ્ધના નિર્વાણના આઠ વર્ષ બાકી રહ્યાં હતાં ત્યારે તે બુદ્ધનો આશ્રયદાતા બન્યો હતો. તે વખતે પણ તે સત્કારપૂર્વક બુદ્ધધર્માનુયાયી થયો હતો તેમ તો આપણે માની શકતા નથી. કારણ એ છે કે જે માણસ ચલ્લીરીતે પોતાના પિતાનું^૩ સૂન

૧ જુઓ, વૈરનની નિરયાવલી સૂત્રની આવૃત્તિ પૃ. ૨૨. બૌદ્ધો ચેલુનાને વૈદેહીના નામે ઓળખે છે. તિવેટના બુદ્ધ ચરિત્રમાં તેનું નામ શ્રીમદ્રા આપેલું છે કે જે આપણને ચેટકની સ્ત્રી શુભદ્રાના નામનું સ્મરણ કરાવે છે. See Schiefner in Me'moires de l'Acade'mie Imperiale de St. Petersbourg, tome IV, p. 253.

૨ ઘણું કરીને તે માત્ર સેણિય અથવા શ્રેણિકના નામે જ ઓળખાય છે; તેનું પૂરું નામ દશાશ્રુતસ્કન્ધમાં આપેલું છે જુઓ વેબર, Ind. Stud. XVI, p. 469.

૩ આ વસ્તુ નામો એક જ વ્યક્તિવાચક હોય તેમ લાગે છે. કારણ કે બૌદ્ધ અને જૈન પ્રંથકારોના કથનાનુસાર તે-ઉદા-યિન અથવા ઉદયિભદ્ધ-જે જૈન અને બ્રાહ્મણ પ્રંથોમાં જણાવ્યા પ્રમાણે પાટલિપુત્રનો વસાવનાર હતો તેનો-પિત્ર હતો.

૪ બૌદ્ધો પણ એ હકીકતવાળી વિસ્તારયુક્ત કથા આપે

કરનારો હોય તથા માતામહ સાથે લડાઈ લડનારો હોય તેવો માણસ અધ્યાત્મજ્ઞાનને માટે વધુ ઉત્સુક બને તે અસંભવિત લાગે છે. ધર્મપરિવર્તન કરવામાં તેનો વાસ્તવિક શો ઉદ્દેશ હશે તેનું આપણે સહે-લાર્થથી અનુમાન કરી શકીએ છીએ. તેનો ઉદ્દેશ્ય થીજો કોઈ નહીં પણ જેમ તેના પિતાએ પોતાના રાજ્યમાં (મગધમાં) અંગદેશનો ઉમેરો કર્યો હતો તેમ તેને પોતાના તાથાના મુલકોમાં વિદેહને ઉમેરવાનો હતો. આ કારણથી તેણે પ્રથમ વિદેહની ઘુજિ જાતિને તાથે કરવાનાટે-કાઢી મુકવા માટે નહીં-પાટલિપ્રામમાં^૧ એક કિલ્લો બંધાવ્યો હતો અને આખરે પોતાના માતામહ વૈશાલીના રાજા સાથે

યુદ્ધ કર્યું હતું આ રાજા મહાવીરનો મામો હોવાથી અને તેથી જૈનોનો સંરક્ષક હોવાથી, એના ઉપર કરેલી ચઢાઈના પરિણામે જૈનોની સહાનુભૂતીને તે ઝોઈ વેઠો હતો. આથી પછી તેણે જૈનોના પ્રતિસ્પર્ધી બૌદ્ધોના પક્ષમાં મળવાનો નિશ્ચય કર્યો હતો; કે જે બૌદ્ધોને પોતાના પિતાના મિત્રો હોવાના સચ્ચે પ્રથમ તેણે ત્રાસ પણ આપ્યો હતો.

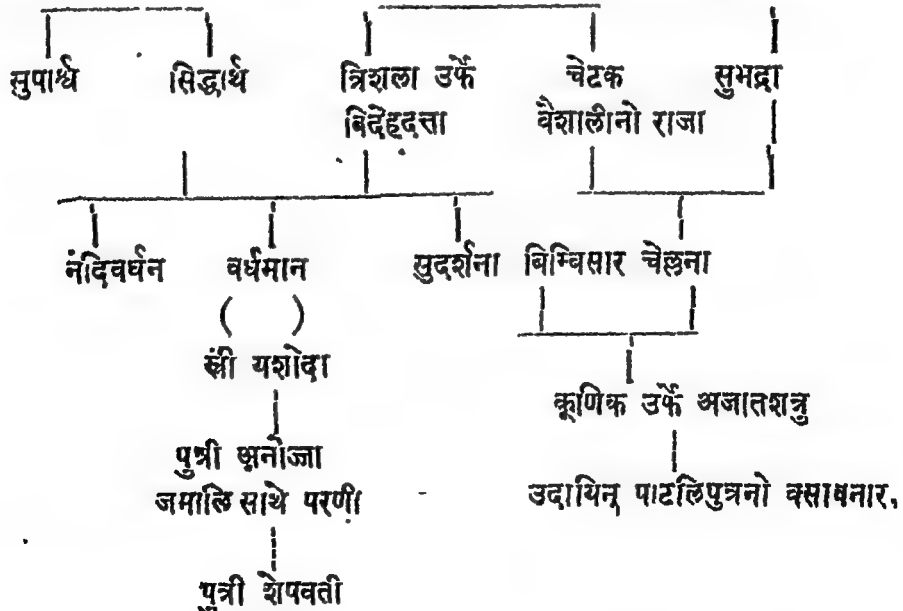
આપણે જાણીએ છીએ કે અજાતશત્રુ એક તો વૈશાલીને જીતવામાં સફળ થયો હતો; તથા ખીજું તેણે નન્દો અને મૌર્યોના સામ્રાજ્યનો પાયો નાંચ્યો હતો. આવી રીતે મગધસામ્રાજ્યની સરહદ વધવાથી જૈન અને બૌદ્ધ એ બન્ને ધર્મો માટે એક નવું ક્ષેત્ર છુલ્લું થયું હતું અને તેથી તરતજ તેઓ તે ક્ષેત્ર ઉપર પ્રસરી ગયા હતા. જ્યારે બીજા કેટલાક સંપ્રદાયો માત્ર સ્થાનિક અને અચિરસ્થાથી મહત્ત્વજ પ્રાપ્ત કરી અટકી ગયા હતા; ત્યારે એ બન્ને ધર્મો આટલી મોટી સફળતા મેલવવા સમર્થ થઈ શક્યા હતા તેનું મુખ્ય કારણ ખીજું કાંઈ નહીં પણ આ મંગલકર રાજનૈતિક સંયોગજ હતો.

છે. જુઓ, Kern, Der Buddhismus und sein Geschichte in Indien, I, p. 249 [p. 195 of the Original], અને તેજ પ્રમાણે જૈનોએ પણ નિરયાવલીમાં એં ફકીક્ત આપેલી છે.

૧ જુઓ ઉપર.

૨ મહાપરિનિવ્વાન સુત્ર ૧, ૨૬. અને મહાવગ્ગ ૬, ૨૮,

નીચે કોઈકમાં મહાવીર-અથવા તો અત્યારે આપણે તેમને જૈનોના તીર્થંકર તરીકે નહીં સંબોધતા હોવાથી, કહેવું જોઈએ કે વર્ધમાન યા શાત્રુપુત્રે-ના સગાઓનો પારસ્પરિક સંબંધ ચતાવવામાં આવે છે.



અહીં મારો દરાદો મહાવીરનું સંપૂર્ણ જીવન-ચરિત્ર આપવાનો નથી પરંતુ માત્ર કેટલીક પવી વિગતો

૧ પાલિ તથા પ્રાકૃતમાં નાતપુત્ર. બૌદ્ધો તેમને નિગ-ઠનાતપુત્ર અર્થાત નિર્ગન્યજાતપુત્ર કહે છે.

એકત્રિત કરવાનો છે, કે જે દ્વારા તે એક સ્વતંત્ર ઇતિહાસિક પુરુષ તરીકે તથા ઘણીક મહત્ત્વની બાબતોમાં વૃદ્ધતી તે એક ભિન્ન પુરુષરૂપે સિદ્ધ કરી શકાય.

વર્ધમાન પોતાના પિતાની માફક એક કાશ્યપ (કશ્યપ ગોત્રના) હતા. વઢી તેઓ, પોતાના માતાપિતાના મરણસુધી તથા તેનો પછી પણ પોતાના મોટા ભાઈ નંદિવર્ધનને પૈતૃકસંસ્થાનનો ઉત્તરાધિકારી બનતાં સુધી, ગૃહસ્થાવસ્થામાં રહ્યા હતા. ત્યાર બાદ અઢાવીશ વર્ષની ઉમરે, સર્વે સત્તાધારીઓની અનુમતી લઈ તેમણે દીક્ષા ગ્રહણ કરી હતી. રોમન કેથોલિક દેશોમાં જેવી રીતે નાના પુત્રોની મહત્ત્વાકાંક્ષાનું ક્ષેત્ર દેવાલય બન્યું હતું તેવીજ રીતે હિંદુસ્થાનના નાના પુત્રોનું ધ્યાન આધ્યાત્મિક પ્રવૃત્તિપૃષ્ઠે રૂંધ્યું હતું.

સંસાર છોડ્યા પછી મહાવીરે બાર વર્ષ સુધી તપસ્વી જીવન ગાળ્યું હતું અને તે દરમ્યાન તેમણે રાઢા નામના દેશની જંગલી જાતોમાં પણ પરિભ્રમણ કર્યું હતું. તેમના આ જીવનનું પ્રથમ વર્ષ પૂરું થયાં બાદ તેઓ અચેલક થયા હતા. આવી રીતે સિદ્ધિસાધન અર્થે બારવર્ષ પર્યંત કરેલા આત્મદમનને અંતે વર્ધમાનને કેવલજ્ઞાન ઉત્પન્ન થયું હતું. ત્યાર બાદ તેઓ સર્વજ્ઞ તીર્થંકર તરીકે ઓઢા-ખાવા લાગ્યા અને તે ઉપરાંત જિન, મહાવીર વિગેરેના વિરુદ્ધોથી પણ સંવોધાવા લાગ્યા કે જે શાક્યમુનિને પણ લગાડવામાં આવે છે. જીંદગીનાં છેલ્લાં ત્રીશ વર્ષો તેમણે પોતાના ધર્મનો ઉપદેશ આપવામાં તથા યતિમાર્ગની વ્યવસ્થા કરવામાં ગાળ્યાં હતાં. આ કાર્યમાં, આપણે ઉપર જોઈ ગયા તેમ, તેમને, વિદેહ મગધ, અને અંગદેશના ચેટક, શ્રેણિક અને કૂણિક નામના રાજાઓ કે જેમની સાથે તેઓ પોતાના માતૃપક્ષદ્વારા સગપણનો સંબંધ ધરાવતા હતા, તેમના તરફથી યાસ સહાયતા તેમજ પુષ્ટિ મંઢી હતી. એ દેશમાં આવેલાં નગરોમાં તેઓએ પોતાની આધ્યાત્મિક જીવનની કારકી-

ર્દીના લગભગ સઘઢા ચાતુર્માસો તેમણે એ પ્રદેશોમાં આવેલાં નગરોમાં જ ગાળ્યા હતા. કેટલીક વખતે આ દેશોની પશ્ચિમમાં શ્રાવસ્તી સુધી અને ઉત્તરમાં હિમાલયની તઢેટી લગી પણ તેઓ પોતાનું પરિભ્રમણ લંબાવતા હતા. તેમના જે મુખ્ય ૧૧ શિષ્યો ગણધરો તરીકે ઓઢાખાય છે અને જેમનાં નામો કલ્પસૂત્રની સ્થવિરાવલી (§ ૧) માં આપેલાં છે તે શ્વેતામ્બર તેમજ દિગમ્બર નામના બન્ને જૈન સંપ્રદાયોને સમાન માન્ય છે. આ બાબતો ઉપરાંત, મહાવીરના જીવનસંબંધો જે હકીકતો જૈન સૂત્રોમાં મંઢી આવે છે તે ઉપર, તેમજ મકલાલિપુત્ર ગોસાલની સાથે ચાલેલી તેમની સ્પર્ધા અને તેમાં થયેલા તેમના વિજય વાઢી હકીકત ઉપર, અને અંતે તેમના નિર્વાણ સ્થાન તરીકે જે પાપા નામની નાની નગરી પ્રસિદ્ધ થયેલી છે તે બાબત ઉપર આપણે વિચાર કરવાની જરૂરત છે. આ વધી બાબતો ઉપર વિચાર કરવામાં આપણે માત્ર જૈનોનીજ પરંપરાઓ ઉપર આધાર રાખવાનો છે, એમ નથી. આમાંની કેટલીક બાબતોના સંબંધમાં બૌદ્ધ ગ્રંથોમાંથી પણ ઉલ્લેખો મંઢી આવે છે. તેથી તે પ્રમાણોને પણ લક્ષ્યમાં રાખવાની જરૂરત છે. બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં મહાવીરને તેમના સુપ્રસિદ્ધ નામ 'નાતપુત્ત' થી ઉલ્લેખેલા છે અને તેમને નિગ્ગઢ્ઠો (જૈન યતિઓ) ના નાયક તરીકે તથા વૃદ્ધના એક પ્રતિસ્પર્ધી તરીકે જણાવેલા છે. એ ગ્રંથોમાં તેમના વિષયમાં જો કોઈ ભૂલ થયેલી હોય તો તે ફક્ત તેમના ગોત્રના સંબંધમાં છે. તેમના ગોત્રનું નામ, બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં અગ્નિવૈદ્યાયન આપેલું છે, જે વાસ્તવિકમાં મહાવીરના સુધર્મ નામે શિષ્યનું ગોત્ર હતું. બૌદ્ધ ગ્રંથકારોએ ભૂલથી અથવા ભ્રાંતિથી શિષ્યના ગોત્રને ગુરુનું ગોત્ર લખ્યું છે. મહાવીરનિર્વાણ બાદ તેમના ગણધરોમાંથી માત્ર આ સુધર્મ ગણધર જ એકલા વિદ્યમાન રહ્યા હતા.

૧. જુઓ કલ્પસૂત્ર, જિનચરિત્રો, § ૧૨૨; ચમ્પા, ૩; વૈશાલી, ૧૨; મિથિલા, ૬; રાજગૃહ, ૧૪; મદ્રિકા, ૨; આલમ્બિકા, ૧; પણિતભૂમિ, ૧; શ્રાવસ્તી, ૧; પાપા, ૧; પણિતભૂમિ, શ્રાવસ્તી અને કદાચ આલમ્બિકા આ ત્રણ શિવાય ઉપરનાં સઘઢાં સ્થળો, ઉપર નિર્દિષ્ટ થયેલ ત્રણ રાજ્યોની સરહદોની અંદરજ આવેલાં હતાં.

૧ તેમના જીવનના આ વિભાગના સંબંધમાં લખાણેલું એક પ્રકરણ આચારાંગ સૂત્રમાં આવેલું છે. જુઓ આચારાંગ (૧, ૮).

અને તેઓ તેમના પછી યુગપ્રધાન બન્યા હતા. મહાવીર બુદ્ધના સમકાલીન હતા, અને તેથી, વિશ્વિસાર, તેના અભયકુમાર અને અજાતશત્રુનામે બે પુત્રો, લિચ્છવિઓ અને મલ્લો, તથા મક્ખલિપુત્ર ગોસાલ આદિ; તે વચ્ચેના સમકાલીન પુરુષો પણ એકજ હતા. કારણ કે આ નામો વચ્ચે ધર્મનાં પુસ્તકોમાં આપણને મળી આવે છે. આપણે ઉપર જે ઝહાપોહ કરી ગયા છીએ તે ઉપરથી સિદ્ધ થયું છે કે વૈશાલીમાં મહાવીરના અનુયાયિઓ ઘણીજ મોટી સંખ્યામાં રહેતા હતા; તેવા ઉલ્લેખો બૌદ્ધ પિટકોમાંથી, મળી આવે છે. આ વાજુ જૈનગ્રંથોમાંથી પણ એવાં પ્રમાણો મળી આવે છે કે મહાવીરનું જન્મ સ્થાન વૈશાલીની સમીપમાંજ હતું; તથા તે રાજધાનીના મુખ્ય અધિષ્ઠાતા સાથે તેમનો ઘાસ સંબંધ હતો. આ વચ્ચે હકીકતોને પરસ્પર મેલવતાં તે એક વીજી સાથે સુસંગત થઈ રહે છે એમ સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે. આ ઉપરાંત બૌદ્ધોએ જણાવેલા નિગણ્ઠોના કેટલાક સિદ્ધાન્તો, દાખલા તરીકે કિરિયાવાદ અને પાળીમાં જીવ હોવાની માન્યતા વિગેરે—જૈનગ્રંથોમાં પણ તેવાજ રૂપમાં મળી આવે છે અને અંતે, નાતપુત્તના નિર્વાણના સ્થલ તરીકે, બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં જણાવેલી પાપાપુરી પણ જૈન ગ્રંથોના ઉલ્લેખાનુસાર યથાર્થ ઢરે છે.

મહાવીરના જીવનની આ રૂપરેખાને બુદ્ધના જીવનની રૂપરેખા સાથે સરખાવતાં, એમાં એક પણ યોગ્યતા નથી જણાઈ આવતી કે જેના વિષયમાં યોગ્ય શંકા ઉત્પન્ન થઈ શકે કે એ વાત બુદ્ધના અનુકરણ રૂપે પાછળથી ઉપજાવી કાઢવામાં આવી હશે. આમ હોવા છતાં પણ આ વચ્ચે મહાપુરુષોના જીવનમાં જે કેટલુંક સાધારણ સાદૃશ્ય જોવામાં આવે છે તેનું કારણ તો વચ્ચેનું ત્યાગી જીવન છે. એવાં જીવનોમાં કેટલીક સાધારણ સમાનતાઓ મળી આવે તે ઘણુંજ સ્વાભાવિક છે. અને આવી સમાનતા એક પ્રાચીન હિંદુ કરતાં અર્વાચીન યુરોપીય ઇતિહાસવેત્તાને ઘણી મહત્ત્વવાળી વાત આસે તેમાં પણ આશ્ચર્ય પામવા જેવું નથી. મહાવીરનાં કેટલાક સગાંનાં નામો પણ બુદ્ધના સગાંનાં નામો સાથે સમાનતા ધરાવે છે. ઉદાહરણ તરીકે—મહાવીરની

પત્નીનું નામ યશોદા હતું અને બુદ્ધની પત્નીનું નામ યશોધરા હતું. આ વચ્ચે નામો લગભગ સરખાં જ છે. મહાવીરના મોટાભાઈનું નામ નન્દિવર્ધન હતું અને બુદ્ધના ઓરમાન ભાઈનું નામ નન્દ હતું. બુદ્ધનું કુમારાવસ્થાનું નામ સિદ્ધાર્થ હતું અને મહાવીરના પિતાનું નામ પણ તેજ હતું. પરંતુ આ જાતના નામસાદૃશ્યથી જો કોઈ પણ વાત સિદ્ધ થતી હોય તો તે પટલીજ છે કે ક્ષત્રિય જાતિમાં જેમ હમેશાં વપરાય છે તેમ તે વચ્ચે પણ આવા પ્રકારનાં નામો મોટા પ્રમાણમાં વપરાતાં હશે. વળી વીજી પણ એક વાત છે, કે આ વચ્ચે ક્ષત્રિયોએ પાતાના સંપ્રદાયો બ્રાહ્મણ સત્તાના વિરોધીરૂપે અથવા તેના તિરસ્કારરૂપે જો સ્થાપ્યા હોય તો તેમાં પણ કાંઈ અસંભવ જોવું નથી. કારણ કે હું આગળ ઉપર જણાવીશ તે પ્રમાણે બ્રાહ્મણો જેમને 'વેપધારિઓ' (unbruc) કહે તેવા ત્યાગી થવાનો ક્ષત્રિયો માટે ઘણો વધારે સંભવ હતો.

બુદ્ધ અને મહાવીરના જીવનનો મેલ બતાવવા માટે હવે આપણે, તે વચ્ચે પુરુષોના જીવનની મુખ્ય મુખ્ય વીનાઓને સાથે સાથે મૂકી વિચાર કરીએ. બુદ્ધનો જન્મ કપિલવસ્તુમાં થયો હતો અને મહાવીર વૈશાલીની પાસે આવેલા એક ગામમાં જન્મ્યા હતા. ય્યારે બુદ્ધની માતા તેમના જન્મ પછી તરતજ મરણ પામી હતી ત્યારે મહાવીરના માતાપિતા મહાવીરની પુત્ર ઉમર થતાં સુધી વિદ્યમાન હતાં. બુદ્ધ પોતાના પિતાની હયાતીમાં અને તેમની મરજી વિરુદ્ધ ત્યાગી બન્યા હતા, પરંતુ મહાવીરે પોતાના માતાપિતાનું મરણ થયા પછી પણ અધિકારી પુરુષોની સંમતિ લઈ દીક્ષા સ્વીકારી હતી. બુદ્ધે છ વર્ષ સુધી તપશ્ચર્યા કરી હતી અને મહાવીરે બાર વર્ષ લગી કરી હતી. બુદ્ધે તપશ્ચર્યામાં વીતેલા પોતાના કાલને પાછળથી વૃથા (ફોગટ) ગણ્યો માન્યો હતો; તથા પોતાના ધ્યેયની પ્રાપ્તિમાં આવી જાતની તપશ્ચર્યાની કાંઈ ઉપયોગિતા નથી, એમ પણ જાહેર કર્યું હતું. પરંતુ મહાવીરે પોતાની તપશ્ચર્યાને ધ્યેયપ્રાપ્તિમાટે અત્યાવશ્યક માની હતી,^૧ પટલુંજ નહીં પરંતુ તીર્થ-

૧. See Petersburg Dictionary, ss, vv.

૨. તપશ્ચર્યામાં ગઢાણાં આ બાર વર્ષો, હમેશાં, સિદ્ધત્વ-

કર થયા પછી પણ તેમણે તેવી કેટલીક તપસ્યાઓનું અનુસરણ ચાલુ રાખ્યું હતું. મકલિપુત્ર ગોસાલ જેટલી મોટી વિરુદ્ધતા મહાવીરના સંવંધમાં ધરાવે છે તેટલી વુદ્ધના સંવંધમાં ધરાવતો જોવામાં આવતો નથી. જૈનધર્મમાં પ્રથમ મતભેદ ઉત્પન્ન કરનાર જમાલિનું નામ વુદ્ધના વિરોધીઓની નામાવર્ણમાં આવતું નથી. વુદ્ધના સચલા શિષ્યોનાં નામો મહાવીરના શિષ્યોથી જૂદા પ્રકારનાં છે. આ મિત્ર તાન ઉદાહરણોમાં ઉપસંહાર તરીકે અંતિમ ઉદાહરણ પણ આપી શકાય છે કે વુદ્ધ જ્યારે કુલિનગરમાં નિર્વાણ પામ્યા હતા, ત્યારે મહાવીર નિશ્ચિતરૂપે વુદ્ધની પહેલાં, અને પાપામાં નિર્વાણ પામ્યા હતા.

મહાવીરના જીવન સંવંધમાં અહીં સુધી કરેલી ચર્ચા દરમ્યાન જે જે હકીકતો વાચકો સમક્ષ મુકવામાં આવી છે, તેના આધારે, જૈનધર્મની ઉત્પત્તિ બૌદ્ધધર્મને આશ્રિત છે, અથવા નહીં, તે પ્રશ્નનું સહેલાઈથી નિરાકરણ કરી શકાશે. જો કે ઘણા ધર્મ વિદ્વાનો પટલી વાતનો તો અસ્વીકાર નથી કરતા કે વુદ્ધ અને મહાવીર એ બન્ને ભિન્ન ભિન્ન વ્યક્તિઓ ન હતી; પરંતુ, તેઓ, તે ઉપરથી ઉપરોક્ત પ્રશ્નનું વધું નિરાકરણ થઈ જતું હોય તેમ સ્વીકારવા તૈયાર નથી. પ્રો. વેવરે 'જૈનોના આગનો' ઉપરના પોતાના વિદ્વત્તા ભરેલા નિબંધમાં લખે છે કે—'જૈનો નામ બૌદ્ધધર્મના એક સૌથી જૂના સંપ્રદાયરૂપે છે.' અને વળી જણાવે છે કે 'મારા મત પ્રમાણે શાક્ય-મુનિ વુદ્ધથી ભિન્ન એવા એક મહાપુરુષ-કે જૈનો બૌદ્ધ પ્રંથોમાં વુદ્ધના એક સમકાલીન વિરોધી તરીકે ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો છે-તે દ્વારા જૈનધર્મની સ્થાપના થઈ હતી, એવા અર્થવાળી પરંપરાગત માન્યતાથી પણ મારા સિદ્ધાન્તને વાધ આવતો નથી. પરંતુ આ વાત, મને તો આથી ઝલતું. એમ સૂચવતી હોય તેમ જણાય છે કે જૈનોએ દ્વાદશ

પૂર્વક વુદ્ધનો અસ્વીકાર કર્યો છે. અને એમ કરવામાં તેમને કારણ માત્ર સાંપ્રદાયિક વિરોધજ છે. આ સિદ્ધાન્તની સત્યતાના પ્રમાણ તરીકે, આ બન્ને સંપ્રદાયોના સંસ્થાપકોની કથાઓમાં જે મહત્ત્વની સદશતાઓ ઉપલબ્ધ થાય છે, તે રજૂ કરી શકાય તેમ છે.'

પ્રો. વેવરની આ મુખ્ય દલીલ કે જૈનો ઉપર તેમનો આશો સિદ્ધાન્ત ઊભો થયેલો છે, તેનું નિરાકરણ મારા ધારવા પ્રમાણે, ઉપરની ચર્ચાથી સંપૂર્ણ રીતે થઈ જાય છે. આ સિદ્ધાન્તને તો સંભાવનાની કોટિમાં પણ સ્થાન આપવા માટે ઘણા મજબૂત પ્રમાણોની આવશ્યકતા રહે છે. સામાન્ય રીતે એમ જોવામાં આવે છે કે દરેક વિરોધી સંપ્રદાય પોતાના સંસ્થાપકના ઉપદેશો અને સિદ્ધાન્તોને શુદ્ધ અને પ્રામાણિક રીતે સમજાવવાનો દાવો કરતો હોય છે પરંતુ જ્યારે કોઈ સંપ્રદાય પોતાના મુખ્યધર્મના મૂલ્ય સંસ્થાપકના સિવાય અન્યપુરુષને પ્રમાણરૂપ માનતો થાય છે, ત્યારે તે આ તો કોઈ એક અન્ય વિદ્યમાન સંપ્રદાયનો સ્વીકાર કરે છે અથવા તો તે એકનવોજ સંપ્રદાય પ્રવર્તે છે. આ વિચારાનુસાર ચાલુ ચર્ચામાં આ બેમાંનો જો પ્રથમ પક્ષ સ્વીકારીએ તો આપણે એમ જ માનવું પડશે કે જૈનધર્મ કોઈ પણ રૂપમાં બૌદ્ધધર્મની પૂર્વે અવશ્ય હયાતી ધરાવતો જ હતો. અને જો બીજો પક્ષ સ્વીકારીશું તો આપણે આમ કલ્પના કરવી પડશે કે, વુદ્ધના વિચારોથી વિમનસ્ક થયેલા, આ જૈન બનેલા બૌદ્ધોએ પોતાના મૂલ્ય શાસ્ત્રોમાંથી વુદ્ધના એકાદ વિરોધીને. શોધી કાઢી તેમાં પોતાના પાંખડી સિદ્ધાન્તોનું આરોપણ કર્યું હતું. પરંતુ આ પદ્ધતિનું વીજા કોઈ બૌદ્ધ સંપ્રદાયે અનુકરણ કર્યું હોય તેમ અદ્યાપિ જણાયું નથી. ચર્ચાની સ્થાતર ક્ષણભર આપણે માની લઈએ કે, જે જાતનો આરોપ એ લોકો ઉપર મુકવામાં આવે છે, વાસ્તવિકમાં તેમણે તેમજ કર્યું હતું, તો માનવું પડશે કે તેમને આ કાર્ય ઘણીજ દક્ષતાપૂર્વક કર્યું હશે તેમ કરવામાં તેમને પોતાના પ્રાચીન ધર્મપ્રંથોમાં કેટલેક ટેકાણે મળી આવતા 'નિગણ્ઠો' અને 'નાતપુત્ત' સંબંધી કેટલાંક ઉલ્લેખોનો ઉપયોગ કરી, તેમાં ફેરફારો કરવા

નો પ્રાપ્તિ માટે અત્યાવશ્યક મનાતાં હતાં, અને અત્યારે પણ જે કોઈ સાધુ, સાંતારિક જીવનનો ત્યાગ કરી કોઈ એક સ્વર્ગે આ નોક્કની અમિલાના ધરાવતો હોય છે, તેને માટે પણ આ વાર વર્ષના તપશ્ચરણનું વિધાન કરેલું છે.

૧. Indische Studien, XVI, 210.

પડ્યા હશે; કેટલીક નવી હકીકતો ઉપજાવી કાઢવી પડી હશે; અને તેમ કરી તેમણે પોતાના વિરોધીઓના જેવાજ સર્વને પ્રામાણિક લાગે તેવા લેન્કો ઘનાવ્યા હશે. પરંતુ આ વધી અધુન કલ્પનાઓ છે. મહાવીરના સંબંધમાં તથા તત્કાલીન પરિસ્થિતિ અને લોકોના વિષયમાં ઉપલબ્ધ થતી જૈન તેમજ બૌદ્ધ પરંપરાઓ, પરસ્પર જે આટલી સુંદર રીતે મળતી હોઈ, એક વીજીને સુધારનારી અને પૂર્ણ કરનારી દેખાય છે, તે વધી વાંચતોનો સ્વરો જુલાસો અમે વતાવેલી ઉપર્યુક્ત રીતેજ થઈ શકે છે, અને તે માત્ર એજ કે એ વસ્ત્રે ધર્મોની પરંપરાઓ, મુખ્યરીતે એક વીજાથી સ્વતંત્ર છે અને જે વચ્ચે એ પરંપરાઓનું સ્વરૂપ નિશ્ચિત થયું હતું તે વચ્ચે મનાતાં ઐતિહાસિક સત્યોજ તેમાં નોંધાયા છે.

હવે આપણે, જૈનધર્મના વિષયમાં લખનારા વિદ્વાનોને, એ ધર્મ અને બૌદ્ધધર્મ વચ્ચે જણાઈ આવેલા સાદૃશ્યોનો વિચાર કરીએ કે જે સાદૃશ્યો એ વિદ્વાનોના, આ વચ્ચે ધર્મોના પારસ્પરિક સંબંધ વિષયક અભિપ્રાય ઉપર ઘણી મોટી અસર કરી છે.

પ્રો. લેસને, 'એ વચ્ચે ધર્મોની એકરૂપતાના હેતુમાં ચાર મુદ્દાઓ રજૂ કરેલા છે અને તે દ્વારા તેમણે જૈનધર્મ એ બૌદ્ધ ધર્મની એક શાખા છે એમ સાબીત કરવાનો પ્રયત્ન કર્યો છે. અહીં આપણે તે ચારે મુદ્દાઓનો અનુક્રમે વિચાર કરીશું.

પ્રો. લેસનેની પહેલી ઢાળ એ છે કે વચ્ચે ધર્મોના પ્રવર્તકોને જિન, અર્હત, મહાવીર, સર્વજ્ઞ, સુગત, તથાગત, સિદ્ધ, શુદ્ધ, સંયુદ્ધ, પરિનિર્વૃત, મુક્ત, રૂપાદિ પ્રકારનાં એકજ સરખાં વિરુદ્ધો તથા વિશેષણો લગાડેલાં જોવામાં આવે છે. તેથી મૂળમાં તે વચ્ચે એકજ હોવા જોઈએ, રૂપાદિ.

આ વધા શબ્દો અલ્પ તથા અધિક પ્રમાણમાં વચ્ચે ધર્મોના ગ્રંથોમાં જોવામાં આવે છે, એમાં સંશય નથી. પરંતુ તેમાં એ સ્પષ્ટ ધ્યાન રાખવા લાયક તફાવત રહેલો છે; અને તે એ છે કે જિન અને કદાચિત્ત શ્રમણ એ બે શબ્દો વાદ કરતાં જ્યારે એક ધર્મ અમુક વિરુદ્ધોનો વિશેષ ઉપયોગ કરે છે ત્યારે તેનો પ્રતિસ્પર્ધી (થીજો)

ધર્મ વીજા વિરુદ્ધોનો પ્રયોગ વધારે પસંદ કરે છે. ઉદાહરણ તરીકે, સાધારણ રીતે જ્યારે શુદ્ધ, તથાગત, સુગત અને સંયુદ્ધ આ વિશેષણો શાક્યમુનિને હમેશાં લગાડવામાં આવેલાં હોય છે, ત્યારે મહાવીર માટે તેમનો પ્રયોગ કદાચિત્ત જ થયેલો હોય છે. વર્ધમાનનાં વિરુદ્ધો તરીકે વીર અને મહાવીર શબ્દો જ હમેશાં પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે. આ કરતાં પણ અધિક ભેદ સૂચક એક વિશેષણ તૈથિકર છે. આ શબ્દનો અર્થ જૈન ગ્રંથોમાં 'ધર્મપ્રવર્તક' એવો થાય છે. પરંતુ બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં તે શબ્દ પાસંડામતના સંસ્થાપકના અર્થમાં વપરાયેલો છે. આ પ્રમાણે, આ વચ્ચે સંપ્રદાયો એ ઉક્ત વિશેષણ સંપ્રદાયોમાંથી અમુક અમુક વિશેષણોને જે સ્પષ્ટ રીતે પસંદ કરી લીધેલાં જોવામાં આવે છે તે ઉપરથી સાત્ત્વિકમાં આપણને કયું અનુમાન કરવાનું કારણ મળે છે? શું આપણે એમ માનવું કે જૈનો એ આ શબ્દો બૌદ્ધો પાસેથી લીધાં છે? હું એમ નથી માની શકતો. કારણ એ છે કે જો આ શબ્દો એક વચ્ચે અમુક વિરુદ્ધરૂપેજ નક્કી થઈ ચુક્યા હોય અથવા તેની વ્યુત્પત્તિ ઉપરથી નિકળતા અર્થ કરતાં કોઈ સ્પષ્ટ અર્થમાં રૂઢ થઈ ગયા હોય તો તે શબ્દોનો યા તો તેજ રીતે સ્વીકાર થઈ શકે અગર તો અસ્વીકાર થઈ શકે. પરંતુ જે શબ્દ એક વચ્ચે અમુક સ્પષ્ટ અર્થ સૂચક બની ગયો હોય, તેને, બૌદ્ધો પાસેથી લેનારા જૈનો એ, ફરી તેના અસલ અર્થમાં વાપર્યો હતો એમ માનવું તદ્દન અશક્ય છે. આ વાંચતો સ્વાભાવિક જુલાસો તો એજ થઈ શકે કે દરેક કાલમાં અમુક માનસૂચક વિશેષણો તથા નામો પ્રચલિત હોય છે અને તે વિશિષ્ટ ગુણધારી પુરુષોને લગાડવામાં આવે છે. આવાં વિશેષણો તથા ગુણવાચક નામો તે વચ્ચે પણ પ્રચલિત હતાં. આ શબ્દોનો વધા સંપ્રદાયો તેના મૂળ અર્થમાં, વિશેષણરૂપે પ્રયોગ કરતા હતા. આ શબ્દોમાંના કેટલાક શબ્દોને, તેમાં રહેલી અર્થશક્તિ અનુસાર વધા સંપ્રદાયો પોતાના ધર્મપ્રવર્તકો માટે પસંદ કર્યા હતા અને આ પસંદગીમાં તેઓ શબ્દની અર્થશક્તિ તરફ નો જોતાજ હતા; પરંતુ સાથે સાથે તેઓ એ વાત તરફ પણ જોતા હતા કે કયા શબ્દને પોતાના કયા પ્રતિસ્પર્ધી મત-

વાળાઓએ તેમની સર્વોત્કૃષ્ટ વ્યાક્તિ માટે પસંદ કર્યો છે. ઉદાહરણ તરીકે, તીર્થંકરશબ્દનો વ્યુત્પત્ત્યર્થ ધર્મનો સ્થાપનાર એટલે ધર્મપ્રવર્તક એવો થાય છે. અને તદનુસાર જૈન તથા અન્ય સંપ્રદાયોએ તેજ અર્થમાં તેનો પ્રયોગ કરેલો છે; પરંતુ બૌદ્ધોએ તેને તે અર્થમાં ન વાપરતાં પ્રતિસ્પર્ધી યા પાંચઠી મતના આચાર્યના અર્થમાં વાપર્યો છે, અને તેમ કરી તેમણે, જેઓ તે શબ્દને માનસૂચક અર્થમાં વાપરતા હતા તેમના તરફ પોતાનો દ્વેષ વ્યક્ત કર્યો છે. આવી રીતે ઘીંજા દાખલામાં, બુદ્ધ શબ્દ સામાન્ય રીતે, મુક્ત અર્થાત્ વંધરહિત થયેલા આત્માના અર્થમાં વપરાય છે; અને એ જ અર્થમાં જૈન ગ્રંથોમાં તે શબ્દનો પ્રયોગ થતો અद्याપિ દૃષ્ટિગોચર થાય છે. પરંતુ બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં એ શબ્દ ખાસ તેમના ધર્મપ્રવર્તકના વિરુદ્ધ રૂપે રુઢ થયેલો છે. આ હકીકત ઉપરથી એ અનુમાન સહજ થઈ શકે છે કે જે સમયમાં બૌદ્ધોની સાંપ્રદાયિક પરિભાષા નિર્ણીત થઈ તે વખતે તેઓ પ્રકટરૂપે જૈનોના પ્રતિપક્ષિઓ લેખાતા હોવા જોઈએ. આથી ઉલટું, એટલે જૈનોએ જે વખતે પોતાની પરિભાષા સ્થિર કરી તે વખતે તેઓ બૌદ્ધોના પ્રતિપક્ષીરૂપે પ્રસિદ્ધ નહીં થયેલા હોવા જોઈએ.

બુદ્ધધર્મની પૂર્વકાલિકતાના પક્ષમાં, પ્રો. લેસન ઘી-જી દલીલ એ રજુ કરે છે કે, એ વન્ને ધર્મોમાં મૃત્યુશીલ મનુષ્યોની અર્થાત્ મનુષ્યરૂપ ધર્મપ્રવર્તકોની દેવ તરીકે ઉપાસના કરવામાં આવે છે, તથા તેમની મૂર્તિઓને મંદિરોમાં પૂજવામાં આવે છે, इत्यादि.

બૌદ્ધધર્મ અને જૈનધર્મ સિવાય એવો અન્ય કોઈ પણ સંપ્રદાય, કે જેનો સંસ્થાપક, મહાવીર અને બુદ્ધની માફક, પોતાને સર્વજ્ઞ અને સર્વથા કૃતકૃત્ય કહેવડાવતો હતો, આપણી પ્રત્યક્ષ જાણમાં આવી શકે તેટલા સમય સુધી ટંકો શક્યો નથી. તેથી આપણને એ વન્ને ધર્મો સિવાય આ વાતનું ત્રિજું પ્રત્યક્ષ ઉદાહરણ મળી શકે તેમ નથી. તો પણ, જે ઘીંજા જુના સંપ્રદાયોના વિષયમાં આપણને જે કાંઈ જ્ઞાન મળેલું છે તે ઉપરથી એમ અનુમાન કરી શકાય છે કે ઘણા ભાગે તે સચલા સંપ્રદાયો, અને તેમ નહીં તો છેવટે તેમાંના કેટલાક તો અવશ્યમેવ, બૌદ્ધો અને જૈનોની માફક પોતાના તીર્થંકરો—

ધર્મપ્રવર્તકોને દેવરૂપે માનતા-પૂજતા હોવા જોઈએ. આથી નિશ્ચિતરૂપે એમ કેમ કહી શકાય કે જૈનોએ પોતાની આ વાત વિષયક આચાર-વિચારો બૌદ્ધો પાસેથી જ લીધા હતા પણ ઘીંજા પાસેથી નહીં? આથી વિરુદ્ધ એમ તો કહેવાને કારણ છે કે બુદ્ધના ઉપદેશમાં એવું કાંઈ પણ તત્ત્વ જોવામાં આવતું નથી જેથી તેમના અનુયાયિઓને બુદ્ધના મંદિરો બાંધવા માટે અગર તેમની મૂર્તિઓ સ્થાપિત કરવા માટે પ્રોત્સાહન મળી શકે. તેમના ઉપદેશોમાં એવી તો ઘણીક વાતો અવશ્ય નજરે પડે છે કે જે આવા પ્રકારની ભક્તિ-પૂજા-અર્ચાની (અર્થાત્ મૂર્તિ પૂજાની) પદ્ધતિ તરફ વિરુદ્ધતા વતાવતી હોય છે. પરંતુ જૈનોના વિષયમાં આવું કાંઈ કારણ વતાવી શકાય તેમ નથી. તેઓ જો પોતાના તીર્થંકર મહાવીરને દેવસ્વરૂપે પૂજે તો તેમાં તેઓ પોતાના સિદ્ધાન્ત વિરુદ્ધ વર્તન કરે છે, એમ કહી શકાય તેમ નથી. खरी રીતે આ વિષયમાં મારું પોતાનું સ્વતંત્ર માનવું તો એવું છે કે અસલી બૌદ્ધધર્મ યા જૈનધર્મને મૂર્તિપૂજા સાથે કાંઈ સંબંધ નહીં હોવો જોઈએ. કારણ કે મૂર્તિપૂજાની ઉત્પત્તિ નિર્ઘન્યો દ્વારા નહીં પણ ગૃહસ્થો દ્વારા થયેલા છે. તેની ઉત્પત્તિનું કારણ પણ એ લાગે છે કે જ્યારે ભારતના ધર્મવિષયક વિકાસક્રમમાં ભક્તિ એક મોક્ષના મુખ્ય સાધન તરીકે મનાવા લાગી ત્યારે લોકોને પોતાના પ્રાચીન અગંઘડ (જંગલી) દેવી-દેવતાઓની પ્રચલિત પૂજાથી અસંતોષ રહેવા લાગ્યો અને તેથી તેમણે કેટલાક ઉચ્ચ પ્રતિના ઉપાસ્યોની પૂજા કરવાની પ્રથા શરૂ કરી. खरी વસ્તુસ્થિતિ આવી હોવાથી ચૈત્યસ્થાપન તથા મૂર્તિપૂજામાં બૌદ્ધોને પુરોગામી અને જૈનોને તેમના અનુકર્તાઓ ન માનતાં, મારા વિચાર પ્રમાણે, આ વન્ને સંપ્રદાયોએ સ્વતંત્ર રીતે જ હિંદુ લોકોના ધાર્મિક વિકાસના શાશ્વત અને અનિવાર્ય પ્રભાવને વશ થઈ આ પ્રથા સ્વીકારી હતી, એમ માનવું જોઈએ.

આ વન્ને સંપ્રદાયો વચ્ચેની સમાનતાની ત્રીજી દલીલ, એ વન્નેમાં સરખી રીતે મળી આવતા અર્હિ-સાના સિદ્ધાન્ત વિષયની છે. આ દલીલની ચર્ચા આગલ ઉપર કરવામાં આવશે તેથી અહીં હું પ્રો:

લેસનની ચોથી દલીલ ઉપર આવું છું. તે દલીલ એ છે કે બૌદ્ધો તેમજ જૈનો બન્ને જગતના ઇતિહાસનું પરિમાણ ચતાવવામાં પટલી મોટી કાલસંખ્યાઓ વાપરે છે કે જે સમર્થમાં સમર્થ કલ્પનાશક્તિને પણ આંજી નાખે છે અને વસ્તુ કરી દે છે. ઇત્યાદિ. અલબત્ત, એ વાત તો સરી છે કે આ વિષયમાં જૈનો બૌદ્ધોને પણ પાછલ પાડી દે છે. પરંતુ, આ પ્રકારની કાલગણનામાં જૈનો માત્ર બૌદ્ધોનેજ મળતા આવે છે એમ કાંઈ કહી શકાય નહીં. બ્રાહ્મણોનાં પણ આ વાચતમાં તેવાંજ વર્ણનો આપણને મળી આવે છે. જૈનોની કાલગણનાત્મક પદ્ધતિનાં પરિમાણો, બ્રાહ્મણો તેમજ બૌદ્ધો વન્નેથી સરખી રીતે જુદાં પડે છે. જૈનોના ઉત્સર્પિણી અને અવસર્પિણી-રૂપ કાલચક્રની તથા તે દરેકના છ છ આરાઓની કલ્પના જેટલે અંશે બૌદ્ધોના ચાર મહાકલ્પો તથા ૮૦ નાના કલ્પો કે જે વિશ્વના ક્રમથી થતા સર્ગ અને પ્રલયરૂપી નાટકના અંકો તથા દૃશ્યો જેવા લાગે છે, તેમની-કલ્પનાથી ભિન્ન છે, તેટલેજ અંશે તે બ્રાહ્મણોની યુગો અને કલ્પોની કલ્પનાથી પણ ભિન્ન છે. મારો એવો મત છે કે બૌદ્ધોની કલ્પના તે બ્રાહ્મણોની યુગપદ્ધતિનું સંસ્કારિત રૂપ છે અને જૈનોના ઉત્સર્પિણી અને અવસર્પિણીરૂપ કાલચક્રની કલ્પના બ્રહ્માના દિવસ અને રાત્રિની કલ્પનાને આધારે ઉત્પન્ન થયેલી છે.

પ્રો. લેસનની ત્રીજી દલીલની ચર્ચા ઉપર મુલતવી રાખવાનું કારણ એટલુંજ હતું કે તે દલીલ આર્હિસાના સિદ્ધાન્ત વિષયક હોવાથી તેને, એ બન્ને ધર્મોના અભ્ય નીતિવિષયક વિચારો સાથે વધારે સારી રીતે ચર્ચવાની આવશ્યકતા છે. પ્રો. વેવરે^૧ જૈનોના પંચમહાવ્રતો અને બૌદ્ધોના પાંચ મુખ્ય પાપો અને શીલોની વચ્ચે ખાસ નિકટવર્તી સંબંધ ચતાવ્યો છે; અને પ્રો. વિન્ડિશ^૨ (Windisch) જૈનોના પંચ મહાવ્રતોની, બૌદ્ધોનાં દશ શીલો (દસસીલ) સાથે સરખામણી કરી છે.

બૌદ્ધ મિશ્વુના દશ શીલો નીચે મુજબ છે:—

- ૧ હું પ્રાણીની હિંસા ન કરવાનું વ્રત લઉં છું.
- ૨ હું ચોરી ન કરવાનું વ્રત લઉં છું.
- ૩ હું અબ્રહ્મ—અપવિત્રતાથી વિરમવાનું વ્રત લઉં છું.
- ૪ હું અસત્ય ન બોલવાનું વ્રત લઉં છું.
- ૫ હું પ્રગતિ અને સદાચારનું પ્રતિબંધક એવું મધ્યપાન ન કરવાનું વ્રત લઉં છું.
- ૬ હું નિપિદ્ધ કાલે ભોજન ન કરવાનું વ્રત લઉં છું.
- ૭ હું નૃત્ય, ગાન, સંગીત અને નાટકોથી વિરક્ત થવાનું વ્રત લઉં છું.
- ૮ હું હાર, સુંગંધી લેપન તથા અલંકારો ન વાપરવાનું વ્રત લઉં છું.
- ૯ હું ઝંઘી અગર પહોળી પથારીનો ઉપયોગ નહીં કરવાનું વ્રત લઉં છું.
- ૧૦ હું સુવર્ણ તથા ચાંદીનો પરિગ્રહ ન કરવાનું વ્રત અંગીકાર કરું છું.

આ ઉપરાંત બૌદ્ધધર્મમાં અષ્ટાંગ શીલો (અટ્ટંગ-સીલ) માનેલાં છે. તેમાંનાં પહેલાં પાંચ દરેક બૌદ્ધે આચરવાનાં છે; પરંતુ છેલ્લાં ત્રણ ખાસ કરીને ધર્મિષ્ઠ ગૃહસ્થોને તો અવશ્ય પાલવા માટે મહામણ કરેલી છે. એ અષ્ટાંગ શીલ આ પ્રમાણે છે:—

૧. હિંસા ન કરવી.
૨. ચોરી ન કરવી.
૩. અસત્ય ભાષણ ન કરવું.
૪. મધ્યપાન ન કરવું.
૫. બ્રહ્મચર્ય પાલવું (અધર્મ્ય એવો પરસ્પરીસંગ ન કરવો.)
૬. સમયવિરુદ્ધ રાત્રિએ ભોજન ન કરવું.
૭. હાર, ચંદન આદિ સુંગંધી પદાર્થો ધારણ ન કરવા.
૮. જમીન ઉપર માત્ર સાદડી પાથરીને સૂવું.

બૌદ્ધોનાં પાંચ વ્રતો, નીચે આપેલાં જૈનયતિઓનાં પાંચ મહાવ્રતો સાથે લગભગ મળતાં આવે છે:—

૧. આર્હિસા-પ્રાણીની હિંસા ન કરવી.
૨. સૂત-જૂતું ન બોલવું.
૩. અસ્તેય-નહીં આપેલું ન લેવું.

૧. Fragment der Bhagavati, II, pp. 175, 185.

૨. Z. D. M. G. XXVIII, p. 222, note.

૧. Rhys Davids, Buddhism, p. 160.

૨. Rhys Davids, Buddhism, pg. 139.

૪. બ્રહ્મચર્ય-સ્ત્રીસંયોગથી વિરમવું.

૫. અપરિગ્રહ-દુનિયાદારીની ચીજોમાં આસક્તિ ન કરવી. ધ્યાન કરીને મમત્વભાવનો ત્યાગ કરવો.

જૈનોનું પાંચમું વ્રત, બૌદ્ધોના પાંચમા શીલ કરતાં વધારે વ્યાપક છે. પરંતુ વાકીનાં વ્રતો. સહેજે ક્રમ-ભેદ સિવાય (જેમકે બૌદ્ધોનાં નં. ૧-૪) સરખાંજ છે. આ બન્ને ધર્મોનાં વ્રતોની વચ્ચેનું સામ્ય સ્વર-સ્વર પટલું વધું અદ્ભુત છે, કે સામાન્ય રીતે એમ સહેજે અનુમાન થઈ જાય છે કે, આ બેમાંથી એક ધર્મનાં બીજા ધર્મમાંથી પોતાનાં વ્રતો લીધાં હોવાં જોઈએ. પરંતુ તેમ છતાં પણ એ પ્રશ્ન તો ઊભોજ રહે છે કે અસલમાં આ વ્રતો જૈનોએ બૌદ્ધો પાસેથી લીધેલાં કે બૌદ્ધોએ જૈનો પાસેથી ? વાસ્તવિક રીતે વિચાર કરતાં જણાય છે, કે આ બાબતમાં જૈનો અથવા બૌદ્ધો-એ બેમાંથી કોઈ પણ એક સંપ્ર-દાય મૌલિકતાનો દાવો કરી શકે તેમ નથી. કારણ કે આ બન્ને ધર્મોએ પ્રાચીન બ્રાહ્મણ ધર્મના સંન્યાસિઓનાં જે પાંચ વ્રતો હતાં તેનોજ સ્વીકાર કરેલો છે. બ્રાહ્મણ સંન્યાસિનાં પાંચ વ્રતો નીચે પ્રમાણે છે:-

૧. અહિંસા.

૨. સત્ય.

૩. અસ્તેય.

૪. બ્રહ્મચર્ય.

૫. ત્યાગ.

અને પાંચ ગૌણ વ્રતો :-

૬. ક્રોધ ન કરવો.

૭. ગુરુની આજ્ઞામાં રહેવું.

૮. અનૌદ્વિત્ય.

૯. શૌચ.

૧૦. આહારશુદ્ધિ.

સંન્યાસિનાં ઉપર્યુક્ત પાંચ મોટાં વ્રતોમાંનાં પહેલાં ચાર વ્રતો જૈન મિશ્રુનાં ચાર વ્રતોને મળતાં આવે છે. અને ક્રમ પણ એકજ સરખો છે. આથી સંભવિત છે કે જૈનોએ પોતાનાં વ્રતો બ્રાહ્મણો પાસેથી

લીધાં હોવાં જોઈએ. નહીં કે બૌદ્ધો પાસેથી. એમ માનવાનું થોડું પણ એક કારણ છે, અને તે એ કે, બૌદ્ધોએ સત્યવ્રતને થોડું સ્થાન ન આપતાં ત્રીજું અગર ચોથું સ્થાન આપ્યું છે, અને તેમ કરી તેમણે વ્રતોના પુરાતન ક્રમને વદલ્યો છે. વળી, જૈનો બૌદ્ધો કરતાં ઘણાજ પ્રાચીન અને અધિક પ્રતિષ્ઠિત એવા બ્રાહ્મણોના સંન્યાસાચરણને મૂકી બૌદ્ધોના આચરણનું અનુકરણ કરે એ માનવું પણ અસંભવિત લાગે છે.

આ સ્થળે જગાવવું જોઈએ કે, આ ત્રણે ધર્મોમાં પાંચમું વ્રત, પોતપોતાના આચારને ધ્યાન અનુલ-ક્ષીને વનાવવામાં આવ્યું છે. જેમ કે બ્રાહ્મણ સંન્યાસિનું પાંચમું ત્યાગ (ઉદારતા) વ્રત એવું છે કે જૈન અગર બૌદ્ધ મિશ્રુના આચારો તરફ જોતાં, સ્વાભાવિક રીતેજ તે તેમના માટે વિહિત થઈ શકે તેવું લાગતું નથી. મહાવીરની પૂર્વે જૈનધર્મમાં ચાર મહાવ્રતો પાલ્લવામાં આવતાં હતાં; અને હાલનું ચોથું વ્રત તે વચ્ચે પાંચમા વ્રતમાં અન્તર્ગત થતું હતું. પરંતુ મહાવીરે ફરીથી આ ચાર વ્રતનાં પાંચ વ્રત બનાવ્યાં હતાં ત્રીજી તરફ બૌદ્ધો પણ પાંચ શીલો માને છે. તે ઉપરથી એમ જણાય છે કે પૂર્વે આ પાંચની સંખ્યાને ધ્યાન રીતે પવિત્ર માનવામાં આવતી હતી.

ઉપર્યુક્ત ચર્ચાના પરિણામે આપણે એ સ્પષ્ટ સમ-જી શકીએ છીએ કે જૈનો તથા બૌદ્ધોના મિશ્રુસંપ્ર-દાયનો મૂળ આદર્શ કોણ હતો ? એ આદર્શ બ્રાહ્મણ ધર્મનો સંન્યાસી-સંપ્રદાય હતો અને એમાંથીજ તેઓએ પોત પોતાના યતિજીવન માટે ઘણાક મહત્વના આચારો તથા નિયમો લીધા હતા. આ પ્રકારનું મારું અનુમાન કાંઈ ધ્યાન નથી નથી. પ્રો. મેક્સ મૂલરે અત્યાર આગમન પોતાના Hibbert Lectures (પૃ. ૩૫૧) માં એવો વિચાર પ્રદર્શિત કર્યો છે અને તેજ પ્રમાણે પ્રો. બુહલરે, પોતાના બૌદ્ધધર્મ સૂત્રના અનુવાદમાં; તથા પ્રો. કેર્ને પોતાના ભારતીય બૌદ્ધ ધર્મના ઇતિહાસ (History of Buddhism in India) માં પણ તેવોજ અભિપ્રાય આપેલો છે. હવે હું જૈન સાધુનું જીવન કેટલે અંશે બ્રાહ્મણધર્મના સંન્યાસી-જીવનના અનુકરણરૂપે છે તે બતાવવા

માટે ગૌતમ અને વૌધાયન ધર્મસૂત્રમાં^૧ આપેલા સંન્યાસીના નિયમોને જૈન યતિઓના નિયમો સાથે સરખાવી વતાવવા દુષ્ટું છું. ઘણીસરી વાતનેમં વૌદ્ધો પણ એજ નિયમોને અનુસરે છે તથાપિ તેનાં પણ યથાવસરે સંક્ષેપમાં સૂચના કરવામાં આવશે

૧૧. 'સંન્યાસીએ કોઈ પણ પ્રકારનો સંગ્રહ કરવો જોઈએ નહીં.' (ગૌતમ ધર્મસૂત્ર) જૈન તેમજ વૌદ્ધ ભિક્ષુઓને પણ એવી કોઈ પણ વસ્તુ રાખવાનો નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે કે જેના માટે તેને 'આ વસ્તુ મારી છે' એમ કહેવાનો પ્રસંગ આવે. - જુઓ જૈનોનું પાંચમું (અપરિગ્રહ) વ્રત. જૈન ભિક્ષુ વસ્ત્ર, પાત્ર, રજોહરણ આદિ જે કેટલીક વસ્તુઓ પોતાની પાસે હમેશાં રાખે છે તેને પણ તેઓ પોતાની મિલકતરૂપે રાખતા નથી. પરંતુ ફક્ત ધર્મક્રિયાના આચરણ માટે આવશ્યક સાધનો (ધર્મોપકરણો) મારી તેનો સ્વીકાર કરે છે

૧૨. 'બ્રહ્મચર્ય (નું તેણે પાલન કરવું જોઈએ)' વૌધાયનની માફક જૈનોનું પણ આ ચોથું મહાવ્રત છે. વૌદ્ધો અને પાંચમું વ્રત માને છે.

૧૩. 'વર્ષાઋતુ દરમ્યાન તેણે એકજ સ્થળે વાસ કરવો જોઈએ'^૨ આ સૂત્ર ઉપરની પોતાની ટિપ્પણીમાં બુહ્લર લખે છે કે:- 'આ નિયમ ઉપરથી એમ સૂચિત થાય છે કે વૌદ્ધો તથા જૈનોના વસ્તો (વર્ષાવાસ) પણ બ્રાહ્મણોના (આ વ્રતના) અનુકરણરૂપે છે.

૧૪. 'માત્ર ભિક્ષા લેવાને અર્થેજ તેણે ગામમાં પ્રવેશ કરવો જોઈએ.' આ વાતમાં જૈનો આટલા વધા સખત નથી. તેઓ સાધુને ગામ અગર નગરમાં સૂવાની પણ છૂટ આપે છે. તથાપિ ઘણા લાંબા વખત સુધી રહેવાનો તો તેમને પણ નિષેધજ કરેલો છે.

મહાવીર ગામમાં એક રાત અને નગરમાં પાંચ રાતથી વધારે ક્યારે પણ રહ્યા ન હતાં.

૧૫. 'તેણે મોડેથી (લોકોએ ભોજન કરી લીધાં પછી) ભિક્ષા માટે જવું જોઈએ. તથા વીજાં વાર જવું ન જાઈએ'.^૩ જૈન સાધુઓ સવારે અગર વપોરે ભિક્ષા અર્થે ભ્રમણ કરે છે. તેમ કરવામાં કદાચ તેમનો ઉદ્દેશ પોતાના પ્રતિસ્પર્ધી ભિક્ષુઓના સમાગમના પ્રસંગને દૂર રાખવાનો હશે. યાસ કરાંને તો તેઓ દિવસમાં એકજ વાર ભિક્ષા માટે જાય છે. પરંતુ એકથી વધારે ઉપવાસ કરેલા સાધુને દિવસમાં બે વખત પણ જવાની છૂટ આપેલી છે.^૪

૧૬. ' (મિષ્ટાન્ન માટે) સર્વે લિપ્સાઓનો નેણ ત્યાગ કરવો જોઈએ. ' આજ વાત જૈનોના પાંચમા મહાવ્રતના ચોથા પેટા વાક્યમાં પણ વિંહત કરવામાં આવેલી છે. તે ઉપરાંત, ભિક્ષામાં પ્રહુણ અને અગ્રહુણની વાતના જે નિયમો છે તે ઉપરથી પણ આજ વાશય તારવી શકાય છે.

૧૭. 'તેણે પોતાની વાળો, દાદિ (અને) કર્મો ઉપર અંકુશ રાખવો જોઈએ. ' આ વાત જૈનોની ત્રણ ગુણિઓ, અર્થાત્ મન, વાળો, અને કાયાનાં સંયમનની સાથે લગભગ એક માત્ર ધારણ કરે છે.

૧૮. 'તેણે નગ્નતાને ઢાંકવા માત્ર વસ્ત્ર પહેરવું. વસ્ત્રોના સંબંધમાં જૈનોના નિયમો આટલા વધા સાદા નથી; તેઓ પોતાના યતિને નગ્ન રહેવા માટે છૂટ આપે છે તેમજ એક, બે તથા ત્રણ સુધી વસ્ત્રો વાપરવાની પણ છૂટ આપે છે. પરંતુ સશક્ત અને યુવાન સાધુને નિયમપૂર્વક એકજ વસ્ત્ર વાપરવાનું વિધાન કરેલું છે.^૫ મહાવીર તો નગ્નજ રહ્યા હતા;^૬ અને તેથી બને તેટલું તેમનું અનુકરણ કરવામાં

૧ જુઓ, બુહ્લરનું ભાષાંતર, Sacred Books of the East, Vol. II, pp. 191, 192. અહીં આપેલા અંકો ગૌતમના ત્રીજા અધ્યાયના સૂત્રોને અનુસરીને છે; વૌધાયનનાં તેને મળતાં સૂત્રો ટિપ્પણીમાં સૂચવેલાં છે.

૨ સરખાવો, વૌધાયન ૨, ૬, ૧૧, ૧૬.

૩. વૌધાયન ૨, ૬, ૧૧, ૨૦.

૪. આચારાંગ સૂત્ર ૨, ૨, ૨, § ૬.

૧ કલ્પસૂત્ર, જિનચરિત્ર, § ૧૧૯.

૨ વૌધાયન, ૨, ૬, ૧૨, ૨૨.

૩ કલ્પસૂત્ર સામાચારી, § ૨૦.

૪ આચારાંગ સૂત્ર, ૨, ૧૫, ૫, § ૧૫.

૫ કલ્પસૂત્ર, જિનચરિત્ર § ૧૧૮.

૬ વૌધાયન, I. C, § ૧૬. ૪.

૭ આચારાંગ સૂત્ર ૨, ૫, ૧, § ૧.

૮ કલ્પસૂત્ર, જિનચરિત્ર § ૧૧૭.

નત્પર પવા જિનકલ્પી સાધુઓ પળ નમ્રજ રહેતા હતા. એમ છતાં, તેઓને પળ નમ્રતા ઢાંકવાની છૂટ હતી.^૧

૧૯. 'કેટલાક (એમ જણાવે છે કે તેણે) જાણ-વસ્ત્ર ધોઈને (પહેરવું જોઈએ).' વૌધાયનમાં^૨ જણાવ્યું છે કે, 'તેણે વસ્ત્રને પીત-રક્ત વર્ણથી રંગીને પહેરવું જોઈએ.' આ નિયમ જૈનોના કરતાં વૌદ્ધાના નિયમ સાથે વધારે મળતો આવે છે. કારણ કે જૈન યતિઓને તો વસ્ત્રોને ધોવાનો અગર રંગવાનો નિષેધ કરેલો છે. તેમણે તો જે સ્થિતિમાં જે વસ્ત્ર મળ્યું હોય તેજ સ્થિતિમાં તેને પહેરવાનું છે. તેમ છતાં પળ કહેવું જોઈએ કે જૈનો બ્રાહ્મણોના એ નિયમના--કે જૈનો ભાવાર્થ માત્ર પટલોજ છે કે સંન્યાસિઓનો વેશ બનો શકે તેટલો સાદો અને ક્ષુદ્ર હોવો જોઈએ, તેના-મૂલઆશયને પરાકાષ્ઠાનો સીમાએ ઘસડી ગયા છે. જૈનો પોતાના આચારનો કઠોરતાના વિષયમાં બ્રાહ્મણ પ્રતિસ્પર્ધિઓને પાછળ પાડી દેવામાં એક પ્રકારનું ગૌરવ સમજતા હોય તેમ દેખાય છે. અને તેથી તેઓ મલિનતા અને કુત્સિતતાને યતિજીવનનું પરમ ભૂષણ માનવાની ભૂલ કરે છે. આથી વિરુદ્ધ બૌદ્ધો હમેશાં પોતાના આચારને જેમ બને તેમ માનવ-સમાજના વંધારણને અનુકૂલ બનાવવા પ્રયત્નશીલ રહ્યા છે.

૨૦. 'તેણે વૃક્ષો અથવા છોડવાઓના ભાગોને લેવા નહીં. પરંતુ જો તે (પોતાની મેલ) જુદા થઈ ગયા હોય તો તે લેવામાં વાધ નથી.' જૈનોનો પળ તેવોજ નિયમ છે; પરંતુ તેઓ આથી પળ આગળ વધીને પોતાના યતિઓ માટે ફક્ત તદ્દન અચિત્ત વનસ્પતિ અને ફળ ફળાદિનેજ મિશ્રમાં લેવાની છૂટ આપે છે.

૨૧. 'વર્ષાઋતુ સિવાય તેણે (એકજ) ગામમાં બેરાત રહેવું નહીં.' આપણે ઉપર જોઈ ગયા છીએ. તેમ મહાવીરે તો આજ નિયમ પાલ્યો હતો. પછી અન્ય સાધુઓએ ગમે તે રીતે તેનું આચરણ કર્યું હોય.

૧ આચારાંગ સૂત્ર ૧, ૭, ૭, ૧.

૨ L. C. § ૨૧.

૩ આચારાંગ સૂત્ર ૨, ૫, ૨, ૧, અને ૧, ૭, ૫, ૨.

૪ સરસ્વાતી, આચારાંગ સૂત્ર. ૨, ૨, ૨, ૧.

૫ આચારાંગ ૨, ૧, ૭, ૬, અને ૬ મું અધ્યયન.

૨૨. 'તેણે યા તો શિર મુંડાવવું જોઈએ. અગર એક શિખા માત્ર રાખવી જોઈએ.' જૈનોએ આ નિયમને સુધારી પોતાના સાધુઓ માટે માત્ર આખું મસ્તક મુંડાવવાનોજ વિધિ કરેલો છે. વૌધાયનની^૧ અનુસાર સંન્યાસી બનતો વચ્ચે બ્રાહ્મણે 'પોતાના માથાના, ઢાઢીના તથા શરીરના વાળ કઢાવવા જોઈએ તથા નાલ પળ ઉતરાવવા જોઈએ.' જૈનો પળ દીક્ષા લેતો વચ્ચે વાળ કપાવવાના આ આચારનું અવશ્ય પાલન કરે છે અને આશ્વોજ 'મુંડે બનીને (અગર પોતાના વાળ ઉઘેડી નાખીને) અગર છોડી અનગર સ્થિતિમાં પ્રવેશ કર્યો.'^૨ આવો ઉલ્લેખ સર્વત્ર થયેલો છે.

૨૩. 'તેણે ઘીજોનો નાશ નહીં કરવો જોઈએ.' વાંચનાર આચારાંગના વીજા સ્કંધના ઘણા સૂત્રોમાં જોઈ શકાશે કે અંડ, જીવ, વીજ. અંકુરાદિને હાનિ ન થઈ જાય, તે માટે જૈન મિશ્રને કેટલો વધો સાવચેત રહેવાનો મહામણ કરવામાં આવ્યો છે. એમ જણાય છે કે જૈનોએ ઉપર્યુક્ત નિયમને વનસ્પતિ અને પ્રાણિવર્ગના સઘળા સૂક્ષ્મજીવોને લાગુ પડે તેવો એક વ્યાપક નિયમ બનાવ્યો છે.

૨૪. '(તેણે સઘળા) જીવો પ્રત્યે ઉદાસીનતા રાખવી જોઈએ. પછી તે જીવો ગમે તો તેના પ્રતિ માયાનુપણું ધરાવતા હોય કે કૂરપણું.'

૨૫. 'તેણે યેહિક અગર પારલૌકિક કલ્યાણ-માટે કોઈ પળ પ્રવૃત્તિ કરવી જોઈએ નહીં.'

છેલ્લા બે નિયમો તો જૈનોના કોઈ પળ આગમ-માંથી અક્ષરશઃ વતાવી શકાય તેવા છે. કારણ કે તે જૈનધર્મના તત્ત્વના મૂલભૂત છે. મહાવીરે આ નિયમોનું વધાર્થરીતે પરિપાલન કર્યું હતું. આના પ્રમાણમાં નીચેના ઉલ્લેખો વસ થશે: 'તેમના (મહા-વીરના) શરીર ઉપર ચાર માસ કરતાં વધારે સમય પર્યંત અનેક પ્રકારના પ્રાણિઓનો ઢઠ જાન્યો હતો; તેઓ, તે ઉપર હરતા ફરતા હતા અને વિવિધ ક્લેશો આપતા હતા.' 'તેમણે હમેશાં ત્રિગુણિપૂર્વક તૃણ, શીત, અગ્નિ, માત્સ્ય, મશક આદિથી જાનિત અનેક

૧ વૌધાયન, ૨, ૧૦, ૧૭, ૧૦.

૨ 'મુંડે મવિત્તા અગારાઓ અનગારિયં પવ્વહ્ણ'

૩ આચારાંગ સૂત્ર ૧, ૮, ૧, ૨,

પ્રકારનાં કષ્ટો સહન કર્યાં હતાં.' 'તેમણે દેવ, મનુષ્ય અને તિયેચ જનિત અનેક અનુકૂલ તેમજ પ્રતિકૂલ યનાયો સમતાર્યા સહન કર્યાં, એમ્યા નયા અનુભવ્યા હતાં' इत्यादि. જૈનયતિના સંબંધમાં એમ પણ વારંવાર કહેવામાં આવે છે કે 'તે પાતાના આધ્યાત્મિક જીવનની ત્રમ અવસ્થામાં' મરણ યા જીવિત એ વધેમાં નિરાકાંક્ષી હોય છે.'

બૌધ્ધાયને આપેલા વીજા કેટલાક નિયમો પણ જૈનોના આચારો સાથે ઘણાજ મળતા આવે છે. જેમકે:—'તેણે ઘચન, વિચાર અને કર્મ એ ત્રણ પ્રકારનાં કષ્ટદાયક સાધનો દ્વારા કોઈ પણ સર્જિત જીવની હિંસા કરવી જોઈએ નહીં.' આ નિયમ જૈનોના પ્રથમ મહાવ્રત (જુઓ ઉપર) નું એક સ્પષ્ટીકરણ માત્ર છે આ 'કષ્ટદાયક સાધનોને' જૈનો શાસ્ત્ર કહે છે.'

'તેણે શાંચાદિ કર્મ માટે અપેક્ષિત જલને ગળવા સારુ વગ્ન રાખવું જોઈએ.' 'તેણે (આવર્યક) શાંચાદિ (કુવા અગર તલાવમાંથી) કાઢેલા અને ગળેલા પાણીથી કરવાં જોઈએ.'^૧ આ નિયમોનું જૈન સાધુઓ યથાર્થ પાલન કરે છે. તેઓ પાણી ગળવા માટે ન્વાસુ વગ્ન રાખે છે ટાંકાકાર ગોવિન્દ, આ પવિત્ર, પટલે પાણી ગળવાના વગ્નચંડનો અર્થ 'માર્ગ ઉપરથી જંતુઓને દૂર કરવા માટે રાખેલો કુશ જાતના તુળનો એક ગુચ્છ,' એમ કરે છે.^૨ ગોવિન્દનો વતાવેલો આ અર્થ જો યથાર્થ હોય અને તેના પ્રમાણમાં જો કાંદે સાચી અને પ્રાચીન પરંપરા રહેલી હોય—અને તે મારા માનવા પ્રમાણે તો અવશ્ય હોવાજ જોઈએ—તો જૈન સાધુઓ માર્ગમાં ચાલતી વગ્નને વચ્ચે આવતા નયા થેસતી વગ્ન નીચે આવતા જીવજંતુઓને દૂર કરવા માટે જે રજોહરણ અથવા પાદપ્રાચ્છન રાખે છે, તેનું પ્રતિરૂપ બ્રાહ્મણ

પ્રથોમાં પણ મઠી આવે છે; એમ આપણે અહીં જણાવી શકીશું.

બ્રાહ્મણ સંન્યાસિજીવનનાં ઉપકરણો તરીકે 'દળડો (યષ્ટિકાઓ), રજ્જુ, પાણી ગળવામાટે વગ્ન ચંડ, જલપાત્ર અને ભિક્ષાપાત્ર છે.' જૈન સાધુઓ પણ દળડો રાખે છે—અત્યારે તો અવશ્ય રાખે છે. પરંતુ યાંકો તરફ દૃષ્ટિ કરતાં. પિટકામાં પણ એક પણ ઉલ્લેખ મારા જોવામાં આવ્યો નથી કે જેમાં યષ્ટિકા રાખવા માટે સ્પષ્ટ વિધાન કરવામાં આવ્યું હોય.

જૈન સાધુઓ પણ બ્રાહ્મણ સંન્યાસિઓની માફક ભિક્ષાપાત્ર અને તેને વાંધવાની એક દોરી તથા જલપાત્ર^૩ રાખે છે; પાણી ગળવા માટે વગ્નચંડ અને રજોહરણ આ બે વસ્તુઓ રાખવા સંબંધી ઉલ્લેખ તો આની પહેલાં જ આપણે કરી આવ્યા છીએ. જૈન સાધુનું જો કાંઈ પણ એવું જાસ ઉપકરણ હોય કે જે અન્ય સંન્યાસિઓ પાસે નહીં દેખાતું હોય, તે તેમની એક માત્ર મુગ્ધવલ્લિકા (મુહપત્તી) છે. આ વધી હકીકત ઉપરથી જણાશે કે જૈનોનાં ઘણાં જરાં ઉપકરણો, તેમના માટે આદર્શરૂપ થયેલા એવા બ્રાહ્મણ સંન્યાસિઓ અગર ભિક્ષુઓનાં જેવાંજ છે.

'તેણે તેજ અન્ન લેવું જોઈએ કે જે ઘિના માથે મળેલું હોય, જેના સંબંધમાં પહેલાં કાંઈ વ્યવસ્થા થયેલી ન હોય, જે અકસ્માત્તજ મળી ગયું હોય, અને જે ફક્ત પોતાના જીવિતને ટકાવવા પૂરતું જ હોય.'^૪

જૈનધર્મના 'ભિક્ષાચર્યાના નિયમો' વાંચવાથી સદૃજે જણાઈ આવે તેમ છે, કે, બ્રાહ્મણ સંન્યાસિઓ માટે અન્નગ્રહણ કરવા સંબંધી જે જાતના નિયમોનું-બૌધ્ધાયને ઉપર પ્રમાણે વિધાન કર્યું છે, તેજ પ્રકારના નિયમો પ્રમાણે મળેલા આહારને જૈનો પણ 'શુદ્ધ અને પ્રાણ' માન્યો છે. બૌદ્ધો આ વિષયમાં આટલા વધા સચ્ચ નથી. તેઓ તો જાસ કરીને

૧. આચારંગ સૂત્ર ૧, ૮, ૩, ૧.

૨. કલ્પસૂત્ર, જિનચરિત્ર, § ૧૧૭, અંતિમભાગ.

૩. સદાહરણ તરીકે કલ્પસૂત્ર સામાચારી § ૫૧.

૪. બૌધ્ધાયન ૨, ૬, ૧૧, ૨૩.

૫. આચારંગ સૂત્ર, પૃ ૧, નોટ ૨.

૬. બૌધ્ધાયન ૨, ૬, ૧૧, ૨૩.

૭. જુઓ પ્રો. સુલ્હરનું ભાષાંતર પૃ. ૨૬૦, ટિપ્પણ.

૧. બૌધ્ધાયન ૨, ૧૦, ૧૭, ૧૧.

૨. જો કે ભિક્ષાપાત્ર ઉપરાંત સાધુને જલપાત્ર રાખવાની પણ છૂટ આપેલી છે સરી તથાપિ એકજ પાત્ર રાસવું અધિક ઉત્કૃષ્ટ મનાય છે.

૩. બૌધ્ધાયન ૨, ૧૦, ૧૬, ૧૩.

તેમના માટેજ તૈયાર કરવામાં આવેલા ભોજનના આસંજણ સુદ્ધાનો સ્વીકાર કરે છે.

બ્રાહ્મણ સંન્યાસી અને જૈન યતિ માટે વિહિત કરેલા નિયમોની જે તુલના આપણે ઉપર કરી છે, તે ઉપરથી એ સ્પષ્ટ જણાય છે કે જૈનોના નિયમો તે બ્રાહ્મણોની નકલ માત્ર છે. પરંતુ અહીં એ પ્રશ્ન થાય છે કે 'નિર્ગ્રંથ' એ સીધી રીતે (સાક્ષાત્) જ સંન્યાસીની નકલ છે કે ધરંપરાપૂર્વક? કેમ કે એવો પણ તર્ક થઈ શકે તેમ છે કે બ્રાહ્મણ સંન્યાસિની પ્રથમ વૌદ્ધોએ નકલ કરી હશે અને બુદ્ધમિશ્વરી, પાછલથી નિર્ગ્રંથોએ. પરંતુ હું જેમ ઉપર સૂચવી ગયા છું તેમ એ તર્ક પ્રમાણશૂન્ય છે. કારણ કે વધારે પ્રાચીન અને પ્રમાણભૂત આદર્શને છોડી, જૈનો અલગ પ્રતિષ્ઠિત અને નકલો એવા પોતાના પ્રતિસ્પર્ધી વૌદ્ધોનું અનુકરણ કરે એ અસંભવિત છે. આથી એજ કહેવું વધારે યોગ્ય જણાય છે કે તેમણે નીધી રીતેજ બ્રાહ્મણોનું અનુકરણ કર્યું હતું. આ મુખ્ય દલીલ ઉપરાંત, પ્રસ્તુત પ્રશ્ન વિરુદ્ધ યીજી પણ એ એક દલીલ છે કે—ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે જે કેટલાક બ્રાહ્મણ આચારોનું જ્યારે જૈનોએ અનુકરણ કર્યું છે ત્યારે વૌદ્ધોએ તેમ કર્યું જણાતું નથી તેથી એમ સાબીત થાય છે કે વૌદ્ધો જૈનોના આદર્શભૂત વિરુદ્ધ હતા નહીં.

અહીં એક એવો પણ ચિત્તકેન્દ્રકારી સંભવ રહે છે કે બ્રાહ્મણ સંન્યાસીજ જૈન નિર્ગ્રંથ અથવા વૌદ્ધ મિશ્વરીની નકલરૂપે કેમ ન હોય? પરંતુ આ ચિત્તકેન્દ્ર તદ્દન પ્રમાણવિરુદ્ધ છે. સંન્યાસમાર્ગ બ્રાહ્મણોનો આશ્રમ વ્યવસ્થાનું એક જાણીતું અંગ છે. અને આ આશ્રમ વ્યવસ્થાને કદાચિત્ બ્રાહ્મણ ધર્મ જેટલી પ્રાચીન ન માનીએ તો પણ જૈન તથા વૌદ્ધ ધર્મથી તો તેને અવશ્ય પ્રાચીન માનવી પડે તેમ છે. વળી બ્રાહ્મણ સંન્યાસિઓ જ્યારે આજના ભારતવર્ષમાં પ્રસરેલા હતા, ત્યારે વૌદ્ધો તેમના સંઘની સ્થાપના થયા પછી, નિદાન પ્રથમની વે શતાબ્દીઓમાં તો, તેઓ માત્ર દેશના એક અમુક ભાગ જેવા સંકુચિત પ્રદેશમાંજ રહેતા હતા. તેથી આજના દેશના સંન્યાસિઓ માટે તેઓ આદર્શભૂત બન્યા હોય એમ માનવું સર્વથા પ્રમાણ શૂન્ય છે. યીજી વાવત વળી એ છે કે—બ્રાહ્મણ ધર્મશાસ્ત્રના કર્તા ગૌતમ નિશ્ચિતરૂપે

વૌદ્ધ ધર્મની ઉત્પત્તિની પૂર્વે થઈ ગયા છે. કારણ કે, પ્રો. બુલ્હરના મત પ્રમાણે આપસ્તમ્ય સૂત્રની રચનાનો કાલ મોડામાં મોડો છે. સ. પૂર્વે પાંચમી અગર ચોથી શતાબ્દીમાં મૂકવો જોઈએ. વૌદ્ધાયન તે આપસ્તમ્યની પૂર્વે થયેલો છે. અને ડૉ. બુલ્હરના^૨ કહેવા પ્રમાણે તે વચ્ચે વચ્ચેના વર્ષોનું અંતર દશકથો નહીં પરંતુ શતકથો માપવા જેટલું છે. ગૌતમ એ વૌદ્ધાયનથી પણ પૂર્વકાલીન છે. આ હિસાબે ગૌતમ, અને ઘણું કરીને વૌદ્ધાયન પણ, વૌદ્ધધર્મની ઉત્પત્તિની પૂર્વે થઈ ગયેલા નિશ્ચિત થાય છે. હવે ઉપર વર્ણવેલા બ્રાહ્મણ સંન્યાસમાર્ગના સઘળા નિયમો તો જાણે ગૌતમ દ્વારાજ બાંધવામાં આવેલા છે તેથી તે માર્ગને વૌદ્ધોની નકલરૂપે માનવો એ પ્રત્યક્ષ મૂલ છે. ધારો કે ઉક્ત ધર્મશાસ્ત્રોની રચનાના સમયના વિષયમાં પ્રો. બુલ્હરે કરેલું કથન કદાચિત્ ઓછું ઠરે; તો પણ તે ધર્મશાસ્ત્રો વૌદ્ધધર્મની ઉત્પત્તિ પછી સૈકા-ઓ વીંટ્યાં વાદ રચાયાં હતાં, એમ તો કોઈ પણ રીતે સિદ્ધ કરી શકાય તેમ છેજ નહીં. તથાપિ માનો કે, કદાચિત્ તેમ પણ સિદ્ધ કરી શકાય—જો કે તેમ થવું તો સર્વથા અસંભવિતજ છે—તો પણ આ સ્મૃતિકાર બ્રાહ્મણો પોતે જેમને આધુનિક કાલમાં ઉત્પન્ન થયેલા માનતા હોય તથા જેમને મિથ્યામતિ-ઓ માની તિરસ્કારતા હોય તેવા વૌદ્ધો પાસેથી મોટા પ્રમાણમાં પોતાના આચાર-નિયમો ગ્રહણ કરે, તે સર્વથા અશક્ય વાવત છે. તેમજ નાસ્તિકો પાસેથી પોતે લીધેલા નિયમોને બ્રાહ્મણો એટલા વધા પવિત્ર માને એ પણ નહીં માનવા જેવી વાવત છે. પરંતુ, આથી ઓછું, વૌદ્ધોએજ બ્રાહ્મણોના નિયમોનું અનુકરણ કર્યું હતું, એમ માનવું યુગિયુક્ત અને પ્રમાણસંગત લાગે છે. કારણ કે બ્રાહ્મણોની બુદ્ધિ-વિષયક અને નીતિવિષયક ઉત્કૃષ્ટતાને માટે વૌદ્ધો હમેશાં ઝૂંચો અભિપ્રાય ધરાવતા અને તે વદલ વહુ-માન કરતા હતા. એજ કારણ છે કે જૈનો તેમજ વૌદ્ધોએ બ્રાહ્મણ એ શબ્દને એક માનસૂચક વિરુદ્ધ

૧. Sacred Laws of the Aryas, part I, introduction, p. XL III.

૨. J. c. p. XXII.

૩. J. c. p. 49.

તરીકે સ્વીકારેલો છે, અને બ્રાહ્મણેતર જાતિના પુરુષોને માટે પણ તેમણે તેનો પ્રયોગ કરેલો છે.

આ સ્થળે જણાવવું જોઈએ કે જૈનો તેમજ વૌદ્ધોનો મિશ્રમાર્ગ, બ્રાહ્મણોના સંન્યાસમાર્ગના અનુકરણરૂપ હોવા છતાં, તે મૂળમાં તથા મુખ્યરીતે ક્ષત્રિયો માટેજ યોજાઈલો હતો. પ્રો. ઓલ્ડનબર્ગના દર્શાવ્યા મુજબ બુદ્ધે પ્રથમ ગંધર્વમાં ઉમરાવ અને અમીર લોકોનેજ સ્થાન આપ્યું હતું^૧. કારણ કે, ધનારસમાં આપેલા પોતાના પ્રથમ ઉપદેશમાં, બુદ્ધે પોતાના ધર્મના સંબંધમાં કહ્યું હતું કે 'યસસ્થાય કુલપુત્રા સમ્મદેવ અગારસ્મા અનગારિયં પવ્વજાન્તિ'—જેને માટે કુલીન જાતિના પુત્રો ઘર છોડીને અનગારતા સ્વીકારે છે.^૨

જૈનો પણ બ્રાહ્મણો કરતાં ક્ષત્રિયોને ઉચ્ચકોટિના માનતા હતા, એ વાત, મહાવીરના ગર્ભસંક્રમના સંબંધમાં જે એક આશ્ચર્યભરેલી પુરાણ કથા પ્રસિદ્ધ છે તે ઉપરથી સાબીત થાય છે. તે દંતકથા એવી છે કે—મહાવીરનો ગર્ભ દેવાનંદા બ્રાહ્મણીની કુક્ષિમાંથી ત્રિશલા ક્ષત્રિયાણીની કુક્ષિમાં ફેરવવામાં આવ્યો હતો. અને તેમ કરવાનું કારણ માત્ર એટલુંજ વતાવવામાં આવ્યું છે કે બ્રાહ્મણી અગર અન્ય કોઈ નીચ જાતિની સ્ત્રીના ઉદરથી તીર્થંકરનો જન્મ થઈ શકે નહીં^૩.

૧ Buddha, sein Leben, &c., p. 157 seq.

૨. મહાવગ્ગ ૧, ૬, ૧૨.

૩. દિગંધરો આ દંતકથાને શુક્તિશૂન્ય કહી, એનો અસ્વીકાર કરે છે. પરંતુ શ્વેતાંશરો તેને દૃઢતાપૂર્વક સાચી જણાવે છે. આ દંતકથા આચારાંગ તથા કલ્પસૂત્ર આદિ ઘણા ગ્રંથોમાં મળી આવે છે, તેથી તેની પ્રાચીનતામાં તો આપણને શંકા રહેતી નથી. પરંતુ એ કોઈ સ્પષ્ટ સમજાતું નથી કે કયા કારણથી આ શુક્તિશૂન્ય દંતકથા ઉત્પન્ન થઈ લોકમાં પ્રચાર પામી હશે? આ અંધકારપ્રસ્ત પ્રશ્ન ઉપર મને જો અભિપ્રાય આપવાની છૂટ હોય તો, મારું તો એવું માનવું છે કે સિદ્ધાર્થને બ્રાહ્મણી દેવાનંદા—જે મહાવીરની સાચી માતા હતી તે—અને ક્ષત્રિયાણી ત્રિશલા એમ બે સ્ત્રીઓ હતી. પહેલી સ્ત્રીના પતિ તરીકે વતાવવામાં આવતું ઋષભદત્તનું નામ ઘણું પ્રાચીન હોય તેમ લાગતું નથી. કારણ કે જો તે પ્રાચીન હોય તો તેનું પ્રારૂપ રૂપ 'ઉસભદત્ત' થવાને વડલે પ્રાગ્: 'ઉસભદિન' એવું

બીજી વાજુએ જોતાં બ્રાહ્મણ સંન્યાસિઓ પા પોતાના જેવાજ પરમ આસ્તિક બ્રાહ્મણેતર જાતીય સંન્યાસિઓને સ્વસમાન ઉચ્ચ કોટિના ન હોતા માનતા. કારણ કે પાછલના સમયમાં એવો મત પ્રચલિત થયેલો સ્પષ્ટ દેખાય છે કે બ્રાહ્મણ સિવાય અન્ય કોઈ વર્ણને ચતુર્થ આશ્રમનો અધિકાર હતો નહીં. આ મતના પ્રમાણમાં, પ્રો. બુલ્હરના જણાવવા પ્રમાણે, મનુનો ૬, ૯૭ મો શ્લોક વતાવવામાં આવે છે. પરંતુ, ભિન્ન ભિન્ન ટીકાકારોના અભિપ્રાય તરફ દૃષ્ટિપાત કરતાં, આ શ્લોકના અર્થના સંબંધમાં બધા ટીકાકારો એક મત થતા જણાતા નથી. તેથી આ વિવાદગ્રસ્ત ઉલ્લેખને વાજુએ મૂકીએ તો

થયું જોઈએ. વિશેષમાં, આ ન મ પણ એક જનને છાજે તેવું છે; બ્રાહ્મણને છાજે તેવું નથી. તેથી મારું તો એમ ઓક્સ માનવું ધાય છે કે ઋષભદત્ત એ ફક્ત જૈનોએ દેવાનંદાના બીજા પતિ તરીકે એક કલ્પી કાઢેલો પુરુષ છે. આપણે જાણીએ છીએ કે સિદ્ધાર્થ પોતાના ત્રિશલા સાથેના ભ્રમદ્વારા અનેક ઝંઘી પદવીવાલા અને મોટા પ્રભાવવાલા પુરુષો સાથે સંબંધ ધરાવતો હતો. તેથી કદાચિત્ત એવો વિચાર તેને ઉત્પન્ન થયો હોય, તો તે સંભવિત છે કે મહાવીરને ત્રિશલાના સપ્તર્ણસુત તરીકે પ્રસિદ્ધ કરવાને વડલે ઔરસ પુત્ર તરીકે જો જાહેર કરવાનાં આવે તો વગરે લાભદાયક વાત વનશે. કારણ કે તેમ કરવાથી, મહાવીર ત્રિશલાના પ્રભાવશાલી સંગોઓના આશ્રયનો હક્કદાર બની શકશે. આ દંતકથા લોકોમાં વિશ્વાસપાત્ર પણ ઘણાજ સહેલાઈથી મનાઈ ગઈ હશે. કારણ કે મહાવીર તીર્થંકર તરીકે પ્રસિદ્ધિમાં આવ્યા તેની પહેલાં ઘણાં વર્ષો અગાઉ તેમનાં માતાપિતા ગુજરી ગયાં હતાં. પરંતુ સ્ત્રી વસ્તુસ્થિતિ લોકોની સ્મૃતિમાંથી સર્વથા ભૂત નહીં થઈ હોય તેથી પાછલથી ગર્ભસંક્રમની આ કથા ઉપજાવી કાઢવામાં આવી હશે. આ કલ્પનાના મૂળ ઉત્પાદક જૈનો નથી. તેમણે તો માત્ર દેવકીની કુક્ષિમાંથી રોહિણીની કુક્ષિમાં થરલા રૂપના ગર્ભસંક્રમની પૌરાણિક કથાનું સ્પષ્ટ રીતે અનુકરણ કર્યું છે. આ ઉપરથી એમ પણ જણાય છે કે જૈનધર્મના વિકાસની પ્રથમની સદીઓમાં રૂપાની ઉપાસના લોકપ્રિય થઈ રહી હતી. કારણ કે જૈનોએ પોતાના વાલીશમા તીર્થંકર અરિષ્ટનેમિ જે એક પ્રસિદ્ધ યાદવ હતા, તેમનું ચરિત્ર લખવામાં કેટલાક ફેરફાર સિવાય રૂપાનું આશું જીવન યથાર્થ રીતે આલેખી દીધું છે.

પણ એટલું તો સ્પષ્ટ દેખાય છે કે પાછલના સમયમાં એ વિચાર તો યાસ રૂઢ બની ગયો હતો કે ચારે આશ્રમનો અધિકારી એક માત્ર બ્રાહ્મણ વર્ણજ હોઈ શકે છે. ક્ષત્રિયો માટે વ્રણ, વૈશ્યો માટે બે અને શૂદ્ર માટે ફક્ત એકજ આશ્રમનો અધિકાર જણાવવામાં આવ્યો છે^૧

આ સઘળી હકીકતો ઉપરથી એ વિચાર તો નિશ્ચિત લાગે છે, કે પ્રાચીન કાળમાં પણ બ્રાહ્મણેતર સંન્યાસિઓ, બ્રાહ્મણસંન્યાસિઓથી એક જુદા જ વર્ગના તથા પૃથગ્ભૂત મનાતા હતા. અને તેથી આપણને એમ માનવાનું કારણ મળે છે કે બ્રાહ્મણેતર સંન્યાસિઓની આ પ્રકારની અવસ્થાને લઈને એવા સંપ્રદાયોનો જન્મ થયો હતો કે જેમણે બ્રાહ્મણધર્મ સામે પોતાનો પ્રકટ વિરોધ જાહેર કર્યો હતો. આવાજ કારણને લઈને વૈશધારિઓ - પાંચ્ચંડિઓ ઉત્પન્ન થયા હતા એવો ભાવ વશિષ્ઠના કથન ઉપરથી પણ તારવી શકાય છે. ત્યાં એમ જણાવેલું છે કે કેટલાક સંન્યાસિઓએ ધાર્મિક ક્રિયાઓ (વિધિઓ) કરવી છોડી દીધી હતી અને વળી કેટલાકે તો આથી પણ આગલ વધી વેદમંત્રોચ્ચારણ પણ છોડી દીધું હતું. આ પ્રકારે ક્રિયામાર્ગનું ઉલ્લંઘન કરનારાઓને ઉદ્દેશીને વશિષ્ઠમાં નીચે પ્રમાણેનું કથન કરેલું છે, કે ' મહે કોઈ મનુષ્ય સઘળી ધાર્મિક વિધિઓનું અનુષ્ઠાન છોડી દે પરંતુ વેદમંત્રોચ્ચારણ તો તેણે કદાપિ ન છોડવું જોઈએ. કારણ કે વેદની ઉપેક્ષા કરવાથી શૂદ્ર થવાય છે. તેટલા માટે તેણે તેમ કરવું નહીં. ' આટલા બધા ભારપૂર્વક કરેલા પ્રતિબંધ ઉપરથી સહજ અનુમાન થાય છે કે આવું ક્રિયાનુષ્ઠાન એક વચ્ચે ચરેચર બંધ થયું જ હશે. વળી આ ઉપરથી જો આપણે એટલું અનુમાન કરી શકતા હોઈએ કે કેટલાક સંન્યાસિઓએ આવી રીતે વેદોચ્ચારણ—વેદાભ્યાસ કરવો પણ છોડી દીધો હશે, તો આપણે તેનું અનુમાન પણ કરી શકીએ, કે બીજાઓએ, વેદને ઈશ્વરપ્રણીત તથા સ્વતઃ પ્રમાણભૂત તરીકે માનવાનો ફનકાર

પણ કર્યો હશે. આ વિચાર ઉપરથી એ કલ્પના સહજ કરી શકાય તેવી છે કે આ માર્ગ સ્વીકારનાર તેજ પુરુષો હતા જેઓ એક પ્રકારના પૃથગ્ભૂત અને બ્રાહ્મણેતર સંન્યાસિઓ મનાતા હતા. આ રીતે પ્રસ્તુત વિવેચન ઉપરથી એક તો આપણે એ વાચત જોઈ શકીએ છીએ કે જૈન અને બૌદ્ધ જેવા વિરોધી સંપ્રદાયોના મતભેદનું બીજ ચતુર્થ આશ્રમની સંસ્થામાં રહેલું હતું. અને બીજું એ પણ આપણે જોઈ શકીએ છીએ કે મતાન્તર ધારિઓએ ચતુર્થ આશ્રમનું અનુસરણ કર્યું હતું. આ ઉપરથી આપણે માનવું પડે છે કે જૈનધર્મ અને બુદ્ધધર્મ એ બ્રાહ્મણધર્મમાંથી ઉત્પન્ન થયેલા એક આકાસ્મિક સુધારા સ્વરૂપ મતો નથી પરંતુ લાંબા વચ્ચતથી ચાલતા આવતા એક ધાર્મિક આંદોલનના ક્રમિક પરિણામ સ્વરૂપ છે.

આપણે ઉપર જોઈ ગયા તેમ, જૈનોની તેમના છેલ્લા તીર્થંકર સંવંધી પરંપરાગત કથાઓ; અથવા જૈન સાધુઓ માટે વિહિત કરવામાં આવેલા આચારો; અગર તે ધર્મના શ્રદ્ધાલુ ગૃહસ્થો માટે યોજાઈેલી ધાર્મિક ક્રિયાઓ ઉપરથી એવું કાંઈ પણ સિદ્ધ થતું નથી કે જેથી આપણને એમ માનવાનું કારણ મળે કે જૈનધર્મ એ બૌદ્ધધર્મમાંથી નિકળ્યો હતો. એ ઉપરાંત બન્ને ધર્મોના મુખ્ય સિદ્ધાન્તોમાં પણ પરસ્પર એટલો બધો ભેદ રહેલો છે કે જેથી આ બન્ને ધર્મોનું મૂળ ઉત્પત્તિ સ્થાન એક હશે એમ પણ માની શકાય તેમ નથી. બુદ્ધે નિર્વાણની અવસ્થાના સંબંધમાં ગમે તેમ વિચાર્યું અગર ઉપદેશ્યું હોય—અર્થાત્ તે અવસ્થાને યા તો સર્વથા અભાવાત્મક બતાવી હોય કે પછી તેને એક અગમ્ય અને અચિન્ત્ય સત્તાવાળી કલ્પા હોય; પરંતુ એટલું તો નિઃસંદેહ છે કે તેમણે બ્રાહ્મણધર્મના આત્મવાદનો, કે જે વાદમાં વિશ્વદેવતાવાદિઓ તથા અણુવાદિઓના મત પ્રમાણે આત્મા સ્વતંત્ર અને નિત્ય માનવામાં આવ્યો છે તેનો, સ્પષ્ટ વિરોધ કર્યો હતો. અને તે વિરોધજ એ બૌદ્ધધર્મની એક યાસ વિશિષ્ટતા છે. પરંતુ આ વિષયનો જ્યારે જૈનોનો સિદ્ધાન્ત તપાસીએ છીએ તો, તે સંપૂર્ણરીતે બ્રાહ્મણમતને મળતો આવે છે. જે ભેદ છે તે માત્ર એટલો જ છે કે જૈનો જ્યારે આત્માને મર્યાદિત આકાશવ્યાપી માને છે; ત્યારે સાંક્ય, ન્યાય અને વૈશેષિક દર્શન જેવા ધા-

૧. Maxmuller, The Hibbert Lectures, p. 343.

૨ Chapter X, 4. Buhler's Translation.

ક્ષણ સંપ્રદાયો આત્માને સર્વ વિશ્વવ્યાપી માને છે: વળી, જેથી રીતે બૌદ્ધોનો અસંલ્પ્ય ઉપવિભાગાત્મક પચ્ચસ્કન્ધવાદ જૈનોના અધ્યાત્મશાસ્ત્રમાં બિલકુલ જણાતો નથી. તેથી રીતે જૈનોનો અનિવિસ્તૃત ચેતનવાદ (Hylozoistic theory) જેવાં સિદ્ધાન્ત પણ બૌદ્ધોના તત્ત્વજ્ઞાનમાં દૃષ્ટિગોચર થતો નથી. જૈનોનો જ સિદ્ધાન્ત તેમના સંપૂર્ણ તત્ત્વજ્ઞાન અને આચારશાસ્ત્રમાં ઓતપ્રોત થયેલો જોવામાં આવે છે: અને જ સિદ્ધાન્તાનુસાર પ્રાણી અને વનસ્પતિ ઉપરાન્ત પૃથ્વી, જલ, તેજ અને વાયુ જેવાં તત્ત્વોનાં મૂલ્યમાં સૂક્ષ્મ અણુઓ સુદ્ધાંતે ચેતનાયુક્ત માનવામાં આવે છે. ભારતવર્ષના સઘળા તત્ત્વજ્ઞાનિઓ જ સર્વશક્તિ સુધીની જ્ઞાનની જુદી જુદી તરતમતાઓ-પાયરીઓ ને એક અતિ મહત્ત્વનો વિષય માન્યો છે. તદનુસાર જૈનો પણ આ વિષયમાં પોતાનાં એક સ્વતંત્ર મત ધરાવે છે. અને જ વિષયની તેમની પરિભાષા પણ પ્રાણજ્ઞ અને બૌદ્ધોથી તદ્દન જુદાજ પ્રકારની છે તે-ઓ જ્ઞાનના નીચે પ્રમાણેના પાંચ પ્રકારો માનેલા છે:—(૧) મતિ-સમ્યગ્ અવબોધ; (૨) શ્રુત-મતિ વાદ થયેલું સ્પષ્ટ જ્ઞાન; (૩) અવાધિ-એક જાતનું અતીન્દ્રિય જ્ઞાન; (૪) મન: પર્યાય-પરકીય વિચારોનું વિશદ જ્ઞાન; (૫) કેવલ-સર્વોત્કૃષ્ટ પ્રકારનું અથવા સંપૂર્ણ જ્ઞાન. જૈનોનો આ એક મૌલિક આધ્યાત્મિક સિદ્ધાન્ત છે, અને જ સિદ્ધાન્ત તીર્થંકરોનાં ચરિત્રો લખતી વખતે લેખકોના મગજમાં હમેશાં પ્રધાન પળે રમી રહે છે. આ પ્રકારનો સિદ્ધાન્ત બૌદ્ધગ્રંથોમાં બીલકુલ જોવામાં આવતો નથી. જ સિવાય વળે સંપ્રદાયોના મુખ્ય સિદ્ધાન્તો વચ્ચે નીજા પણ પવા ગ્રણા ભેદો બતાવી શકાય તેમ છે. પરંતુ તે વધારું વર્ણન ઘાંતતાં કદાચ ઘાત્તકને કંટાળો આવે તેવા ભયથી અમે આટલેથી જ વિરમીએ છીએ.

જૈનોના જે કેટલાક સિદ્ધાન્તો બૌદ્ધ સિદ્ધાન્તો સાથે મળતા આવે છે તે તો બ્રાહ્મણધર્મમાં પણ સમાન છે—ઉદાહરણ તરીકે પુનર્જન્મનો સિદ્ધાન્ત અર્થાત્ મરણ પછી પરીથી જન્મ ધારણ કરવો તે; કર્મનો સિદ્ધાન્ત—અર્થાત્ પૂર્વકૃત કર્મોના ધર્માધર્મરૂપી પરિણામો આ ભવમાં અગર આગામી

જન્મમાં જીવાત્માને ભોગવવાં પડે છે તે; તેમજ સંપૂર્ણ જ્ઞાન અને ઉત્તમચારિત્ર—કે જેથી મનુષ્ય ભવચક્રપરિભ્રમણનો અન્ત લાવી શકે છે તે;—રૂપાદિ સિદ્ધાન્તો લઈ શકીએ. વીજો પણ જૈનો અને બૌદ્ધોનો એક સમાન વિચાર છે, જેની અનુસાર જમ માનવામાં આવે છે કે અનાદિ કાલથી તીર્થંકરો અને બુદ્ધો એકજ પ્રકારના સિદ્ધાન્તો પ્રરૂપના ધાત્ર્યા છે તથા નષ્ટ થતા ધર્મને પુનર્જીવિત કરતા આધ્યા છે. જ વિચાર પણ બ્રાહ્મણોના વિષ્ણુના અવતારોવાલા વિચાર સાથે મળતો આવે છે. પરંતુ, તે ઉપરાંત, જૈન અને બૌદ્ધ જ શ્રેષ્ઠ ધર્મના એક અત્યાવશ્યક પ્રયોજનરૂપે પણ આ વિચારની ઉત્પત્તિ થયેલી સમજાય છે. કારણ જ છે કે બુદ્ધ અગર મહાવીરે જે કાર્ય પ્રતિપાદન કર્યું હતું તેને તેમના અનુયાયિઓ સત્ય—એકમાત્ર સત્ય માનતા હતા. હવે આ સત્યને પણ બ્રાહ્મણોના વેદની માફક અનાદિ કાલથીજ અસ્તિત્વ ધરાવતું માનવું જોઈએ. કારણ કે જો જમ ન માનવામાં આવે તો પ્રશ્ન થશે કે શું આ સત્ય તીર્થંકરોના અવતારની પૂર્વે વ્યતીત થઈ ગયેલા અનંત કાલ સુધી માત્ર અજ્ઞાતજ રહ્યું હતું? આ પ્રશ્નના ઉત્તરમાં દરેક 'બ્રહ્માલુ' જૈન અગર બૌદ્ધ જમજ કહેશે કે નહીં જમ વનવું તો તદ્દન અશક્ય છે. તે તો જમજ કહેશે કે આ સત્યધર્મનો ઉપદેશ મિત્ર મિત્ર કાલમાં ઉત્પન્ન થયેલા એવા અસંલ્પ્ય તીર્થંકરો તથા બુદ્ધો દ્વારા હમેશાં અપાતો આવ્યો છે અને ભવિષ્યમાં પણ તેથી જ રીતે અપાતો રહેશે. આ પ્રમાણે ભૂતકાલમાં અનેક ધર્મપ્રવર્તકો થઈ ગયાનો આ શ્રેષ્ઠ ધર્મોના વિચાર—સિદ્ધાન્ત ન્યાયશાસ્ત્રાનુસાર એક અત્યાવશ્યક પ્રયોજનરૂપે છે.

વળી જૈનોનો આ વિચાર—સિદ્ધાન્તને પ્રમાણશૂન્ય ટરાવી શકાય તેમ પણ નથી. કારણ કે બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં કોઈ પણ સ્થળે નિર્ગ્રંથોને એક નવીન ઉત્પન્ન થયેલા સંપ્રદાય તરીકે અથવા તો નાતપુત્રને તેના સંસ્થાપક તરીકે વર્ણવામાં આવ્યા નથી. તેથી બુદ્ધના સમયમાં નિર્ગ્રંથોનો સંપ્રદાય, તે પ્રાયઃ એક પ્રાચીન સંપ્રદાયજ મનાતો હતો, જમ સિદ્ધ થાય છે. તેમજ નાતપુત્ર તે, વળું કરીને પાર્શ્વ નામે તે-વીજામા તીર્થંકર દ્વારા સ્થાપિત થયેલા જૈન ધર્મના

એક માત્ર સુધારક સમજાતા હતા. પરંતુ આમાં આશ્ચર્ય ઉત્પન્ન કરવાવાળી વાત એ છે કે જૈનો તેમજ બૌદ્ધો વન્ને વર્તમાન યુગના ધર્મપ્રવર્તકોની સંખ્યા લગભગ સરખીજ માને છે.—પટલેકે જૈનો ૨૪ તીર્થંકરો માને છે; અને બૌદ્ધો ૨૫, બુદ્ધો માને છે. આ માન્યતાના વિષયમાં હું એ વાતની ના નથી પાડી શકતો, કે, આમાં એક સંપ્રદાયની વીજા સંપ્રદાય ઉપર અસર નહીં થઈ હોય. પરંતુ હું પટલું તો દૃઢતા-પૂર્વક કહી શકું છું કે આ વન્નેમાંના કયા ધર્મે પ્રથમ આ માન્યતા શોધી કાઢી હતી; અગર તો સૌથી પ્રથમ કોણે ગ્રાહ્યણો પાસેથી તેનો સ્વીકાર કર્યો હતો; તેનો નિર્ણય કરવો કઠણ છે. કારણકે બૌદ્ધોમાં જૈમ, બુદ્ધ-નિર્વાણ પછીની પ્રારંભની જ શતાબ્દિઓમાં પચીસ બુદ્ધોની ઉપાસના દાખલ થઈ હતી, તેમ ચોવીશ તીર્થંકરોની માન્યતા પણ, મહાવીર નિર્વાણ બાદ ઘણું કરીને વીજો જ શતાબ્દિમાં જુદા પડેલા દિગમ્બર તથા શ્વેતામ્બર એ વન્ને સંપ્રદાયોને સરખી રીતે માન્ય હોવાથી, તે પણ તેટલી જ જુની છે. પરંતુ આ પ્રશ્નનું નિરાકરણ કરવું તે અહીં કોઈ મહત્વનો વિષય નથી. કારણ કે પૂર્વેકૃત વિવેચન દ્વારા જે નિર્ણયો ઉપર આપણે આંખ્યા છીએ તે ઉપર તેની બિલકુલ અસર થતી નથી. તે નિર્ણયો એજ છે કે—(૧) જૈનધર્મ, એ બૌદ્ધધર્મથી તદ્દન સ્વતંત્ર રીતે ઉત્પન્ન થયેલો એક પ્રાચીન ધર્મ છે; તેનો વિકાસ પણ તેટલીજ સ્વતંત્ર રીતે થયેલો છે; તેમજ તેમાં બૌદ્ધ ધર્મમાંથી વિશેષ કંઈ લેવામાં આવ્યું નથી. તથા (૨) જૈનો તેમજ બૌદ્ધો એ વન્નેના તત્ત્વજ્ઞાન, આચાર, નીતિશાસ્ત્ર, અને જગદુત્પત્તિશાસ્ત્રનું મૂળ ગ્રાહ્યણો—ખાસ કરીને સંન્યાસિઓને આભારી છે.

અત્યાર સુધીની આપણી સઘળી ચર્ચા જૈનોના પવિત્ર ગ્રંથોમાંથી ઉપલબ્ધ થતી પરંપરાગત કથાઓની પ્રામાણિકતા ઉપર જ ચાલેલી છે. પરંતુ એક અતિશય વિશાલ જ્ઞાનવાળા અને કુશલ વિચારક વિદ્વાને એ પ્રામાણિકતાના સંબંધમાં જ શંકા કરેલી છે. એ વિદ્વાન તે મી. વાર્થ (Barth) છે. તે પોતાના *Revue de l'Histoire des Religions*, Vol. III, p. 90. માં નાતપુત્ત નામની એક ઐતિહાસિક વ્યક્તિનો સ્વીકાર કરે છે જરો, પરંતુ જૈનોના પવિ-

ત્ર ગ્રંથો, છેક ૬૦ સ. ૦ ની પાંચમી શદીમાં,—પટલેકે એ સંપ્રદાયની સ્થાપના થયા પછી લગભગ એક હજાર જેટલાં વર્ષો વ્યતીત થયાં બાદ, લખાણ હોવાથી તેના આધારે કોઈ પણ સચ્છ અનુમાન કરી શકવાના સંબંધમાં તે મોટી શંકા ધરાવે છે. જૈન-ધર્મના સંબંધમાં તેનો પથો અભિપ્રાય છે કે એ સંપ્રદાયના, તે પ્રાચીન કાળથી લઈ પુસ્તકો લખાતા સુધીના સમય સુધીના, સ્વસંવેદિત અને સતત એવા અસ્તિત્વનો—અર્થાત્ તેના ખાસ ખાસ સિદ્ધાન્તો અને નોંધોની નિરંતર પરંપરાનો—હજી સુધી નિર્ણયાત્મક રીતે નિકાલ થયો નથી. વળી તે જણાવે છે કે ‘ઘણી શદીઓ સુધી તો જૈનો, તેમના જેવા વીજા અનેક સંન્યાસિવર્ગો કે જે ફક્ત અપ્રસિદ્ધ અને અસ્થિરરૂપે પોતાનું જીવન ગાળતા હતા તેઓથી ભિન્નરૂપે ઓઢાયાજ ન હોતા.’ તેથી મિ. વાર્થના અભિપ્રાય મુજબ જૈનોની સાંપ્રદાયિક પરંપરાઓ તે માત્ર બૌદ્ધ પરંપરાઓના અનુકરણરૂપે, તેમણે પોતાનાં અસ્પષ્ટ અને અનિશ્ચિત સ્મરણોમાંથી ઉપજાવી કાઢેલી છે.

મિ. વાર્થનો આ મત એવા અનુમાન ઉપર સ્થિર થયેલો માલુમ પડે છે કે જૈનો પોતાનું પવિત્ર જ્ઞાન એક પેઢિથી વીજી પેઢિને આપવામાં ઘણાજ વેદર-કાર રહ્યા હતા; અને તેમ રહેવામાં કારણ એ છે કે તે ઘણી શદીઓ સુધી માત્ર એક નાનો અને અનુપયોગી સંપ્રદાય હતો. મિ. વાર્થની આ દલીલમાં હું કોઈ પ્રકારનું વજન જોઈ શકતો નથી. હું અહીં એ પ્રશ્ન પૂછું છું કે—જે ધર્મ પોતાના થોડાક અનુયાયિઓ વડે એક મોટા પ્રદેશ ઉપર પથરાયેલો હોય તે ધર્મ પોતાના મૌલિક સિદ્ધાન્તો અને પરંપરાઓને વધારે સુરક્ષિત રાખી શકે છે, કે જે ધર્મને એક મોટા જનસમૂહની ધાર્મિક જરૂરીઆતો પૂરી પાડવાની હોય છે તે! આ બેમાંની કઈ વાત વધારે સંભવિત છે? જો કે એકંદર રીતે આ પ્રકારની હેતુ-આસાત્મક તર્કપદ્ધતિથી આવા પ્રશ્નનો નિર્ણય થવો તો અશક્ય જ છે. ઉપર્યુક્ત બે પક્ષોના પ્રથમ પક્ષમાં યાદુદી તથા પારસીઓનું ઉદાહરણ રજૂ કરી શકાય છે અને વીજા પક્ષમાં રોમનકથોલિક ધર્મનો દાખલો આપી શકાય છે. પરંતુ જૈનો સંબંધી પ્રસ્તુત પ્રશ્નના વાદવિવાદનો નિર્ણય કરવામાં આવી

જાતના સામાન્ય સિદ્ધાન્તો ઉપર આધાર રાખવાની કોઈ આવશ્યકતા નથી કારણ કે તેઓને (જૈનોને) પોતાના સિદ્ધાન્તોનું પટલું વધુ સ્પષ્ટ જ્ઞાન હવું કે તેઓએ ઘણીજ નજીવી વાતમાં મતભેદ ધરાવનાર પુરુષોને પણ નિહ્વરૂપે જાહેર કરી, પોતાના શ્રદ્ધાલુઓના વિગ્નાલ સમુદાયમાંથી તેમને જુદા કરી દીધા હતા. આ કથનની સત્યતાના પ્રમાણ તરીકે ડૉ. લ્યૂમને (Dr Leimon) પ્રકટ કરેલી શ્વેતામ્બરો સંપ્રદાયની સાત નિહ્વો વિષેની પરંપરા^૧ છે. તથા ધિગમ્બરો, જે શ્વેતામ્બરોથી મહાધીર નિર્વાણ પછી પ્રાયઃ યાંજી અથવા ત્રીજી શાશ્વિદમાં, જુદા પડ્યા હતા, તેઓ કોઈ તેમના પ્રતિસ્પર્ધિઓ (શ્વેતામ્બરો) થી તાર્કિક સિદ્ધાન્તોમાં મોટો મતભેદ ધરાવતા નથી છતાં પણ આચારાધિપત્યક તેમના કેટલાક મિત્ર નિયમોને લીધે, શ્વેતામ્બરોએ તેમને પાન્થિઓના નામે ઘસોડ્યા છે.

આ સઘણી હકીકતો ઉપરથી આ વાત સ્પષ્ટ રીતે સિદ્ધ થાય છે કે જૈન આગમો [નું હાલનું સ્વરૂપ] નક્કી થયાં પહેલાં પણ જૈનધર્મ એવા અન્યવસ્થિત અથવા અનિર્દિષ્ટ સ્વરૂપમાં વિद्यમાન ન હતો, કે જેથી, તેનાથી અત્યંત મિત્ર એવા અન્યધર્મો (દર્શનો) ના સિદ્ધાન્તો દ્વારા તેનું અસલ સ્વરૂપ પરિવર્તિત અગર કલુપિત થયું હતું; એમ માનવાને આપણને કારણ મળે. પરંતુ આથી વિરુદ્ધ ઉપર્યુક્ત પ્રમાણો એમ તો સિદ્ધ કરી આપે છે જ્યાં કે તેમની સૂક્ષ્મમાં સૂક્ષ્મ માન્યતા પણ સુનિશ્ચિત સ્વરૂપવાળી હતી.

જેવી રીતે જૈનોના ધાર્મિકસિદ્ધાન્તોની વાતો આ રૂપે સિદ્ધ થઈ શકે છે તેવીજ રીતે તેમની પૈતિહાસિક પરંપરાવિષયક વાતો પણ સિદ્ધ થઈ શકે તેવી છે. વંશપરંપરાથી ચાલતી આવતી જે વિવિધ ગચ્છોની વિસ્તારયુક્ત ગુર્વાચલીઓ^૨ મળી આવે છે તથા જૈન આગમગ્રંથોમાં જે સ્થવિરાવલીઓ ઉપલબ્ધ થાય છે તે સ્પષ્ટ બતાવી આપે છે કે જૈનો પોતાના ધર્મનો ઇતિહાસ રાખવામાં કેટલો યથો રસ ધરાવતા હતા. હું એમ કાંઈ ચોક્કસ

નથી કહેતો કે આવી ગુર્વાચલીઓ પાછલ્લી પળ જોડી કઢાતી નથી કે અપૂર્ણ પટ્ટાચલીઓને પૂર્ણ, પટલે હિંદુઓના શબ્દમાં કહીએ તો 'પક્કી' બનાવી શકાતી નથી. કારણ કે દરેક સંપ્રદાયને, પોતાનો સંપ્રદાય એક પ્રતિષ્ઠિત આત્મપુરુષથી પ્રામાણિકરીતે ઉતરી આવેલો છે, એમ બતાવવા માટે પોતાની ગુરુપરંપરાના નામો ઉપજાવી કાઢવાની સ્વાભાવિક રીતેજ જરૂર પડે છે. પરંતુ કલ્પસૂત્રમાં જે એક, સ્થવિરો, ગણો અને શાસ્ત્રાઓની વિસ્તૃત નામાવલી આપેલી છે તેને કલ્પી કાઢવામાં જૈનોને કોઈ પણ પ્રકારનું પ્રયોજન હોય તેમ હું માની શકતો નથી. કલ્પસૂત્રમાં જેટલી વિગતો આપેલી છે—તેટલી પણ વિગતોનું જ્ઞાન ત્યાર પછીના જૈનોને રહ્યું ન હતું. તેમ તેથી અધિક જાણવાનો તેઓએ ક્યારે ડોલ્લ પણ કર્યો ન હતાં. ગુરુપરંપરાનો નોંધયોગ્ય યથોચ્ચ વહાર ચલાવવા માટે કલ્પસૂત્રમાં આપેલી સંક્ષિપ્ત સ્થવિરાવલી પર્યાપ્તજ હતી. તેમ છતાં પણ તેમાં આવેલી વિસ્તૃત સ્થવિરાવલી—કે જેમાં પણ કેટલાંક તો એકલાં નામોજ જોવામાં આવે છે—ને એવા વત સ્પષ્ટરીતે જણાવે છે કે જૈનો પોતાના પ્રાચીન ધર્માચાર્યો-સ્થવિરોની યાદગિરી રાખવામાં કેટલો યથો રસ ધરાવતા હતા. તે સ્થવિરાવલીમાં આલેખેલા યુગો તથા ઘનાઓની યથાર્થ માહિતી તેના પછી થોડીક જ શદીઓમાં નષ્ટ થઈ ગઈ હતી.

પરંતુ, માત્ર આટલું સિદ્ધ કરી બતાવવાથી કે જૈનો તેમના આગમોનું સ્વરૂપ નક્કી થયા પહેલાં પણ પોતાના ધર્મ તથા સંપ્રદાયને સતત ચાલુ રાખવા માટે, તેમ જ અન્યદર્શનીય સિદ્ધાન્તોના સંમિશ્રણયોગે ઉત્પન્ન થતી ભ્રષ્ટતાથી તેને યચાવી સુરક્ષિત રાખવા માટે યોગ્ય ગુણસંપન્ન હતા; આપણે આ વિષયમાં કૃતકાર્ય થઈ શકાતા નથી. આપણે એ પણ બતાવી દેવું જરૂરનું છે કે તેઓમાં જે જે વાત કરી શકવાનું સામર્થ્ય હતું તે સઘણું તેમણે સંપૂર્ણરીતે કર્યું હતું. આ ચર્ચા ઉપરથી આપણે સ્વાભાવિકરીતે જ વર્તમાન જૈનસાહિત્યના કાલની ચર્ચા ઉપર આવી જઈએ છીએ. આ વિષયમાં જો આપણે આટલું સિદ્ધ કરી શકીએ કે જૈન સાહિત્ય અથવા તો છેવટે તે પૈકી જે કેટલાક સૌથી પ્રાચીન ગ્રંથો

^૧ See Indische Studien, XVI.

^૨ See Dr. Klatt, Ind. Ant. Val. XI.

છે, તે જૈન પુસ્તકારોહણના સમયથી ઘણી શદીઓ પહેલાં રચાપલા હતા, તો તે દ્વારા આપણે જૈનોના (અંતિમ) તીર્થંકર અને પ્રાચીનમાં પ્રાચીન ગ્રંથો એ બન્ને વચ્ચેના ગાલાને, જો કે સર્વથા દૂર નહીં કરી શકીએ તો પણ ઘણે અંશે અલ્પ કરી આપવા સમર્થ થઈ શકીશું--

સર્વસંમત સંપ્રદાયની અનુસાર જૈનસિદ્ધાન્ત ચલ-ભિની સભામાં દેવર્ધિગણીના અધ્યક્ષપણા નીચે, નિશ્ચિત કરવામાં આવ્યો હતો. આ બનાવ વીર નિર્વાણ પછી ૫૮૦ (અથવા ૫૯૩) માં વર્ષે પટલે ૩૦ સ. ૪૫૪ (અગર ૪૬૭) માં^૧ બન્યો હતો, એમ કલ્પસૂત્ર [§ ૧૪૮.] ઉપરથી જણાય છે. સંપ્રદાય એવો છે કે જ્યારે દેવર્ધિગણીએ સિદ્ધાન્તને નિષ્પૃથક જવાના જો-ક્ષમમાં જોયો ત્યારે તેમણે તેને પુસ્તકાધિકૃત કરાવ્યો. તેની પહેલાં, આચાર્યો ક્ષુલ્લકોને સિદ્ધાન્ત શીખવતી વચ્ચે લિખિત ગ્રંથોનો બિલકુલ ઉપયોગ કરતા ન હોતા. દેવર્ધિગણીના સમય પછી જ લિખિત પુસ્તકોનો ઉપયોગ શરૂ થયો. આ હકીકત તદ્દન સાચી છે. કારણ કે પ્રાચીન સમયમાં પુસ્તકોનો બિલકુલ ઉપયોગ થતો ન હતો એમ આપણને બીજી હકીકતો ઉપરથી પણ જણાઈ આવે છે. બ્રાહ્મણો તો લિખિત પુસ્તક કરતાં પોતાની સ્મરણશક્તિ ઉપર જ વિશેષ આધાર રાખતા હતા. અને નિઃસંદેહરીતે જૈનોએ તેમજ બૌદ્ધોએ તેમનાં જ આ પ્રથાનું અનુકરણ કર્યું હતું. પરંતુ અત્યારે જૈનયતિઓ પોતાના શિષ્યોને શાસ્ત્ર શીખવતી વચ્ચે લિખિત પુસ્તકોનો ઉપયોગ અવશ્ય કરે છે. આ ઉપરથી આપણે માનવું પડે છે કે શિક્ષણ પદ્ધતિમાં થયેલો આ ફેરફાર દેવર્ધિગણીને આભારી છે, એમ બતાવનારો વૃદ્ધ સંપ્રદાય તદ્દન સાચો છે. કારણ કે આ બનાવ બહુજ મહત્વનો હોવાથી મુલી શકાય તેમ નથી. પ્રત્યેક આચાર્યને અથવા તો છેવટે પ્રત્યેક ઉપાશ્રયને આ પવિત્ર આગમોની નકલો પૂરી પાડવા માટે દેવર્ધિગણીને સિદ્ધાન્તના પુસ્તકોની ચરેચર

ઘણો મોટી સંખ્યા તૈયાર કરાવવી પડી હશે. હવે દેવર્ધિગણીએ સિદ્ધાન્તને પુસ્તકારૂઢ કરાવ્યો એવો જે લેખી સંપ્રદાય મળે છે તેનો ભાવર્થ પ્રાયઃ ઉપર પ્રમાણેનો જ હોવો જોઈએ કારણ કે એ તો ભાગ્યે જ માની શકાય તેવું છે કે તેની પહેલાં જૈન સાધુઓ જે કાંઈ કેંઢસ્થ કરતા હશે તેને સર્વથા નજ લખતા હોય. બ્રાહ્મણો વેદનું અધ્યયન કરાવવામાં લિખિત પુસ્તકોનો ઉપયોગ કરતા નથી છતાં પણ તેમની પાસે તેવાં પુસ્તકો તો જરૂર જોવામાં આવે છે. તેઓ (બ્રાહ્મણો) આ પુસ્તકોને ખાનગી ઉપયોગ માટે પટલે કે ગુરુની સ્મરણશક્તિને મદત કરવા માટે રાખે છે. મારું દૃઢ માનવું છે કે જૈનો પણ આ જ પદ્ધતિને અનુસરતા હશે. વલ્કે તેઓ બ્રાહ્મણોથી પણ વધારે આ પદ્ધતિનું અનુસરણ કરતા હશે, કેમકે બ્રાહ્મણોની માફક તેઓનું એવું માનવું તો હતું જ નહીં કે લિખિત પુસ્તકો અવિશ્વસ્ય છે. તેઓ તો માત્ર જે એક પ્રચલિત રિવાજ હતો, કે આગમનું જ્ઞાન મૌખિકરીતે જ એક પેઢી દ્વારા બીજી પેઢીને અપાવું જોઈએ, તેને લઈને જ લિખિત ગ્રંથોનો વિશેષ ઉપયોગ કરવામાં સંકોચાતા હતા. હું અહીં એમ પ્રતિપાદન કરવા ઇચ્છતો નથી કે જૈનોના પવિત્ર આગમો અસલથી જ છુટા છવાયાં પણ આગ્રી રીતે, પુસ્તકોમાં લેખેલાં જ હતા. અને એમ ન કહેવાનું જાણ્યું કારણ બીજું કાંઈ નહીં, પરંતુ બૌદ્ધ ભિક્ષુઓ પાસે લિખિત પુસ્તકો ન હતાં એમ જે કહેવાય છે તેજ છે. બૌદ્ધ ભિક્ષુઓ પાસે આવાં પુસ્તકો નહતાં તેના પ્રમાણ તરીકે એવું કહેવામાં આવે છે કે તેમનાં સૂત્રોમાં, જ્યારે પ્રત્યેક જંગમવસ્તુથી લઈને નાનામાં નાની અને ક્ષુદ્રમાં ક્ષુદ્ર એવી ઘરમાં વાપરવા લાયક વાસણો જેવી चीजોનો પણ કોઈને કોઈ રીતે ઉલ્લેખ થયેલો અવશ્ય જડે છે^૨ ત્યારે લિખિત પુસ્તકોની ક્યાંય પણ બિલકુલ ઉલ્લેખ થયેલો જોવામાં આવતો નથી. આ કથન, મારા માનવા પ્રમાણે, જ્યાં સુધી જૈન યતિઓ, ભ્રમણશીલ જીવન ગુજારતા હતા ત્યાં સુધી તેમને પણ લાગુ પડે તેવું છે. પરંતુ જ્યારથી તેઓ પોતાના તાબાના

૧. સંભવિત ન લાગતું હોવા છતાં એ શક્ય છે કે સિદ્ધાન્તનિર્ણયના સમય આ કરતાં ૬૦ વર્ષ પછી પટલે ૩૦ સ. ૫૧૪ (અથવા ૫૨૭) હોવો જોઈએ. જુઓ વલ્ક્યસૂત્ર, ઉપોદ્ધાત પૃ. ૧૭.

૨. Sacred Books of the East, Vol. XIII Introduction, p. XXXIII,

અથવા પોતાના માટે બનાવેલા ઉપાશ્રયોમાં રહેવા લાગ્યા ત્યારથી તેઓ પોતાનાં હસ્તલિખિત પુસ્તકો પળ અત્યારનાં માફક, રાખવા લાગ્યા હતા.

આ દૃષ્ટિએ જોતાં, દેવધર્મિગણોનો જૈન આગમસા-હિત્યસાથેનો સંબંધ, સાધારણરૂપે જેમ મનાય છે, તેનાથી કોઈ વિલક્ષણ પ્રકારનો હોય તેમ જણાય છે. તેમણે વસ્તુતઃ તેમની પહેલાં અસ્તિત્વધરાવતા હસ્તલિખિત ગ્રંથોને સિદ્ધાન્તના આકારમાં ગોઠવી દીધા હતા. અને તેમ કરતી વખતે જે જે સૂત્રો-આગમોના હસ્તલિખિત ગ્રંથો ઉપલબ્ધ થયા ન હો-તા, તે સઘળા તેમણે વિદ્વાન ધર્માચાર્યોના મુખેથી લખી લીધા હતા.

વળી, આવી રીતે ધાર્મિક શિક્ષણપદ્ધતિમાં દાખલ થયેલા આ નવા ફેરફારને લીધે પુસ્તકો એક અત્યાવશ્યક સાધનરૂપ થઈ પડેલાં હોવાથી પ્રત્યેક ઉપાશ્રયને એ આગમગ્રંથોની નકલો પૂરી પાડવા માટે તેની ગ્રંથી નકલો કરાવવામાં આવી હશે. આ રીતે જોતાં દેવધર્મિગણોની સિદ્ધાન્તની આવૃત્તિ તે, તેમની પહેલાં અસ્તિત્વ ધરાવતા પવિત્ર સિદ્ધાન્તગ્રંથોનો ભગમગ પ્રાચીન જ આકારમાં નિર્ણીત કરેલો એક નવો પાઠ માત્ર છે. આ આવૃત્તિકારે, સંભવ છે કે, પ્રાચીન સિદ્ધાન્તમાં કોઈક કોઈક ઉમેરા કર્યા હશે. પરંતુ આટલા ઉપરથી સંપૂર્ણ સિદ્ધાન્ત નવો બનાવવામાં આવ્યો છે એમ તો સ્પષ્ટ ન જ કહી શકાય. આ અંતિમ આવૃત્તિમાં નિર્ણીત થયેલા પાઠની પૂર્વેનો સિદ્ધાન્ત પાઠ પણ કેવળ યતિઓની સ્મરણશક્તિના આધારે જ લખવામાં આવતા પાઠ જેવો અવ્યવસ્થિત ન હતો પરંતુ તે પાઠ હસ્તલિખિત પ્રતિઓ સાથે મેલવેલો હતો.

આટલું વિવેચન કર્યા પાદ હવે આપણે જૈનોના પવિત્ર આગમોની રચનાનો સમયવિષયક વિચાર કરીએ. સંપૂર્ણ આગમશાસ્ત્ર પ્રથમ તીર્થંકરનું જ પ્રરૂપેલું છે એ જાતના જૈનોના વિચારનું તો નિરાકરણ કરવા ક્ષાતરજ હું અહીં સૂચન કરું છું. સિદ્ધાન્તના મુખ્ય ગ્રંથોનો સમય નક્કી કરવા માટે આપણે આના કરતાં વધારે સારાં પ્રમાણો-પુરાવાઓ એકત્ર કરવા જોઈએ. છૂટક અને અસંબદ્ધ સૂત્રા-લાયકો ગમે ત્યારે આગમગ્રંથોમાં દાખલ થઈ ગયા હોય તથા દેવધર્મિગણો પળ મળે તેને પોતાની આ-

વૃત્તિમાં સ્વીકારી લીધા હોય. પણ તેટલા ઉપરથી આપણે કોઈ પ્રકારનું સવલ્લ અનુમાન કાઢી શકીએ નહીં. હું મ્લેચ્છ-અથવા અનાર્ય જાતિઓની^૧ જે યાદીઓ એ સૂત્રોમાં મળી આવે છે તે ઉપર વધારે વજન મૂકી શકતો નથી. તેમજ સાતે નિહનવો, કે જેમાંનો છેલ્લો ધીરનિર્વાણ પછી ૫૮૪ વર્ષે થયો^૨ હતો, તેના ઉલ્લેખ ઉપરથી પણ કાંઈ અનુમાન કાઢી શકાય નહીં. આવા પ્રકારનાં વિગતોના સંબંધમાં જો એમ માનવામાં આવે કે જે આચાર્યો પોતાની શિષ્યપરંપરાને પેઢી દરપેઢી લિખિત યા કથિત રૂપે સિદ્ધાન્તપાઠ સોંપતા ગયા હતા, તે-ઓએ તે (વિગતો) ને સિદ્ધાન્તની ટોકા-ટિપ્પણી-રૂપે અગર તો મૂળ સુદ્ધામાં પણ દાખલ કરી દીધી હતી તો તેમાં કાંઈ અસ્વાભાવિકતા જેવું નથી. પરંતુ સિદ્ધાન્તમાં એક મહત્ત્વવાળી વાત એ જણાય છે કે તેમાં કોઈ પણ સ્થળે ગ્રીક લોકોના જંગો-લશાસ્ત્રની ગંધ સરસી જોવામાં આવતી નથી. કારણ કે જૈન જ્યોતિષશાસ્ત્ર તે, વાસ્તાવિકમાં, એક અર્થરાહિત અને અધ્યક્ષ્ય કલ્પના માત્ર છે. તેથી આપણે એમ અનુમાન કરી શકીએ છીએ કે જે જૈન જ્યોતિષશાસ્ત્રકારોને ગ્રીક જાતિના જંગોલ શાસ્ત્રની સ્થેજ પણ માહિતી હોત તો તેનું અસમ્બદ્ધ તેઓ જરૂર ન લખત. હિન્દુસ્થાનમાં ગ્રીસનું આ શાસ્ત્ર ઈ.સ. ની ત્રીજી અગર ચોથી શતાબ્દિમાં દાખલ થયું હતું એમ મનાય છે આ ઉપરથી આપણે એ રહસ્ય કાઢી શકીએ છીએ કે જૈનોના પવિત્ર આગમો તે સમયની પહેલાં રચાયાં હતાં.

જૈન આગમોની રચનાના સમયનિર્ણયમાટે ઘીનું પ્રમાણ તે તેની ભાષા વિષયક છે. પરંતુ, કમનસીબે હજી સુધી એ પ્રશ્નનું સ્પષ્ટ નિરાકરણ થયું નથી કે જૈનાગમો, જે ભાષામાં અત્યારે આપણને ઉપલ-બ્ધ થાય છે તે જ તેની મૂળભાષા છે

૧ અનાર્ય જાતિઓમાંનો 'આર્ય' શબ્દ તે, વેવરના ધારવા પ્રમાણે, કદાચ 'આર્ય' વાચક-વને, પરંતુ મારા માનવા પ્રમાણે તે શબ્દ 'તામિલો' નો વાચક છે. કારણ કે તામિલોની ભાષાને દ્રવિડીયન લોકો અરવમુ કહે છે.

૨. See Weber Indische Studien, XVI, P. 237.

અર્થાત્ જે ભાષામાં સૌથી પ્રથમ તેની સંકલતા થઈ હતી તેજ ભાષામાં અત્યારે આપણને ઉપલબ્ધ થાય છે, કે પાછલ્લથી, પેઢો દરપેઢોએ તે તે કાલની રુઢ (પ્રચલિત) ભાષાનુસાર તેમાં ઉચ્ચારણ-પરિવર્તન થતાં થતાં છેક દેવધિંગણીના નવીન સંસ્કરણ વચ્ચેની ચાલુ ભાષાના ઉચ્ચારણ પર્યંતની ભાષાઓ મિશ્રિત થયેલા આજે મળે છે? આ વે વિકલ્પોમાંનો મને તો બીજો જ વિકલ્પ સ્વીકરણીય લાગે છે. કારણ કે એ આગમોની પ્રાચીન ભાષાને ચાલુ ભાષાની રૂઢિમાં ફેરવવાનો વહીવટ ઠેઠ દેવધિંગણી સુધી ચાલુ રહ્યો હતો. અને અતે દેવધિંગણીના સંસ્કરણે જ તે વહીવટનો અંત આપ્યો હતો. એમ માનવાને આપણને કારણો મળે છે. જૈન પ્રાકૃત ભાષામાં સ્વરૂપસંગત વર્ણવિન્યાસનો જે અભાવ દૃષ્ટિગોચર થાય છે તેનું કારણ, જે લોકભાષામાં (Vernacular Language) તે પવિત્ર આગમો હમેશાં ઉચ્ચારાઈ રહ્યા હતા, તે ભાષામાં નિરંતર થતું રહેલું ક્રમિક પરિવર્તન જ છે. જૈન-સૂત્રોની લઘ્વી પ્રતિઓમાં એક શબ્દ એકજ રીતે લખેલો જોવામાં આવતો નથી. આ વર્ણવિન્યાસ-વિષયક વિભિન્નતાનાં મુખ્ય કારણોમાંનું એક કારણ તો વે સ્વરો વચ્ચે આવતા અસંયુક્ત વ્યંજનનો પ્રકૃતિભાવ (તદવસ્થ રાખવારૂપ), લોપ, કે મૃદૂકરણ થવારૂપ છે; અને બીજું કારણ વે સંયુક્ત વ્યંજનોની પૂર્વેના એ અને ઓ ને તદવસ્થ પટલે કાયમ રાખવારૂપ અથવા તેને ક્રમથી ઇ અને ઊ ના રૂપમાં પરિવર્તિત કરવા (લઘૂકરણ) રૂપ છે એ તો અશક્ય જ છે કે એકજ શબ્દના એકજ સમયમાં એકથી વધારે શુદ્ધ ગણવા લાયક ઉચ્ચારો હોઈ શકે. ઉદાહરણ તરીકે-ભૂત, ભૂય; ઉદગ, ઉદય અને ઉઝય; લોભ, લોહ; રૂપાદિ. આપણે આ પ્રકારની જુદી જુદી લેખન પદ્ધતિઓને ऐतिहासिक लेखनपद्धतियों मानવી જોઈએ. પટલે કે દેવધિંગણીવાળા સિદ્ધાન્તસંસ્કરણમાં સાહાય્યમૂત વનેલી વધી હસ્તલિખિત પ્રતિઓમાં જે જે ભિન્ન ભિન્ન લેખનપદ્ધતિઓ મળી આવતી હતી તે વધી પ્રામાણિક માનવામાં આવી હતી. અને તેથી તે લઘ્વી પદ્ધતિઓને એ સૂત્રોના નકલોમાં સાચવી રાખવામાં આવી હતી. આ વિચાર જો યુક્તિયુક્ત જણાતો હોય તો, આપણે, સૌથી પ્રાચીન અને રૂઢિવહિષ્કૃત લેખનપદ્ધતિને આગમરચનાના આદિ સમયની અથવા તો તેના નિકટ સમયની ઉચ્ચારસૂચક માની શકીએ. અને સૌથી અર્વાચીન લેખનશૈલીને સિદ્ધાન્તના અંતિમ સંસ્કરણના સમયની અગર તેની નજીકના સમયની ઉચ્ચારદર્શક માની શકીએ. વળી સૌથી પ્રાચીનરૂપમાં ઉપલબ્ધ થતી જૈન પ્રાકૃત ભાષાને, પાલી તથા હાલ, સેતુબન્ધ વિંગેરેની (પાછલા સમયની) પ્રાકૃત સાથે જો આપણે સરખાવીશું તો આપણને સ્પષ્ટ જણાશે કે જૈન પ્રાકૃત એ પાછલ્લની પ્રાકૃત કરતાં પાલોને વધારે મઝતી આવે છે. આ ઉપરથી આપણે પણ નિર્ણય ઉપર આવી શકીએ છીએ કે કાલગણનાની દૃષ્ટિએ પણ જૈનોના આગમો, ત્યાર પછીના સમયમાં થયેલા પ્રાકૃત પ્રંથકારોના પ્રંથો કરતાં દક્ષિણના બૌદ્ધસૂત્રો [ના રચના સમય] સાથે વધારે સમીપતા ધરાવે છે.

પરંતુ, આપણે જૈન આગમોની રચનાના સમયની મર્યાદા, તેમાં પ્રયોજાયેલા છંદોની મદદથી, આથી પણ વધારે નિશ્ચિતરાતે આંકી શકીએ તેમ છીએ. હું

૧. કોઈ અહીં એવી દલીલ કર્યા કરે છે કે આવી આર્થ પટલે રૂઢિવહિષ્કૃત લેખનપદ્ધતિના અસ્તિત્વનું કારણ માત્ર સંસ્કૃત ભાષાની અસર છે. પરંતુ જૈનોનું પ્રાકૃત-મંથાનું જ્ઞાન હમેશાં પટલું વધું સંગીન રહ્યું હતું કે જેથી તેમને પોતાના આગમોને સમજવા માટે સંસ્કૃતની સહાયતા લેવી જ પડતી નહોતી કે જેથી તેની તેના ઉપર અસર પડે. પરંતુ આથી ઉલટું, જૈનોના સંસ્કૃત પ્રંથોની પ્રતિઓમાં પ્રાકૃત શબ્દો જેવા લલેલા ઘણા શબ્દો મળી આવે છે. ઉપર પ્રમાણે માનતાં પણ કેટલીક જોડણીઓ તો એવી મળી આવે છે કે જેને સંસ્કૃતીકરણની દૃષ્ટિએ પણ સમજાવી શકાય તેમ નથી:-
ઉ ત. દારયને વદલે મઝતું દારગ એવું રૂપ લઈએ. આ શબ્દનું સંસ્કૃત પ્રતિરૂપ 'દારક' થાયછે પરંતુ 'દારગ' એવું થતું નથી.

૧ હું એમ નથી કહેતો કે કોઈ પણ શબ્દનાં એક કાલમાં વે રૂપો જ ન હોઈ શકે. વચ્ચે રૂપોવાળા ઘણા શબ્દો થયા હશે. પરંતુ પ્રાયઃ પ્રત્યેક શબ્દના વચ્ચે ત્રણ ત્રણ રૂપો એક સાથે પ્રચલિત રહેવાની વાવતમાં મને જરૂર શંકા રહે છે.

આચારાંગ અને સૂત્રકૃતાંગ સૂત્રના પ્રથમ સ્કંધોને, સિદ્ધાન્તના સૌથી પ્રાચીન ભાગ તરીકે માનું છું. અને મારા આ અનુમાનના પ્રમાણ તરીકે હું આ બે ગ્રંથોની (સ્કંધોની) ફેલી બતાવીશ. સૂત્રકૃતાંગ સૂત્રનું આશું પ્રથમ અધ્યયન, વૈતાલીય વૃત્તમાં રચાઈ છે. આ વૃત્ત ધર્મપદ આદિ દક્ષિણના અન્ય બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં પણ વપરાયેલો જોવામાં આવે છે. પરંતુ પાલીસૂત્રોનાં પદ્યોમાં પ્રયોજાયેલો વૈતાલીય વૃત્ત, તે, સૂત્રકૃતાંગ સૂત્રના પદ્યોમાં મળી આવતા વૈતાલીય વૃત્તની દ્રષ્ટિ જોતાં, વૃત્તના વિકાસ ક્રમના પ્રાચીન સ્વરૂપનો ચોક્કસ છે. આ વાવતમાં હું અહીં વધારે ન લખતાં. થોડાજ સમયમાં જર્મન ઓરિઅન્ટલ સોસાઈટીના જર્નલમાં, 'વેદની પછીના કાલના છંદો' ('Post-Vedic Metres') એ મથાળા નીચે પ્રકટ થનારા મારા લેખમાં વિસ્તૃતરીતે ચર્ચવા હજી હું. સંસ્કૃત સાહિત્યના સામાન્ય વૈતાલીય [વૃત્તના] શ્રેણી, કે જેમાંના કેટલાક લલિતવિસ્તરામાં પણ મળી આવે છે, તેની સાથે મુકાબલો કરી જોતાં, સૂત્રકૃતાંગનો વૈતાલીય વૃત્ત તેથી વધારે પ્રાચીન રૂપનો જણાય છે. વળી એ વાવત પણ અહીં લક્ષ્યમાં લેવા લાયક છે કે પ્રાચીન પાલીસાહિત્યમાં આર્યાવૃત્તમાં ગુથેલાં પદ્યો મળી આવતાં નથી; ધર્મપદમાં તો તે સર્વથા નથી જ. તેમ અન્ય બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં પણ તેવાં પદ્યો મારા જોવામાં આવ્યાં નથી. પરંતુ, આચારાંગ અને સૂત્રકૃતાંગ સૂત્રોમાં તો એક એક સંપૂર્ણ અધ્યયન આર્યાવૃત્તમાં લખેલું મળી આવે છે. આ આર્યાવૃત્ત, સામાન્ય [રીતે ઓલખાતા] આર્યાવૃત્તથી સ્પષ્ટ રીતે પ્રાચીન તથા તેનો જનક સ્વરૂપ દેખાય છે. સામાન્ય આર્યાવૃત્ત તે, સિદ્ધાન્તના વધારે અર્વાચીન ભાગોમાં, તથા પ્રાકૃત અને સંસ્કૃત ભાષાના બ્રાહ્મણ ગ્રંથોમાં અને લલિતવિસ્તરાદિ જેવા ઉત્તરના બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં પણ નજરે પડે છે. પ્રાચીન જૈનગ્રંથોમાં પ્રયોજાયેલો ત્રિષુષ્ટ છંદ પણ પાલી ગ્રંથોમાં મળી આવતા તે છંદ કરતાં અર્વાચીન રૂપનો અને લલિતવિસ્તરામાંના કરતાં પ્રાચીનરૂપનો છે. અંતે, લલિતવિસ્તરાદિ ગ્રંથોમાં જોવામાં આવતા આ સિવાયના વીજા અનેક પ્રકારના કૃત્રિમ વૃત્તો—જેમાંનો એક પણ વૃત્ત જૈનસિદ્ધાન્તમાં જડી આવતો નથી—

ઉપરથી એમ સિદ્ધ થતું હોય તેમ જણાય છે કે આ પ્રકારના અર્વાચીન ગ્રંથોની રચનાના સમય પૂર્વે જૈનોની સાહિત્ય વિષયક અભિરુચિ નિશ્ચિત થયેલી હતી. આ સઘળી વાવતો ઉપરથી આપણે એવો નિર્ણય કરી શકીએ છીએ કે, જૈનોના સૌથી પ્રાચીન સાહિત્યની સમયમર્યાદા પાલી સાહિત્ય અને લલિતવિસ્તરા એક ઉભયના રચનાકાલની વચ્ચે નિશ્ચિત થાય છે. પાલી પિટકોનું પુસ્તકાધિરોહણ (અર્થાત્ પુસ્તકરૂપે લક્ષણ) વટ્ટગામણિ જેણે ઈ. સ. પૂર્વે ૮૮ વર્ષે પોતાનું રાજ્યશાસન શરૂ કર્યું હતું તેના સમયમાં થયું હતું. જોકે આ સમયથી કેટલીક શદ્દો પૂર્વે પણ તે પિટકો અસ્તિત્વે તો ધરાવતાં હતાં જ. આ વિષયની ચર્ચા કરતાં છેવટે પ્રો. મેક્સ-મૂલરે નીચે પ્રમાણેના વિચારો જણાવ્યા છે 'તેટલા માટે, મારા વિચાર પ્રમાણે, અત્યારે તો આપણે બૌદ્ધ સૂત્રોના અર્વાચીનમાં અર્વાચીન રચના-સમય તરીકે ઈ. સ. પૂર્વે ૩૭૭ માં વર્ષને, નિર્ણય કરી, સંતોષ માનવો જોઈએ, કે જે સમયે દ્વિતીય સંગિતિ મળી હતી.'^૧ ત્યાર વાદ પણ એ પાલી સૂત્રોમાં ઊમેરા તથા ફેરફારો થયા હોય એ અસંભવિત નથી. પરંતુ આપણી પ્રસ્તુત ઢંલીલ ધર્મપદના કોઈ એકાદ ફકરાકે ભાગને આધારે ઊભી થયેલી ન હોઈ, તેમાં તથા અન્ય પાલીગ્રંથોમાં મળી આવતા વિવિધ છંદો ઉપરથી તારવી કઢાતા છંદ:શાસ્ત્રના નિયમોના પાયા ઉપર સ્થાપિત કરવામાં આવેલી છે. તેથી, એ ગ્રંથોમાં દાખલ થયેલા ઊમેરા યા ફેરફારોથી, અમારા એ નિર્ણયને—કે સમસ્ત જૈન સિદ્ધાન્ત સાહિત્ય ઈ. સ. પૂર્વે ચોથી શતાબ્દિ વાદ રચાયેલું છે,—તેને કોઈ પણ પ્રકારની હાનિ પહોંચી શકતી નથી.

આપણે ઉપર જોઈ ગયા કે જૈનસિદ્ધાન્તનો સૌથી પ્રાચીન વિભાગ લલિતવિસ્તરાની ગાથાઓથી અધિક જૂનો છે. આ ગ્રંથ (લલિતવિસ્તરા) ના વિષયમાં પદ્ય કહેવાય છે કે તેનો ઈ. સ. ૬૫ માં ચીની ભાષામાં અનુવાદ થયો હતો. આ ઉપરથી વર્તમાન જૈન સાહિત્યની ઉત્પત્તિનો સમય ઈ. સ.

^૧ Sacred Books of the East, Vol. X, p. XXXII.

ની શરૂઆત પહેલાં માનવો જોઈએ. ચઢી દક્ષિણ અને ઉત્તરના પદ્માત્મક વૈદ્ય ગ્રંથોની છન્દ અને મા-પાશીલી વિષયક વિશિષ્ટતાઓના પ્રાચીનતમ પદ્માત્મક જૈન સિદ્ધાન્તોમાં મળી આવતા અલ્પ યા અધિકાંશ સામ્યદ્વારા, આપણે જો, આ બે સીમાઓ વચ્ચે આવેલા પ્રસ્તુત વિવાદાસ્પદ સમયના કાલવિષયક અંતરનો વિચાર કરીએ છીએ તો જૈન સાહિત્યની શરૂઆતનો સમય, ઉત્તરના વૈદ્ય સાહિત્યના સમય કરતાં પાલી સાહિત્યના સમયની અધિક સમીપ રહે છે.

ચઢી આ પ્રકારના અનુમાનને શ્વેતામ્બર સંપ્રદાયની એક પરંપરાગત કથાદ્વારા સમર્થન પણ મળે છે. પરંપરા એવી છે કે જે વચ્ચે મદ્રવાહુ યુગપ્રધાન હતા તે વચ્ચે વાર વર્ષનો એક દીર્ઘ દુષ્કાલ પડ્યો હતો. તે દુષ્કાલના અંતે પાટલીપુત્રમાં સંય્ર મેળો થયો હતો અને તેણે સવ્રજાં અંગો એકત્ર કર્યા હતાં. આ મદ્રવાહુના અવસાનની તારીખ શ્વેતામ્બરોનાં કથન પ્રમાણે વીર પછો ૬૭૦ વર્ષે છે, અને દિગમ્બરોનાં કથન પ્રમાણે તે ૧૬૨ વર્ષે છે. આ ઉપરથી તેઓ ચંદ્રગુપ્ત, કે જે શ્વેતામ્બરોનાં ઉલ્લેખાનુસાર વી. નિ. પછી ૧૫૫ માં વર્ષે નાદીપ આવ્યો હતો, તેના સમયમાં થયા હતા. પ્રો. મેક્સમુલરે ચંદ્રગુપ્તનો સમય ई. સ. પૂર્વે ૩૧૫-૨૯૧ જણાવેલો છે તથા વેસ્ટરગાર્ડ (Westergaard) અને કેર્ન (Kern) વધારે સંભવિત રીતે તે સમય ई. સ. પૂર્વે ૩૨૦ જણાવે છે. આ વચ્ચે વચ્ચે જે અલ્પ સ્પષ્ટિત છે તે મહત્વનો નથી. લગભગ આ હિસાબે જૈન સિદ્ધાન્તનો રચના-સમય ई. સ. પૂર્વે ત્રીજી શદીના અંતમાં અગર તો ત્રીજી શદીની શરૂઆતમાં આવે છે. સાથે સાથે એ પણ લક્ષ્યમાં રાખવાનું છે કે અપરોક્ત સંપ્રદાય-પરંપરાનો ભાવાર્થ એ છે કે પાટલિપુત્રના સંય્ર, મદ્રવાહુની સાહાય્ય સિવાય જ અગીયાર અંગો એકત્ર કર્યા હતાં. મદ્રવાહુને દિગમ્બરો અને શ્વેતામ્બરો વચ્ચે સંસ્કૃત રીતે પોતાના આચાર્ય માને છે. તેમ છતાં શ્વેતામ્બરો પોતાના સ્થવિરોની ચાદીને મદ્રવા-

હુના નામથી આગળ નહીં ચલાવતાં, તેમના સમકાલીન સ્થવિર સંમૃતિ-વિજયના નામથી આગળ લંબાવે છે. એ ઉપરથી એમ ફલિત થાય છે કે પાટલિપુત્રના સંય્રે એકત્ર કરેલાં અંગો માત્ર શ્વેતામ્બરોના જ સિદ્ધાન્તો મનાયા હશે, પણ આખી જૈન સમાજના નહીં. આવી વસ્તુસ્થિતિ હોવાથી, આપણે સિદ્ધાન્ત રચનાના કાલને જો યુગપ્રધાન શ્રીસ્થૂ-લમદ્રના સમયમાં પડેલે ई. સ. પૂર્વે ત્રીજી શતાબ્દિના પ્રથમ ભાગમાં સ્થિર કરીએ તો તે જોડું નહીં ગણાય.

આપણી ઉપરોક્ત તપાસનું પરિણામ જો પ્રામાણિકતાને પાત્ર થતું હોય,—અને તે બનવું જ જોઈએ કારણ કે તેના વાધક પ્રમાણોનો અભાવ છે—તો વર્તમાન જૈન સાહિત્યની ઉત્પત્તિનો સમય ई. સ. પૂર્વે લગભગ ૩૦૦ વર્ષ પહેલાં અથવા એ ધર્મની ઉત્પત્તિ પછી લગભગ બે શતાબ્દી પહેલાં સૂચી શકાય નહીં પરંતુ આ ઉપરથી એમ તો ખાસ કાંઈ માની લેવાની જરૂર નથી કે જેનો પાસે પોતાના અંતિમ તીર્થંકર અને સિદ્ધાન્તરચનાના આ સમય વચ્ચેના અન્તરાલમાં, એક અનિશ્ચિત અને અસંકલિત ધાર્મિક તથા પૌરાણિક પરંપરા ઉપરાંત ખાસ આધાર રાખવા યોગ્ય વધારે સુદૃઢ ધર્મસાહિત્ય હતું જ નહીં. કારણ કે એમ જો માનવામાં આવે તો પછી જૈન પરંપરાની વિશ્વસનીયતાના વિષયમાં જે વિરોધદર્શક પ્રમાણો મો. થર્થે રજૂ કરેલાં છે તે વાસ્તવિકતામાં પાયા વિનાનાં છે એમ કહી શકાય નહીં. તથાપિ એક યાવત અહીં ધ્યાનમાં લેવા લાયક છે. અને તે એ છે કે શ્વેતામ્બરો અને દિગમ્બરો એ વચ્ચેનું એમ કહેવું છે કે અંગો સિવાય પહેલાંના કાલમાં તેનાથી પણ વધારે પ્રાચીન એવાં ચૌદ પૂર્વો હતાં. અને તે પૂર્વોનું જ્ઞાન ક્રમથી નષ્ટ થતું થતું અંતે સર્વથા નષ્ટ થઈ ગયું હતું.

ચૌદ પૂર્વોના વિષયમાં શ્વેતામ્બરોની માન્યતા આ પ્રમાણે છે:—ચૌદ પૂર્વો એ દષ્ટિવાદ નામના ચારમા અંગમાં સમાઈતાં હતાં અને તે મહાવીર નિર્વાણ પછી ૧૦૦૦ વર્ષે વ્યતીત થયા પહેલાં નષ્ટ થયાં હતાં. જો કે આ કથન પ્રમાણે ચૌદ પૂર્વો તો સર્વથા નષ્ટ

૧ પરિધિ ૧, ૫૪.

૨. Geschiedenis van het Buddhisme in Indië, ii, p. 266 note.

થઈ ગયાં છે, તો પણ દૃષ્ટિવાદ અને તેમાં અંતર્ગતે થયેલાં ચૌદ પૂર્વોના વિષયોની વિસ્તૃત સૂચિ અઘા-વધિ સમવાયાંગ નામના ચોથા અંગમાં તથા નન્દી-સૂત્રમાં આપેલી જોવામાં આવે છે.^૧ આ દૃષ્ટિવાદ-માં આવેલાં પૂર્વો તે સ્વાસ મૂલ પૂર્વોજ હતાં કે, જેમ હું માનું છું, તેના સારરૂપ હતાં. તેનો આપણે નિ-શ્ચય કરી શકતા નથી. ગમે તેમ હોય પરંતુ તેમાં સમાવેલા વિષયોના સંબંધમાં એક ઘણી વિસ્તૃત પરંપરા તો અવશ્ય જોવામાં આવે છે.

સ્વરેખર આપણે, કોઈ પણ નષ્ટ થઈ ગયેલા એવા અ-તિ પ્રાચીન ગ્રંથ યા ગ્રંથસમૂહના વિષયમાં મઠી આવતી પરંપરાને સાચી માની લેવામાં ઘણીજ સાવધાની રાખવાની જરૂર છે. કારણ કે આવા પ્રકારની પ્રાચીન પરંપરા, ઘણીક વચ્ચે કેટલાક ગ્રંથકારોદ્વારા પોતાના સિદ્ધાન્તોની પ્રામાણિકતાના પૂરાવા રૂપે કલ્પી કાઢવામાં આવી હોય છે. પરંતુ પ્રસ્તુત વાતમાં, પૂર્વોના વિષયમાં મઠી આવતી આટલી વધી સામાન્ય અને પ્રાચીન પરંપરાની સ-ત્યતાના વિષયમાં શંકા કરવાને આપણને કોઈ કારણ જણાતું નથી. કારણ કે અંગોની પ્રામાણિક-તા તે કોઈ પૂર્વોને લઈને માનવામાં આવતી નથી. અંગો તો જગતના નિર્માણના સમકાલીન (પટલે અનાદિ જ) મનાય છે. તેથી જો પૂર્વો સંબંધી આ પરંપરાને માત્ર એક કૂટલેખ રૂપે જ માનીએ તો તેનો કોઈ પણ અર્થ થઈ શકે નહીં. પરંતુ તેને જો સત્ય-રૂપે માની લઈએ તો, જૈનસાહિત્યના વિકાસવિષ-યક આપણા વિચારો સાથે તે ચપાવર વંધાયેલતી આવી જાય છે. ' પૂર્વ ' એ નામજ એ વાતની પૂરેપૂરી સાક્ષી આપે છે કે તેનું સ્થાન પાછળથી થીજા એક નવા સિદ્ધાન્તે લીધું હતું. અર્થાત્ પૂર્વનો અર્થ પહેલાનું એવો થાય છે.^૨ અને આ દૃષ્ટિએ જ્યારે આપણે વિચા-

ર્યા છીએ ત્યારે નિઃસંદેહરીતે પ્રતીત થાય છે કે, જે સમયે પાટલીપુત્રના સંઘે અંગસાહિત્ય એકત્ર કર્યું હતું, તેજ સમયથી પૂર્વોનું જ્ઞાન વ્યુત્ક્રિષ્ટ થતું ચાલ્યું હતું, એવી જે હકિકત કહેવાય છે, તે તદ્દન વાસ્તવિક છે. ઉદાહરણ તરીકે ભદ્રવાહુ પછી ચૌ-દમાંથી દશજ પૂર્વોનું જ્ઞાન અવાશિષ્ઠ રહ્યું હતું, એવું જે કથન છે તે આપી શકાય છે.

આ ઉપરથી સ્વાત્તી થશે કે ચૌદ પૂર્વવિષયક પ્રચ-લિત પરંપરાનો અમે જે એવો સુલાસો કરેલો છે કે પૂર્વો તે સૌથી પ્રાચીન સિદ્ધાન્તગ્રંથો હતા, અને તેના પછી તેનું સ્થાન એક નવા સિદ્ધાન્તે લીધું હતું, તે યુક્તિસંગત છે. પરંતુ આટલો સુલાસો આપ્યા વાદ આ પ્રશ્ન ઉભો થાય છે કે આવી રીતે પ્રાચીનસિ-દ્ધાન્તનો ત્યાગ કરવામાં તથા નવા સિદ્ધાન્તનું નિ-રૂપણ કરવામાં શું પ્રયોજન ઉપસ્થિત થયું હશે ? આ વિષયમાં માત્ર કલ્પના સિવાય અન્ય કોઈ ગતિ નથી. અને તદ્દનુસાર મારો સ્વતંત્ર અભિપ્રાય આ પ્રમાણે છે:—આપણે જાણીએ છીએ કે દૃષ્ટિવાદ ના-મના વારમા અંગમાં ચૌદ પૂર્વો આવેલાં હતાં તથા તે પૂર્વોમાં મુખ્યત્વે કરીને દૃષ્ટિઓનું પટલે જૈન અને જૈનેતર દર્શનોના તાત્વિક વિચારો—અભિપ્રાયોનું વર્ણન કરેલું હતું. આ ઉપરથી આપણે એમ કલ્પી શકીએ છીએ કે તેમાં મહાવીર અને તેમના પ્રતિસ્પર્ધી ધર્મસંસ્થાપકોની વચ્ચે થયેલા વાદોનું વર્ણન આવે-લું હશે. મારા આ અનુમાનના સમર્થનમાં પ્રત્યેક પૂર્વના નામના અંતે જે ' પ્રવાદ ' એ શબ્દ સૂકવામાં આવ્યો છે તે આપી શકાય છે. આ ઉપરાંત એ પણ એક વાત ધ્યાનમાં રાખવાની છે, કે મહાવીર કોઈ એક નવા ધર્મના સંસ્થાપક ન હતા, પરંતુ, જેમ મેં સિદ્ધ કરેલું છે, તેઓ એક પ્રાચીન ધર્મના સુધારક માત્ર જ હતા. તેથી પણ એ ઘણુંજ સંભવિત છે કે મહાવીરને પોતાના પ્રતિપ્રશ્નોના અભિપ્રાયોનું મજબુતરીતે સંકલન કરવું પડ્યું હશે; અને જાતે સ્વીકારેલા અગર સુધારેલા એવા પોતાના સિદ્ધા-ન્તોનું ઘણુંજ સમર્થન કરવું પડ્યું હશે. આમ કહે-વાનું કારણ એ છે કે પ્રત્યેક ધર્મસંસ્થાપકને યથા-ર્થમાં પોતાના નવા સિદ્ધાન્તોનું પ્રતિપાદન કરવા પૂરતો જ પ્રયત્ન કરવાની આવશ્યકતા રહે છે. તેને

૧ See Weher, Indische Studien, XVI p. 341.

૨. ' પૂર્વ ' શબ્દનો અર્થ જૈનાચાર્યોએ નીચે મુજબ સમ-જાવેલો છે:—તીર્થંકરે પોતેજ પ્રથમ પોતાના ગણધર નામે પ્રસિદ્ધ શિષ્યોને પૂર્વોનું જ્ઞાન આપ્યું હતું. ત્યાર પછી ગણધ-રે એ અંગોની રચના કરી. આ કથન, પહેલાજ તીર્થંકરે અંગો પ્રસેપ્તો છે એવા આગ્રહ સાથે જોડેલું અંશે એવક ધરાવતું નથી, તેટલું અંશે તે સ્વરેખર મુખ્ય ગર્ભિત હેલાયા યોગ્ય છે.

એક સુધારકના જેટલો પ્રવાદી બની જવાના જોશ-મને ઉપાડવાની અવશ્યકતા રહેતી નથી. હવે વચ્ચે જતાં જ્યારે મહાવીરના તે પ્રતિસ્પર્ધિઓ આ જગત-માંથી અદૃશ્ય થઈ ગયા હતા, તથા તેઓ દ્વારા સ્થાપિત થયેલા સંપ્રદાયો પણ નામશેષ થઈ ગયા હતા, ત્યારે મહાવીરના એ પ્રવાદો, કે જે તેમના ગણધરોએ સ્મરણમાં રાખ્યા હતા તથા તેઓ દ્વારા પાછળની શિષ્યપરંપરાને પણ જે સોંપવામાં આવ્યા હતા, તે પાછળના લોકોમાં મહત્ત્વવાળા ન મનાયા હોય એ સ્વાભાવિક છે. એ કોણ કહી શકે એમ છે કે જે એક જમાનામાં આ પ્રકારનાં દાર્શનિકોના તત્ત્વજ્ઞાન વિષયક વિવિધ પ્રવાદો અને કલહો વ્યાવહારિક ઉપયોગિતાવાળા જણાયા હોય તેજ પ્રવાદો અને કલહો, સર્વથા પરિવર્તિત થયેલા એવા અન્ય જમાનામાં પણ તેવાજ ઉપયોગી સિદ્ધાન્તો તરીકે મનાઈ શકે? આ જ વિચારાનુસાર, નવા જમાનાના જૈનસમાજને પોતાની સામાયિક પરિસ્થિતિને અનુકૂળ આવે તેવા એક નવા સિદ્ધાન્તની જરૂર જણાઈ હશે અને તેને પરિણામે, મારું માનવું છે કે, નવા સિદ્ધાન્તની રચના અને જૂના સિદ્ધાન્તની (પૂર્વોના જ્ઞાનની) ઉપેક્ષા થવા પામી હશે.

પ્રો. વેબર^૧ દ્વષ્ટિવાદ અંગને નષ્ટ થવામાં એવું કારણ જણાવે છે કે શ્વેતામ્બર સમાજ જ્યારે એક સમયે એવી અવસ્થાએ આવી પહોંચ્યો હતો કે જે વચ્ચે તેને પોતાના (પ્રચલિત) વિચારો અને તે ગ્રંથમાં (દ્વષ્ટિવાદમાં)-અલેખિત વિચારોની વચ્ચે અત્યંત અનુપેક્ષણીય અંતર સ્પષ્ટ દેખાવા લાગ્યું, ત્યારે એ ચૌદ પૂર્વોવાળું દ્વષ્ટિવાદ અંગ ઉપેક્ષાને પાત્ર થયું હતું. પરંતુ, પ્રો. વેબરની આ કલ્પનાની વિરુદ્ધ, શ્વેતામ્બરોની માફક દિગમ્બરો પણ, પોતાના પૂર્વો અને તે ઉપરાંત અંગો સુદ્ધાને વ્યુત્થિત થયેલાં જણાવતા હોવાથી, હું તેમના મતને મળતો થઈ શકતો નથી. તેમજ નિર્વાણની તુરંતજ પછીની વે શતાબ્દિમાં જૈન સમાજે પદ્ધતી વધી શ્વેતપથી પ્રગતિ કરી લીધી હોય કે જેથી તે સમાજના વચ્ચે મુખ્ય સંપ્રદાયોને પોતાના પૂર્વ સિદ્ધાન્તનો ત્યાગ કરવા જેટલી આવશ્યકતા જણાઈ હોય, એમ પણ માની વેસવું તદ્દન

અસંભવિત લાગે છે. વીજી એ પણ વાચત લક્ષ્યમાં રાખવા યોગ્ય છે કે જૈન ધર્મમાં વે સંપ્રદાયો થયા પછી તેના તત્ત્વજ્ઞાનમાં વીલકુલ ફેરફાર થયો ન હોતો—અર્થાત્ તે તદ્દન સ્થિરજ રહ્યું હતું. આનું પ્રમાણ માત્ર એજ છે કે આ વચ્ચે સંપ્રદાયોના તત્ત્વજ્ઞાનમાં કોઈ વિશેષ ઉલ્લેખયોગ્ય ભેદ નજરે પડતો નથી. આચારશાસ્ત્રના વિષયમાં અલગત આ વચ્ચે સંપ્રદાયોમાં કેટલાક ભિન્ન ભિન્ન વિચારો જોવામાં આવે છે, પરંતુ, અત્યારે પણ જ્યારે શ્વેતામ્બરોમાં લાંબા સમયથી, તેમના વર્તમાન સિદ્ધાન્તસમૂહમાં વિહિત થયેલા ઘણાક આચારોનું પાલન બંધ થયેલું હોવાં છતાંપણ તેઓ તેના તરફ ઉપેક્ષા ધરાવતા નથી ત્યારે તેવાજ કારણને લઈને તે વચ્ચે અસ્તિત્વ ભોગવતા એવા તેમના પૂર્વાત્મક સિદ્ધાન્તસમૂહના વિષયમાં શ્વેતામ્બરોએ તેટલા બધા આવેશમાં આવી જઈ પોતાના પૂર્વ સાહિત્યનો સર્વથા ત્યાગ સુધાં કરી નાંખ્યો હતો એમ માનવું યુક્તિસંગત જણાતું નથી. આ ઉપરાંત નવા સિદ્ધાન્તનો જે સમય આપણે ઉપર નિર્ણય કર્યો છે, તે સમય પછી પણ લાંબા વચ્ચે સુધી પૂર્વો વિચિત્ર હતાં એમ માનવામાં આવે છે પરંતુ, આખરે જ્યારે પૂર્વોના પ્રવાદમય સાહિત્ય કરતાં નવા સિદ્ધાન્તદ્વારા જૈન તત્ત્વો વધારે સ્પષ્ટરીતે પ્રકાશિત થતા દેખાવા લાગ્યાં અને વધારે વ્યવસ્થાસર લોકો સમક્ષ મૂકાવા લાગ્યાં ત્યારે પૂર્વો સ્વભાવિક રીતે જ, નહીં કે તેમની બુદ્ધિપૂર્વક કરાવેલી ઉપેક્ષાને લીધે, અદૃષ્ટ થયાં હતાં.

આપણી પ્રસ્તુત ચર્ચા જે આ સ્થળે સમાપ્ત થાય છે તે ઉપરથી, હું ધારું છું કે, આટલી વાચતો પ્રકટરીતે સિદ્ધ થયેલી છે—જૈનધર્મની ઉત્ક્રાંતિ (પ્રગતિ) કોઈપણ સમયે કોઈપણ અત્યંત અસાધારણ એવા બનાવોથી, જવરદસ્ત અટકાવ પામેલી નથી. વીજી એ કે આપણે આ ઉત્ક્રાંતિની શરૂઆતની અવસ્થા ઉપરાંત તેની સચલી વિવિધ અવસ્થાઓનો પત્તો મેળવા શકીએ છીએ, અને ત્રીજું એ કે જૈનધર્મ એ નિર્વિવાદરીતે સ્વતંત્ર મનાતા એવા કોઈ પણ ધર્મની માફક સ્વતંત્રરીતે ઉત્પન્ન થયેલો છે—પરંતુ કોઈ અન્ય ધર્મ અનિશ્ચય કરીને વૌદ્ધધર્મની શાખા રૂપે

વિલકુલ પ્રવર્તેલો નથી. આ વિષયની વિશેષ વિગતોના સંશોધનનું કાર્ય ભાવિ શોધખોળ ઉપર નિર્ભર છે તેમ છતાં મને આશા છે કે, હું જૈનધર્મની સ્વતંત્રતાના સંબંધમાં તથા તેના પવિત્રગ્રંથ (આગમો) ને, તે ધર્મના પ્રાચીન ઇતિહાસને કટ કરવામાં

ક લેખી સાધનોરૂપે સ્વીકારવાના વિષયમાં, અત્યાર સુધી જે કેટલાક વિદ્વાનોના મનમાં અમુક સંદેહો સ્થાન પામી રહ્યા છે, તેને દૂર કરવા સફળ થયો છું.

સાહિત્ય-સમાલોચન.



૧

ધનપાલકૃત ભવિષ્યદત્ત કથા.

[ડૉ. હર્મન જેકોબી દ્વારા સંપાદિત અને જર્મનીમાં પ્રકાશિત.]

પ્રખ્યાત જર્મન વિદ્વાન ડૉ. હર્મન જેકોબીનું નામ એક જૈન સ્કૉલર તરીકે જગતપ્રસિદ્ધ છે. તેમણે જૈનધર્મ અને જૈન સાહિત્યનો ઘણો ઝુંડો અભ્યાસ કર્યો છે. જૈન ધર્મના કેટલાય સંસ્કૃત-પ્રાકૃત ગ્રંથોનું તેમણે સંશોધન અને સંપાદન કર્યું છે. તેમજ કેટલાયનું જર્મન અને ઇંગ્રેજી ભાષામાં ભાષાંતર કર્યું છે. જૈન ધર્મ, જૈન ઇતિહાસ અને જૈન સાહિત્ય ઉપર તેમણે અનેક લેખો લખ્યા છે, અને ભાષણો આપ્યાં છે. આજે અમે, આ નીચે, ડૉ. સાહેબે સંપાદન કરેલા એક જૈન પુસ્તકનું સંક્ષિપ્ત પરિચય આપવા ઇચ્છીએ છીએ જે હમણાંજ પ્રકટ થયું છે.

એ પુસ્તકનું નામ ભવિષ્યદત્ત કથા ('ભવિષ્ય-યત્ત કથા') છે અને તે ધનપાલ નામે એક વણિક વિદ્વાનનું બનાવેલું છે. ધનપાલ નામે પ્રસિદ્ધ જૈન ગ્રાહ્ય પંડિત, જે વિક્રમની ૧૧ મીં શતાબ્દીમાં, સંસ્કૃતસાહિત્યપ્રસિદ્ધ નૃપતિ ભોજના સમયમાં થઈ ગયો છે અને જેણે તિલકમંજરી નામે એક શ્રેષ્ઠ જૈન આખ્યાયિકા બનાવી છે, તેનાથી આ ધનપાલ ભિન્ન સમજવો જોઈએ. તે ધનપાલ જાતે ગ્રાહ્ય હતો અને આ ધનપાલ ધંકડવંશીય વૈશ્ય જાતિનો છે. એના પિતાનું નામ મહેશ્વર અને માતાનું નામ ધનશ્રી હતું. એ ઉપરાંત, એ ક્યાંનો વતની હતો અને ક્યારે થઈ ગયો, તે જણાવું નથી. એની કૃતિની ભાષા ઉપરથી જે અનુમાન થાય છે તે પ્રમાણે એ વિક્રમની ૧૨ મી અગર ૧૩ મી શતાબ્દી થયો હોવો જોઈએ.

ભવિષ્યદત્ત કથા જૈન સમાજમાં જાણીતી છે અને સંસ્કૃત પ્રાકૃતમાં બનેલી એ નામની વીંજી પણ ઘણી કથાઓ ઉપલબ્ધ થાય છે. કથાની વસ્તુમાં જ્ઞાન પંચ-મીનું માહાત્મ્ય વર્ણવામાં આવ્યું છે. ધનપાલની આ કથાનું સંપાદન કરવામાટે ડૉ. જેકોબીએ જે પરિશ્રમ ઉઠાવ્યો છે તે તેમાં રહેલી વસ્તુની દૃષ્ટિએ નહિ પરંતુ તેની ભાષાની દૃષ્ટિએ છે. આ કથાની રચના અપભ્રંશ ભાષામાં થયેલી છે. અપભ્રંશ ભાષા એ ભારતવર્ષની હિન્દી ગુજરાતી આદિ પ્રચલિત મુખ્ય ભાષાઓની અનંતર જનની છે. મૂળ સંસ્કૃતમાંથી પ્રાકૃત નિકળી, પ્રાકૃતમાંથી અપભ્રંશ જન્મી અને અને અપભ્રંશમાંથી આજની દેશભાષાઓ અવતરી; એવું ભાષાશાસ્ત્રનું કથન છે. અપભ્રંશ ભાષાનું વ્યાકરણ તો હેમચંદ્રસૂરિએ પોતાના સિદ્ધહેમ વ્યાકરણના આઠમા અધ્યાયના ચોથા પાદમાં વિસ્તૃત રીતે આપેલું છે પરંતુ ભાષાશાસ્ત્રિઓને આજ સુધીમાં એ વાતની સ્મર ન હોતી મળી કે, કેટલાક છૂટા છવાયા દોહાઓ કે તેવાજ વીંજા પદ્યો સિવાય એ ભાષામાં રચાયેલા અલંકાર ગ્રંથો પણ જૈનોના જૂના પુસ્તક મંડારોમાં પડ્યા પડ્યા સહ્યા કરે છે. સન્ ૧૯૧૪ ની સાલમાં જ્યારે ડૉ. જેકોબી હિંદુસ્થાનની મુલાકાતે આવ્યા ત્યારે તેમણે એ સંબંધમાં કેટલીક પૂછ-પરછ કરી, જેના પરિણામે અમદાવાદ નિવાસી સાહિત્યરસિક શ્રાવક ભાઈ શ્રીકેશવલાલ પ્રેમચંદ મોદીના પ્રયત્નથી પ્રસ્તુત કથાની એક પ્રતિ તેમના જોવામાં આવી. ડૉ. જેકોબી એ ગ્રંથ જોઈ વહુ ખુશી થયા અને તુરત તે આજના પુસ્તકનો ફોટોગ્રાફ પડાવી લઈ પોતાની સાથે જર્મની લઈ ગયા. પાછળથી તેમણે એ ગ્રંથની વીંજી પ્રતો મેલવવામાટે

પણ પ્રયત્ન કર્યો અને તેના લીધે પાટણના મંડારમાંથી તેનો એક જૂનો પ્રતિ કઢાવી પ્રવર્તક શ્રીકાંતિ-વિજયજીવ ડૉ. જેકોવી તરફ મોકલી આપી. પરંતુ કમનસીબે તેજ અરસામાં જર્મનોએ ઇંગ્લંડ સાથે મહાયુદ્ધ જાહેર કર્યો, તેથી તે પ્રતિ ડૉ. જેકોવીને ન મળતાં થોડા મહિના પછી પાછી પાટણ આવી. ડૉ સાહેબને યુદ્ધના કારણે વીજી પ્રત મલ્લવાની આશા રહી નહીં અને યુદ્ધની સમાપ્તિ સુધી વાટ જોઈને તેમનાથી વેશી શકાય નહીં, તેથી તેમણે એક માત્ર તે ફોટોગ્રાફના આધારે જ મહાન્ પરિશ્રમ ઉઠાવી આ ગ્રંથની પ્રસ્તુત આવૃત્તિ, લઢાઈ દરમ્યાન જ (સન્ ૧૯૧૮ માં) પ્રકટ કરી છે અને તેમ કરી તેમણે ભાષાશાસ્ત્રિઓ માટે એક નવીન વિ-પયના ઉપયોગી અધ્યયનનું મહાદ્વાર खुल्लું કર્યું છે.

ए समग्र पुस्तकમાં डेमी ४ पेजी जेवी पहोली साईझना एकंदर ३२० लगभग पानां छे, जेमां प्रारंभनां १०० पानां प्रस्तावना अने विवरणमां (जे जर्मन भाषामां लखाएलां छे) रोकाएलां छे. विवरणमां प्रथम ग्रंथ, कर्ता, ग्रन्थगत वस्तु आदिनो परिचय आपवामां आब्यो छे अने पछी, लंवाणथी अपभ्रंश भाषा, तेनो इतिहास, तेनो विकास, तेनुं व्याकरण, तेनुं छन्दशास्त्र, अन्यान्य भाषाओ साथे रहैलो तेनो संबंध, साहित्यमां मळेलुं तेने स्थान, इत्यादि अनेक प्रकारना ज्ञातव्य विषयो, घणी ऊंडी शोधखोल साथे, चर्चवामां आब्यो छे.

विवरण पछी मूल ग्रंथ आप्यो छे जेणे १२० पृष्ठ रोक्कां छे ग्रंथ रोमन लिपिमां मुद्रित करवामां आब्यो छे. ग्रन्थान्ते, ग्रन्थमां आवेला वधा शब्दोनो कोप आप्यो छे अने ते साथे दरेक शब्दनो संस्कृत प्रतिशब्द पण आप्यो छे.

पोताना देशमां चाली रहैला महान् युद्धना भयंकर अशांतिकाळमां पण जगन्ने एक तदननवीन विषयनुं उपयोगी ज्ञान आपवा माटे, आटली वृद्धावस्थामां उठावेला अथान परिश्रम निमित्ते, विद्वत्समाज तरफथी डौ. जेकोवी खरेखर बहु बहु धन्यवादने पात्र छे.

आ असुल्य पुस्तकना विषयमां अमने वे बात बहु खटके छे:-एक तो एनी प्रस्तावना तेमज विवरण

जे जर्मन भाषामां लखवामां आव्यां छे, ते इंग्रेजीमां लखायां होत तो वधारे ठीक थात. कारण के भारतना अभ्यासियोमां जर्मन भाषा जाणनार विरल ज होय छे. तेथी वधा जिज्ञासु अभ्यासियो एनो यथेष्ट लाभ नहिं मेळवी शके. बीजुं. मूल ग्रन्थ जे रोमन लिपिमां छापवामां आव्यो छे ते पण भारतीयोनी दृष्टिए निरुपयोगी जेवो ज छे. भारत वर्षना मोटा मोटा स्कॉलरो सुधाने रोमनलिपिमां छापेला संस्कृत-प्राकृत ग्रंथो वांचता घणो परिश्रम पडे छे; ता पछी साधारण अभ्यासिओना माटे तो कहेवुं ज शुं परंतु ए विषयमां तो अमने संतोष राखवानुं कारण छे के वडोदरा राज्य तरफथी प्रकट थती गाइकवाड ओरिएण्टल सीरीजमां पण ए ग्रंथ छपाय छे जेनी लिपी देवनागरी (बालबोध) ज छे, जो कोई पण विद्वान् आ पुस्तकनी बहुतथ्यपूर्ण प्रस्तावनानो इंग्रेजीमां के देश भाषामां जो अनुवाद करी-करावी आपे तो भाषाशास्त्रनी दृष्टिए बहु मोटो लाभ थवानो संभव छे.

२

सूरीश्वर अने सम्राट्.

[कर्ता मुनिराज विद्याविजय. प्रकाशक, यशो-विजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर. पृष्ठसंख्या, २१-४१७. पाकुं पूंठुं. किं. रु० २-८-०]

जैन समाज तरफथी, आधुनिक गुजराती भाषामां, जे वे चार मुनियो अगरश्रावकोना हाथे लखाएलां नानां मोटां ५-१० पुस्तको प्रकट थयां छे, ते सौमां मुनिराज विद्याविजयजिनुं लखेलुं ' सूरीश्वर अने सम्राट् ' नामनुं पुस्तक प्रथम स्थान भोगवे छे, एम कहेवामां जराए अतिशयोक्ति जणाती नथी. मुनिजीनी आ कृतिए केवल जैन साहित्यमां ज नहिं परंतु समग्र गुजराती साहित्यमां-खास करी-ने ऐतिहासिक पुस्तकोमां-एक उपयोगी उमेरो कार्यों छे, एम कहेतां आमने आनंद थाय छे.

जगद्गुरु हीरविजयसूरिए सुगल सम्राट् अकबरना बादशाही दरबारमां जई, धर्मजिज्ञासु कहे

અથવા રાજ્યનીતિકુશલ કહો-ગમે તે કહો પરંતુ તે અસાધારણ વ્યક્તિત્વવાળા વાદશાહને જે રીતે એ ત્યાગી જૈનાચાર્ય પોતાના ધર્મનો પ્રભાવોત્પાદક બોધ આપ્યો હતો, અને તે બોધને સાંભળી જે રીતે તે દયાલુ વાદશાહ જૈનધર્મ પ્રતિ પોતાની સવિશેષ પ્રીતિ પ્રકટ કરી હતી, તેનો સંક્ષિપ્ત પણ સારભૂત ઇતિહાસ અમે અમારા રૂપારસકોષ નામના પુસ્તકની લાંબી પ્રસ્તાવનામાં (જે હિન્દી ભાષામાં લખા-
પણી છે) આજ થી ૪-૫ વર્ષ અગાઉ આપ્યો હતો. તે પ્રસ્તાવના લખતી વખતે જ અમારા મનમાં પવો સંકલ્પ થયો હતો કે પ્રસંગ મળે, હીરવિજયસૂરિના જીવન સંવન્ધમાં મળી આવતાં સઘટાં સાધ-
નોને એકત્ર કરી, તે ઉપરથી એક સવિસ્તર જીવન ચરિત્ર એ મહાન્ જૈનચિંતનું અવશ્ય તૈયાર કરવું જોઈએ. પ્રસ્તુત પુસ્તક જોઈને અમને આનંદ થાય છે કે અમારો એ શુભ સંકલ્પ, અમારા એક યોગ્ય મુનિ-
વંધના સાથે ઉત્તમરીતે પૂર્ણ થયો છે.

હીરવિજયસૂરિનું આસન જગ ધર્મગુરુઓમાં એક ઉચ્ચ સ્થાન ભોગવે છે. અકબર જેવા મહાનુ-
દ્ધિવાન. વ્યવહારચતુર, મૃદુહૃદયી, સૂક્ષ્મદર્શી અને રાજનીતિકુશલ સમ્રાટના અંતઃકરણમાં, તેના દેશ, જાતિ, ધર્મ, સ્વભાવ, અને ધ્યેયથી તદ્દન ચિરુદ્ધ સંસ્કારવાળા ધર્મગુરુનો વિરાકિપ્રબોધક ધર્મબોધ અનાગ્રાસે ઉચ્ચસ્થાન મેળવે એ એક જગ-
તના ઇતિહાસમાં આશ્ચર્યજનક નોંધ ગણાવી જોઈએ.

એ પ્રતાપી સમ્રાટના, તેની આસપાસની સમગ્ર પરિ-
સ્થિતિથી અને તેના આસપાસના આનુગાંશિક જીવન-સંસ્કારોથી ચિરુદ્ધ જતા અનેક વિચારો અને આચારો મિશ્ર મિશ્ર ઇતિહાસકારોએ અનેક સ્થલે નોંધ્યા છે, પરંતુ તે આચાર-વિચારોનું યથાર્થ કારણ કોઈ પણ લેખકે સ્પષ્ટરીતે આપેલું ન હોવાથી આધુનિક ઇતિ-
હાસશોષ-આસ કરીને યુરોપીય ઇતિહાસશોષ-એ વિષયમાં અનેક તર્ક-ચિત્તર્કો ચલાવ્યા છે અને હજી-
એ ચલાવ્યે જાય છે. પણ કહેતાં શેવ થાય છે કે, જૈન સાહિત્યમાં, એ વિષયનો સ્વરો સુલાસો આપના-
રા અસંખ્ય પુરાવાઓ વિદ્યમાન હોવા છતાં, કોઈ પણ વિદ્વાને આજ સુધીમાં એ પુરાવાઓની તપાસ

સુધાં કરી નથી. યુરોપના વિદ્વાનો તો વિદેશી હોવાથી કદાચ એ વાતમાં ઓછા ઉપાલંબને પાત્ર હોઈ શકે પરંતુ ભારતના પુરાતત્ત્વજ્ઞોની એ વિષયક ઉપેક્ષા તો સરેસર અક્ષમ્ય જ ગણી શકાય. યુરોપ-
ના કેટલાક વિદ્વાનોને અકબરની વિવિધ અને પર-
સ્પર વિરુદ્ધ બધી જીવનવાર્તાઓમાં ક્રિશ્ચિયન ધર્મની અસરના સ્વપ્ન આવવાં લાગ્યાં અને તેમનાં સ્વ-
પ્રસ્મરણોને અમારા દેશવંશુ વિદ્વાનો યથાર્થરૂપે પણ માનવા અને કહેવા લાગ્યા; પરંતુ કોઈના મનમાં એ વિચાર નથી આવ્યો કે જૈનોના સંકડાં લેખોમાં અકબરની જે આટલી વધી પ્રશંસા કરવામાં આવી છે તેનું શું કારણ છે, એ તરફ પણ જરા દ્રષ્ટિ તો નાંખી જોઈએ. અમારા લોકોની આવીજ અનુકરણ-
પ્રિયતા કે પ્રમાદશીલતાને જોઈને પરદેશી વિદ્વાનો જે અમને મૌલિકતાશૂન્ય અને ગંભીરવિચારવિહી-
નની કુત્સિત ઉપાધિઓથી સંવોધ્યા કરે છે તેમાં કેટલેક અંશે સત્ય અવશ્ય છે, એમ અનિચ્છાએ માનવાની ફરજ પડે છે.

અકબરના પ્રધાન મંત્રી શેખ અબુલ-ફઝલે આઈન-એ-અકબરીમાં અકબરના સામ્રાજ્યમાંની પ્રધાન પ્રધાન વ્યક્તિઓની જે લાંબી ટીપ આપી છે, તેમાં, પ્રથમ શ્રેણિમાં ગણાવેલા સર્વે શ્રેષ્ઠ મનુષ્યોમાં હીરવિજય સૂરિનું પણ નામ દર્જ છે; તેમજ પાંચમી શ્રેણિના મનુષ્યોની નામાવલીમાં એ સૂરિના પ્રધાન શિષ્ય વિજયસેનસૂરિ અને ભાનુચંદ્ર ઉપાધ્યાયનાં નામો પણ આપેલાં છે. પરંતુ આજથી દશ વર્ષ પહેલાં કોઈ પણ દેશી કે વિદેશી વિદ્વાને અબુલ ફઝલે નોંધેલા સર્વે શ્રેષ્ઠ મનુષ્યોમાંના એક એવા એ હીરવિજયસૂરિ, તેમજ પાંચમાં વર્ગમાં આપેલા વિજ-
યસેનસૂરિ અને ભાનુચંદ્ર નામના પુરુષો કોણ છે અને શા કારણથી તેમના નામો આઈન-એ-અક-
બરી જેવા મહાન્ ગ્રંથમાં નોંધવામાં આવ્યાં છે તેની તપાસ કરવા માટે પરિશ્રમ કર્યો ન હતો. 'હીરવિજય સૂરિ' એ નામ ફારસીમાં કોઈ જુદા પ્રકારની જોડ-
ખીથી લખવામાં આવ્યું હશે તેથી આઈન-એ-અક-
બરીના ઇંગ્રેજી અનુવાદ કરતાં મી. વ્લૉકમેને તે નામ ઇંગ્રેજીમાં 'હારિગીસૂર (Harigi Sur)' આવી રીતની જોડખી કરીને આપ્યું છે. મી. વ્લૉકમેને આઈન-એ-

અકબરીમાં આપેલી નામોની ઉક્ત લાંબી ટોપમાંની ઘળીક વ્યક્તિઓની, વીજા વીજા इतिहासो उपरથી પળ ઓલ્લાણ આપવા વાવત મહેનત લીધી છે; પરંતુ 'હરિજીસૂર' નામ માટે તેણે કોઈ પળ નોંધ કરી નથી.

આઈન-ए-અકબરીમાં આ નામ સુપ્રસિદ્ધ જૈનાચાર્ય હીરવિજયસૂરિનું છે, એવું જ્ઞાન કરાવવાનું માન અમારા સદ્ગત સ્નેહી શ્રીયુત ચિમનલાલ ડાહ્યાભાઈ દલાલ, એમ. એ. ને ઘટે છે. તેમણે બનારસથી નિકળતા 'જૈનશાસન' નામક એક સામયિક પત્રના, વીર સંવત્ ૨૪૩૯ ના દીવાળીના યાસ અંકમાં 'હીરવિજયસૂરિ અથવા અકબરના દરબરમાં જૈનો' (HIRAVIJAYASURI or THE JAINAS AT COURT OF AKBAR) એવા મથાળા નીચે, 'C' એવી સંક્ષિપ્ત સહી સાથે, એક પ્રામાણિક લેખ ઇંગ્રેજીમાં પ્રકટ કરાવ્યો હતો. તે લેખમાં જ ભાઈ શ્રીદલાલે સૌથી પ્રથમ પુરાતત્ત્વજ્ઞોને એ અજ્ઞાત વાવતની માહિતી આપી હતી કે આઈન-ए-અકબરીમાં જે 'હરિજીસૂર' એવું નામ મળી આવે છે તે નામ વીજા કોઈનું નથી પણ જૈન સમાજ અને જૈન इतिहासમાં પ્રસિદ્ધ એવા આચાર્ય હીરવિજયસૂરિનું જ છે. અને તેની સાથે તેમણે સંક્ષેપમાં હીરવિજયસૂરિ અને અકબરના સમાગમનો સપ્રમાણ इतिहाસ પણ આલેખી બતાવ્યો હતો.

ભાઈ શ્રીદલાલનો એ મૌલિક આવિષ્કાર વાંચીને જ પ્રસિદ્ધ પુરાતત્ત્વજ્ઞ મિ. વિન્સેન્ટ એ. સ્મીથ સાહેબે 'અકબરના જૈન ગુરુઓ' (THE JAIN TEACHERS OF AKBAR) એ નામનો એક ગ્રંથનો ઇંગ્રેજી નિબંધ 'ભાંડારકર સ્મારક નિબંધ સંગ્રહ' (R. G. Bhandarkar Commemoration Volume) માં પ્રકાશિત કરાવ્યો હતો, અને તેમાં અકબરના જીવનમાં હીરવિજયસૂરિ એ ભજવેલો ભાગ સંક્ષિપ્ત પરંતુ સ્પષ્ટ રીતે વતાવવામાં આવ્યો હતો. તેવીજ રીતે પોતાના 'અકબર' નામના પ્રસિદ્ધ પુસ્તકમાં પણ એ સાચા इतिहाસ-

૧ એ લેખ પાછવ્યો, વડોદરાથી પ્રકટ થતા 'લાઈવેરી મેસેલેની' નામના ત્રૈમાસિકમાં પણ પ્રકાશિત થયો હતો.

પ્રેમી વિદ્વાને, હીરવિજયસૂરિને કેટલેક અંશે ઊચિત સ્થાન આપી, એ વાવતમાં इतिहाસવેત્તાઓથી થતી આવતી મોટી ભૂલનું કાંઈક સંશોધન કર્યું છે.

સૂરીશ્વર અને સમ્રાટમાં મુનિરાજ વિદ્યાવિજયજી એ એક વિષય અનેક ऐतिहासिक પ્રમાણોના આધારે સંપૂર્ણરીતે આલેખ્યો છે અને સમ્રાટ અકબરના इतिहाસમાં જગદ્ગુરુ હીરવિજયસૂરિ કેવું મહત્ત્વનું સ્થાન ધરાવે છે તે સારી પેઠે સમજાવ્યું છે. પુસ્તકને પ્રામાણિક બનાવવામાટે મુનિજી એ યથેષ્ટ સંભાળ લીધી છે. પરિશિષ્ટમાં જે કેટલાક કારસી ફરમાનો આપ્યા છે, તે આજ સુધીમાં જાણમાં નહિં આવેલા એવા છે અને તેથી પુસ્તકની મહત્તામાં ઉપયોગી ઉમેરો થયો છે. હીરવિજયસૂરિ, અકબર અને અબુલ-ફઝલ વિગેરેનાં ચિત્રોથી પુસ્તકની શોભા વધારે આકર્ષક બની છે. પરંતુ, હીરવિજયસૂરિની જે મૂર્તિનું ચિત્ર આપ્યું છે તે તેનું સુંદર અને આલ્હાદક નથી, તેથી કોઈ વીજી વધારે સુંદર કૃતિ મૂર્તિનું ચિત્ર મેળવવામાં આવ્યું હોત તો વધારે ઠીક લાગત.

અંતે, આવું ઉપયોગી, પ્રામાણિક અને મૂલ્યવાન પુસ્તક લખવા માટે મુનિરાજ વિદ્યાવિજયજીનું પુનઃ એકવાર અભિનંદન કરી અમે અમારું વક્તવ્ય સમાપ્ત કરીએ છીએ અને દરેક જૈન અને જૈનેતર વિદ્વાનને એક વાર આ પુસ્તક અવશ્ય જોઈ જવાની યાસ મલામણ કરીએ છીએ.

૩

તત્ત્વાર્થ પરિશિષ્ટ મૂલ અને ભાષાંતર.

['મૂલ કર્તા આગમોદ્ધારક આચાર્ય શ્રીસાગરનંદ સૂરીશ્વરજી,—ભાષાંતર કર્તા મુની (?) માનસાગરજી. પ્રસિદ્ધ કર્તા માસ્તર ઉમેદચંદ રાયચંદ. મુ. અમદાવાદ. સૂલ્ય જ્ઞાનાભ્યાસ. ' પૃ. ૧૮-૧૪૮,]

સમગ્ર જૈન સાહિત્યમાં એક તત્ત્વાર્થસૂત્ર જ એવો ગ્રંથ છે કે જેના અધ્યયનથી જિજ્ઞાસુ મનુષ્ય સંક્ષેપમાં જૈન ધર્મનું સંપૂર્ણ સ્વરૂપ સમજી શકે છે. એ ગ્રંથ જૈન ધર્મના શ્વેતાંબર અને દિગંબર-બંને સંપ્રદાયોને સમાનભાવે પૂજ્ય અને માન્ય છે. અલબત્ત, બંને

સંપ્રદાયોના સૂત્રપાઠમાં કેટલોક પાઠ-ભેદ અવશ્ય રહેલો છે, પરંતુ તેથી તેની પૂજ્યતામાં કોઈ પણ પ્રકારનો ભેદ નથી. એ સૂત્ર પર વસ્તે સંપ્રદાયોના સમર્થ પૂર્વાચાર્યોએ ભાષ્ય ટીકા આદિ અનેક વ્યાખ્યાના કરેલાં છે અને તેનો સર્વત્ર પ્રચાર પણ છે. પણ સૂત્રના પરિશિષ્ટરૂપે સમાલોચિત પુસ્તકની રચના કરવામાં આવી છે. વાસ્તવિકમાં, તત્વાર્થ-સૂત્રની રચનામાં ઈર્ષા કોઈ જાસ ન્યૂનતા નથી કે જેથી તેની પૂર્તિ કરવા માટે પરિશિષ્ટ યનાવવાની આવશ્યકતા પ્રતીત થાય. અને કદાચ તેથી આવશ્યકતા જણાય તો પણ તે કાર્ય પૂર્ણ અનુરૂપ તો થીજા ઉમાસ્વાર્તાથી જ થઈ શકે. થીજાએ તેવો પ્રયત્ન કર્યો તે અમારા લઘુમત પ્રમાણે તો એક પ્રકારે અનધિકારચેષ્ટા જેવું જ ગણાય. પૂર્વના મહાન મહાન આચાર્યોએ કેટલાક શાસ્ત્રોની પૂર્તિ માટે પણ કેટલાક પ્રયત્નો કર્યા છે ચરા પરંતુ તે વાર્તિક કે ભાષ્યના રૂપમાં છે, સૂત્રના રૂપમાં તો નહિ જ. અસ્તુ.

મૂળ તત્વાર્થશાસ્ત્રની સૂત્ર-સંખ્યા શ્વેતામ્બરોના પાઠ પ્રમાણે ૩૪૪ છે અને દિગમ્બરોના પાઠ પ્રમાણે ૩૫૭ છે. જો કે આમ સંખ્યાની દૃષ્ટિએ જોતાં વસ્તે સંપ્રદાયોના પાઠમાં માત્ર ૧૩ જ સૂત્રોનો ફેર જણાય છે પરંતુ વાસ્તવિકમાં તેમ નથી. કારણ કે શ્વેતામ્બરીય સૂત્રપાઠમાંના કેટલાંક સૂત્રો દિગમ્બરીય સૂત્રપાઠમાં નથી અને તેથી જ રીતે દિગમ્બરીય સૂત્રપાઠના કેટલાંક સૂત્રો શ્વેતામ્બરીય સૂત્ર પાઠમાં નથી. થીજા અધ્યાયમાં ડ્યાં જંબૂદ્વીપનું ભૌગોલિક વર્ણન આવેલું છે ત્યાં એક સાથે શ્વેતામ્બરીય પાઠ કરત, દિગમ્બરીય પાઠમાં ૨૦—૨૧ સૂત્રો સવેથા વધારે છે. સવેથા વધારે પડલા માટે કે તે સૂત્રોમાં આપેલું વર્ણન શ્વેતામ્બરીય પાઠમાં બિલ્કુલ નથી. શ્વેતામ્બરીય સૂત્ર પાઠના સમર્થ ટીકાકાર આચાર્ય હરિમદ્રે દિગમ્બરીય પાઠના એ આધિક્ય માટે ટીકા પણ કરી છે અને જણાવ્યું છે કે આ સૂત્રો પાછળથી કોઈએ વનાવી લીધાં છે અને સૂત્રકારના સંક્ષેપ કરનાત્મક અભિપ્રાયની દૃષ્ટિએ તેનું અસ્તિત્વ અયુક્ત છે. આશ્ચર્ય છે કે જે જાતનાં સૂત્રોને હરિમદ્રસૂત્ર-સૂત્રકારની અપેક્ષાએ અયુક્ત જણાવે છે તે જ જાતનાં નવાં સૂત્રો રચી તત્વાર્થના પરિશિષ્ટરૂપે સાગરાનંદ-સૂત્રિ પ્રકટ કરાવે છે.

આ પરિશિષ્ટાત્મક સૂત્રોની સંખ્યા ૧૩૦ જેટલી છે અને એ સૂત્રોમાં ઘણા ભાગે સ્ત્રગોલ અને ભૂગો-લના વિષયનાં જ પૂર્તિ કરવામાં આવી છે. જૈન માન્યતા પ્રમાણેના સ્ત્રગોલ અને ભૂગોલનું વર્ણન કેટલાક સૂત્રગ્રંથો સિવાય મુખ્ય કરીને શ્વેતસમાસ અને સંપ્રહણી નામના પ્રકરણ ગ્રંથોમાં વિસ્તૃતરીતે વર્ણવામાં આવેલું છે. એ ગ્રંથો વધારે વિસ્તૃત હોવાથી સંક્ષેપમાં તેનું જ્ઞાન કરાવવામાટે આ પરિશિષ્ટની રચના સાગરાનંદસૂત્રિએ કરી છે, એમ ભાષાંતરકાર જણાવે છે. પરિશિષ્ટકાર આચાર્ય, આ વિષયક જૈન સાહિત્યના શબ્દ-શરીરના સમર્થ જ્ઞાતા છે એમાં સંશય નથી. એ વિષયમાં તેમના જેટલું સૂક્ષ્મ જ્ઞાન ભાગ્યે જ થીજા કોઈ મુનિ થરાવતા હશે. પરંતુ તેમની આ પ્રસ્તુત કૃતિ અમને તો અનુપયુક્ત અને અસંવદ્ધ જેવી લાગે છે. કારણ કે એક તો આ પરિશિષ્ટમાં આપેલાં સૂત્રોની રચનામાં કોઈ પણ ક્રમ ગોઠવવામાં આવ્યો નથી, અને થીજું સૂત્રોની સંકલના પણ ક્ષિપ્રાર્થ મરેલી છે. જો આવા પ્રકારના પરિશિષ્ટની તેમને જાસ આવશ્યકતા જ જણાઈ હતી તો જાતે નવીન સૂત્રકાર થવાની આકાંક્ષા કરતાં જૂના ગ્રંથોમાંથી તેવાં સૂત્રો પૂંદી કાઢી સંપ્રહકાર થવાની ઇચ્છા વધારે પ્રશંસનીય ગણાઈ હોત. તત્વાર્થ સૂત્રકારની જ કૃતિરૂપે મનાતાં જંબૂદ્વીપસ-માસ નામના ગ્રંથમાંથી આ પરિશિષ્ટ પૂર્ણરીતે સંપ્રહી શકાય તેમ છે. તેમજ દિગમ્બર સંપ્રદાયના સુપ્ર-સિદ્ધ પ્રથરત્ન તત્વાર્થરાજવાર્તિકમાં આ જાતનાં એકથી એક ઉત્તમ અને અત્યુપયોગી વાર્તિકો મરેલાં છે, તેમાંથી પણ જો આ વિષયનાં વાર્તિકો ઉદ્ધૃત કરવાં હોય તો ઘણી સારી રીતે કરી શકાય તેમ છે. પ્રસ્તુત પરિશિષ્ટમાં પણ કેટલાંક સૂત્રો તો દિગમ્બરીય સૂત્ર પાઠમાંથી જ—શબ્દો ઉલટ પાલટ કરીને જેમનાં તેમ—લીધેલાં અમારા જોવામાં આવે છે. તેથી તેમ ન કરતાં તેના તેજ શબ્દોમાં જો તે સૂત્રો રાખ્યાં હોત તો, આમાં જે ક્ષિપ્રાર્થતા નજરે પડે છે તે ન પડત.

મુનિ માનસાગરજીનું કરેલું ભાષાન્તર વહુજ સાધારણ પ્રતિનું છે અને કેટલેક ટેકાણે તો ઉલટો અર્થ-વિપર્યાસ કરાવે તેવો છે. ઉદાહરણ તરીકે

एक दाखलो आपीशुं. पांचमां पानामां नीचे प्रमाणे सूत्र छे.—

‘उध्वृतःश्चकिहरियुगलार्हजिनयतिदेश-

सम्यक्त्वदन्तः ।’

આ સૂત્રની રચનામાં જે खामी છે તેનો તો અમે અહીં નિર્દેશ જ કરવા ઇચ્છતા નથી. માપાન્તરના વિષયમાં જ અમારે થોડુંક કહેવું છે. આ સૂત્રનો શબ્દાર્થ અને વિશેષાર્થ નીચે પ્રમાણે કરવામાં આવ્યો છે.

‘શબ્દાર્થ—અનુક્રમે પહેલી નારકી આદીથી નીકળેલા ચક્રવર્તી, વલદેવ અને વાસુદેવ, અરિહંત કેવલી, સર્વવિરતિ, દેશવિરતિ અને સમ્યક્ત્વ વાળા થાય છે.’

‘વિ૦—પહેલી નારકીથી નીકળેલો ચક્રવર્તી થાય, વીજી નારકીથી નીકળેલો જીવ વાસુદેવ અથવા વલદેવ થાય. ત્રીજી વાલુકા પ્રમાથી નીકળેલો જીવ તીર્થંકર થાય.’ ઇત્યાદિ.

આ શબ્દાર્થ અને વિશેષાર્થની વાક્યરચનાથી તો વચકને ઇવોજ અર્થાવપોષ થાય કે પહેલી નરકમાંથી નીકળેલો પ્રાણી ચક્રવર્તીજ થાય, વી-જીમાંથી નીકળેલો વાસુદેવ અગર વલદેવજ થાય. ત્રીજીમાંથી નીકળેલો તીર્થંકર જ થાય. ઇત્યાદિ । પરંતુ યથાર્થમાં પરિશિષ્ટકારનો સુદનો કહેવાનો ભાવાર્થ એમ નહીં હશે. કારણ કે તેમ હોય તો તે તદ્દન અસંગત ગણાય. આ વિષયમાં શાસ્ત્રકારોનો અભિપ્રાય તો એવો છે કે નરકમાંથી નીકળેલો જીવ જો ચક્રવર્તી પદ પ્રાપ્ત કરવાને યોગ્ય હોય તો તે ફક્ત પહેલી નરકમાંથી જ નીકળેલો હોય છે. વાસુદેવ અગર વલદેવ પદની પ્રાપ્તિ પહેલી અને વી-જી એમ બન્ને નરકમાંથી નીકળેલા જીવોને હોઈ શકે છે અને તેવીજ રીતે તીર્થંકર પદની પ્રાપ્તિ પહેલી, વીજી અને ત્રીજી નરકસુધીમાંથી નીકળેલા પ્રાણિયોને થઈ શકે છે. ઇત્યાદિ. આવી રીતે વીજાં પણ ઘણાં સ્થલ અર્થ-કરણમાં ભૂલો થયેલી નજરે પડે છે. આશા છે કે વીજી આવૃત્તિમાં આ સંબંધમાં ઊચિત લક્ષ્ય આપવામાં આવશે. વાકી એકંદર રીતે પરિશિષ્ટમાં એ વિષયનો સારો સંગ્રહ થયો છે અને સાથે જ આકૃતિયો વિગેરે આપી છે

તેથી એ વિષયના અભ્યાસીને સહેલાઈથી અર્થજ્ઞાન થઈ શકે તેમ છે.

આહિ પ્રસંગથી એક જરા કડવી પણ હિતકર વાત સૂચવવાનું મન થઈ આવે છે કે—સાગરાનંદ-સુરિ જેવા વિદ્વાન્ અને પ્રતિભાશાલી મુનિષ આજના જમાનામાં આવા અનાવશ્યક અને અનુપયોગી કા-મોમાં કાલક્ષેપ કરવો ઊચિત નથી. સમય ઘણો વદલાઈ ગયો છે. સર્વસાધારણની અભિરુચિ કોઈ જુદા જ વિષયોના અભ્યાસ તરફ વધતી જાય છે. વિદ્વાનોના અધ્યયન-મનનનું સાહિત્ય ક્ષેત્ર ભિન્નજ પ્રકારનું થઈ રહ્યું છે. નવીન વાતાવરણમાં ઉછરતી અને કેલ્ચરની પામતી પ્રજાનો આવી જાતના લૂચા, નીરસ, અનુપયુક્ત, જૂના વિષયો તરફ અભિરુચિ વધે કે શ્રદ્ધા વેસે તેમ વિલ્કુલ નથી. વર્તમાન સમયમાં પ્રત્યક્ષ પ્રમાણથી નિશ્ચિત થયેલા ખગોલ અને ભૂગોળના સિદ્ધાન્તો આગલ જગતના દરેક ધર્મના એ વિષયના જૂના વિચારો નિસ્તેજ અને અર્થહીન સાબિત થયા છે, અને પ્રત્યેક ધર્મના વહુ-શ્રુત વિદ્વાન્ તે વિચારોને આધિકાંશ કલ્પના-પ્રસૂત માને છે.

તત્ત્વાર્થસૂત્ર મેં જાતે કૉલેજિયનોં તેમજ પ્રેજ્યુએટ-ડિવલપ્રેજ્યુએટ જેવા ઉચ્ચ શિક્ષણ પામેલા અનેક જૈન—અજૈન અભ્યાસિયોને તુલનાત્મક પદ્ધતિએ પણ શીખવ્યું અગર વંચાવ્યું છે તેમાં આવતો ખગોલ-ભૂગોલ વિષયક ભાગ કેવલ વિનોદની યાત્રા સમજાવતાં પણ મને ઘણો સંકોચ થતો હતો અને શીખનાર તેવા એકે એક સૂત્ર ઉપર સાદર ઉપહાસ વ્યક્ત કરતા હતાં. જો કે હું કેટલેક અંશે તેનું સમાધાન અમુક પદ્ધતિએ કરી શકતો. પરંતુ યથાર્થ-સમર્થન તો મારાથી કોઈ પણ પ્રમાણથી ન જ થઈ શકતું. મને ઘણાક વિદ્વાનોએ તો આવી યાસ સૂચનાઓ કરી છે કે તત્ત્વાર્થસૂત્રમાંથી આ વિષયને લગતો વિભાગ કાઢી નાંચી તેને સંક્ષિપ્ત વનાવવાની અવશ્યકતા છે કે જેથી નવીન શિક્ષિતોને આ વિષયની ગંધ સુધાં ન આવે અને તેથી તેમના મનમાં, આપણા પૂર્વાચાર્યોની વીજી અનનુપમેય કૃતિયોની પ્રામાણિકતાના સંબંધમાં કોઈ પણ પ્રકારના કૃતકોં કિંવા સન્દેહો ઉત્પન્ન

થવા ન પામે. ત્યારે વીજી વાજુ સાગરાનંદસૂરિ જેવા એક સારા વિદ્વાન્ આ વિષયના પરિશિષ્ટો રચવામાં મહત્ત્વ સમજી રહ્યા છે। જૈન વિદ્વાનોનું કર્તવ્ય છે કે તેઓ જગત્માં પ્રસાર પામતી ભિન્ન ભિન્ન જ્ઞાન-શાખાઓનું વિશાલ અધ્યયન કરી, તત્ત્વ-જ્ઞાન, ઇતિહાસ અને સાહિત્ય જેવા ગંભીર વિષયો ઉપર વધારે પ્રકાશ પાડે અને તેમ કરી જૈન ધર્મનું ગૌરવ પ્રકાશિત કરે. આ વિષયમાં અમારે જૈન વિદ્વાનોને ઘણુંક કહેવાનું છે જે યથાવસરે કહેવામાં આવશે. આજે તો ફક્ત સૂચનારૂપે આ બે શબ્દો લખ્યા છે આશા છે કે નમ્ર અને પ્રેમભાવે લખા-વળાં આ વાક્યોનો સરલ જ અર્થ કરવામાં આવશે અને ભવિષ્યમાં સાગરાનંદ સૂરિની કોઈ આદર્શ કૃતિની સ્મરણીય સમાલોચના કરવાનો ઉત્તમ અવસર અમને પ્રાપ્ત થશે.

મુંબઈ યુનિવર્સિટીનો એમ્. એ. ક્લાસનો
અર્ધમાગધીના કોર્સ.

ગત અઢ્ઢામાં, મુંબઈ યુનિવર્સિટીના પોતાના અભ્યાસક્રમમાં આ વર્ષથી જે અર્ધમાગધી (અથવા તો પ્રાકૃત) ભાષાને દાખલ કરી છે તેનો વી. એ. સુધીનો કોર્સ આપી દેવામાં આવ્યો છે. સ્થલાભાવને લીધે એમ્. એ. નો કોર્સ આપવો રહી ગયો હતો તે આ નીચે આપવામાં આવે છે.

ઈ. સ. ૧૯૨૧ ના વર્ષમાં.

1. ઉત્તરાધ્યયનસૂત્ર-સંસ્કૃત ટીકા સાથે.
2. (a) Comparative Philology—

(1) Relation between Sanskrit and Prakrit and between the Prakrits themselves, as in Bhandarkar's Wilson Philological Lectures.

(2) General Principles, as in Gune's Introduction to Comparative Philology.

(b) History of Jain Literature —

(1) Buhler.-Indian Sect of the Jainas, translated by J. Burgess. Lazar & Co., London.

(2) Weber. Sacred Literature of Jainas.

(3) Warren.—Jainism.

3. Jaina Philosophy:—

Pravachanasara of Kundakunda, With the Baudha, Sankhya and Arhata Darsana, from Sarvadarsanasamgraha (Anandasrama Series)

4. Translation from and into Ardha-Magadhi.

ઈ. સ. ૧૯૨૨ ના વર્ષમાં.

1. આવશ્યક સૂત્ર પૂર્વાર્ધ, હરિમદ્રસૂરિની ટીકા-સાથે, આગમોદય સમિતિ પ છપાવેલું.

2. ઉપર પ્રમાણે.

3. Jaina Philosophy:—

Syadvadamanjari of Mallisona, with Baudha, etc. Darsanas as in 1921.

4. Translation from and into Ardha-Magadhi.

પ સિવાય વી. એ. ક્લાસના એન્ડ્રિયક વિષયમાં જે એક પેપર જૈન સાહિત્યનો રાખેલો છે તેમાં નીચે પ્રમાણેનાં પુસ્તકો પાઠ્યપુસ્તકો તરીકે નિયુક્ત કરેલાં છે.

૧૯૨૦.

૧. આચારાંગ સૂત્ર (મૂળ માત્ર).

૨. હેમચન્દ્રાચાર્યરચિત ત્રિપટિશલાકા પુરુષ-ચરિત્ર, પર્વ ૧૦ (મહાવરિ ચરિત્ર) માંના સર્ગ ૧—૮.

૧૯૨૧-૧૯૨૨.

૧. પ્રવચનસાર દીપિકા સાથે.

૨. વીજામાં ઉપર પ્રમાણે.

पंजाब-यूनिवर्सिटीमें जैन साहित्यको स्थान ।

बंबई और कलकत्ता यूनिवर्सिटीमें तो आज कई वर्ष हुए जैन साहित्यको कितना एक स्थान मिल चुका है । परंतु पंजाब-यूनिवर्सिटीमें अभी तक उसे किञ्चित् भी अवकाश नहीं मिला था । उसमें कारण केवल पंजाबके जैन भाईयोंकी अनभिज्ञता और उपेक्षा ही है । पंजाबके जैनियोंमें मामूली शिक्षाका भी बड़ा भारी अभाव है तो फिर ऊंची कक्षाकी शिक्षाके बारेमें तो कहना ही क्या । यही सबब है कि आज तक पंजाबमें, अन्य धर्मीय संकड़ों ही ग्रेजुएट संस्कृतके पारंगत विद्वान् हो गये हैं परंतु जैनियोंमें वैसा एक भी मनुष्य नहीं था । हमें यह जान कर प्रसन्नता हो रही है कि पंजाबके जैन समाजकी इस न्यूनताकी पूर्ति करनेवाला एक पुरुष तैयार हो गया है और वह है लुधियाना निवासी श्रीयुत लाला बनारसी दास जैन । बनारसी दासजीने एम्. ए. तककी ऊंची शिक्षा प्राप्त की है और संस्कृत-प्राकृतका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है । आपका एक इंग्रजी लेख जै. सा. सं. के प्रथम अंकमें प्रकाशित हो चुका है । आप लाहोरके ओरिएण्टल कालेजमें प्रोफेसर हैं । आपने हालहीमें बहुत कुछ परिश्रम करके पंजाब यूनिवर्सिटीकी एम्. ए. की परीक्षामें जैन साहित्यको उचित स्थान दिलाया है और उसके शुभ समाचार जैन साहित्य संशोधकमें प्रकट करनेके लिये भेजे हैं जो आपहीके शब्दोंमें नीचे प्रकट किये जाते हैं:—

“ बड़े हर्ष की बात है कि पंजाब यूनिवर्सिटीने अपनी (संस्कृत की) सब से उच्च परीक्षा अर्थात् एम० ए० (M. A.) में जैन फिलॉसफी तथा साहित्य को भी स्थान दे दिया है । इस वर्ष निम्न लिखित ग्रन्थ नियत हुए हैं:—

- १ स्याद्धाद मञ्जरी (संपूर्ण) ।
- २ सूत्रकृतांग (प्रथम के ६ अध्ययन) ।
- ३ उत्तराध्ययन (प्रथम के दस अध्ययन) ।
- ४ जैन साहित्यका संक्षिप्त इतिहास (अंग्रेजी) ।

इसके लिये सारी जैन समाजको श्रीयुत ए० सी० वूलनर (Captain A. C. Woolner)—लाहोर के ओरिएण्टल कालेज के प्रिन्सीपाल—को धन्यवाद देना चाहिये जो कि इस देशमें जैन साहित्य के प्रचार का बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं ।

आप स्वयं भी प्राकृत के अष्टितीय विद्वान हैं, आर जैन साहित्यसे हार्दिक प्रेम रखते हैं ।

चूं कि पंजाबमें संस्कृत पढ़नेवाले जैन विद्यार्थी बिरले हैं, इस लिये अन्य धर्मी विद्यार्थियों को जैन साहित्य की ओर लाने के लिये एक वजीफा (Scholarship) की आवश्यकता है जिस को स्थायी रूप देने के लिये रु० १०००० चाहिए । जो महाशय इस खाते में दान देना चाहें वे इसी पत्र द्वारा सूचना दें ताकि रुपया शास्त्र यूनिवर्सिटीमें भेजने का प्रबन्ध किया जावे ।”

स्कालरशिपके लिये जो सूचना बनारसी दासजीने इस निवेदनमें की है उसकी तरफ हम प्रत्येक विचारशील और उदारचित्त भाईका लक्ष्य खींचना चाहते हैं । खास कर पंजाबी जैन भाईयोंको इस विषयमें पूरा खयाल करना चाहिए और अपना कर्तव्य बजाना चाहिए ।

अशुद्ध-संशोधन.

गया अंकमां प्रकट थपला श्रीयुत हीरालाल अमृतलाल शाहना “ हरिभद्रसूरिनो समयनिर्णय ” शीर्षक लेखमां भ्रमधी एक-बे ठेकाणे अशुद्ध पाठ छपाई गयो छे, तो ते नीचे प्रमाणे सुधारी वांचवानी भलामण करवामां आवे छे.

पृष्ठ ४१, कालम २, पंक्ति १३-१४ मां नीचे प्रमाणे पाठ छे:—

‘ आ ५९८ ने वर्तमान गणतरीए गणाता गुप्त संवत् तरीके....’

तेना बदले नीचे प्रमाणे वांचवुं—

‘ आ ५९८ ने मारी गणतरी मुजबना मूल गुप्त संवत् तरीके....’

तेवीज रीते, तेनी नीचे पंक्ति २४ मां नीचेप्रमाणे पाठ छे—

गुप्त संवत् ५९८....सिद्धर्षिण श्रीचन्द्रकेवली चरित्र रच्युं.

तेने नीचे प्रमाणे सुधारी वांचवुं—

‘ गुप्त-संवत् ५९८....सिद्धर्षिण (श्रीचन्द्रकेवली चरित्रमां जणाव्या मुजब) ग्रन्थ रचना करी. ’

बृहट्टिप्पनिकानामप्राचीनजैनग्रंथसूची



एकादशाङ्गानि ।

१. श्रीआचारांगसूत्रं श्रीसुधर्मस्वामिरुतम्—२५२५ ।
(१) निर्युक्तिः श्रीमद्रथाहुकता ग्रन्थामम् ४५०, गाथा ३६२ ।
(२) चूर्णिः ८३०० ।
(३) वृत्तिः शीलाचार्याया ९३३ वार्षिका, १२००० ।
२. श्रीसूत्ररुतांगसूत्रम्—२१०० ।
(१) निर्युक्तिः २६५, गाथा २०८ ।
(२) चूर्णिः १०००० ।
(३) वृत्तिः शीलाचार्येण कृता, १२८५० ।
३. श्रीस्थानांगसूत्रम्—३६०० ।
(१) वृत्तिः श्रीअभयदेवैः ११२० वर्षे कृता, १४२५० ।
४. श्रीसमवायांगसूत्रम्—१६६७ ।
(१) वृत्तिः ११२० वर्षे अभयदेव्याया, ३५७४ ।
५. भगवतीसूत्रम्—एकचत्वारिंशत्-शतकमयम् १५७५२ ।
(१) चूर्णिः ३११४ ।
(२) अवचूर्णिः पत्तनवित्कोशेऽस्ति ।
(३) वृत्तिः ११२० वर्षे अभयदेवसूरिकृता १८६१६ ।
६. ज्ञानधर्मकथासूत्रम्—५४०० ।
(१) वृत्तिः ११२० वर्षे कृता ३८०० ।
७. श्रीउपासकदशासूत्रम्—८१२ ।
८. श्रीअन्तरुदशासूत्रम्—८९९ ।
९. श्रीअनुत्तरौपपातिकदशासूत्रम्—१९२ ।
(१) उपासक-अन्तरुद-अनुत्तरौपपातिकवृत्तिः—१३०० ।
१०. श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रम्—१२५६ ।
(१) वृत्तिः ४६०० ।

११. श्रीविपाकसूत्रम्—१२१६ ।

(१) वृत्तिः ९०० ।

एकादशांगीसूत्रसंख्या ३५३३९ ।

वृत्तिसंख्या ७४७९० ।

द्वादशोपाङ्गानि ।

१२. उववाइयसूत्रम्—११६७ ।

(१) वृत्तिः ३१२५ अभयदेवाया ।

१३. राजप्रश्नीयसूत्रम्—२०७९, २१२० ।

(१) वृत्तिर्मलयगिरीया ३७०० ।

१४. जीवाभिगमसूत्रम्—४७०० ।

(१) चूर्णिः—१५०० ।

(२) वृत्तिर्हार्तिभद्री प्रदेशवृत्तिनाम्ना ११९२ ।

(३) वृत्तिर्मलयगिरीया १४००० ।

१५. प्रज्ञापनासूत्रम्—पट्टत्रिंशत्पदमयम् - ७७८७ ।

(१) लघुवृत्तिर्हार्तिभद्री—३७२८ ।

(२) वृत्तिर्मलयगिरीया—१६०००, १४५०० (?) ।

(३) प्रज्ञापनानृतीयपदसंग्रहणी श्रीअभयदेवसूरिकृता गाथा १३३ । तदवचूरिश्च—४३० ।

१६. श्रीचन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रम्—२०५४ ।

(१) वृत्तिर्मलयगिरीया ९५०० ।

१७. श्रीसूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रम्—२२९६ ।

(१) वृत्तिर्मलयगिरीया ९००० ।

१८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रम्—४४५४ ।

(१) चूर्णिः १८७९ ।

(२) वृत्तिर्मलयगिरीया ९५०० ।

१९-२३. निरयावलिका—कल्पावतंसिक-पुष्पिता-पुष्पसु-

लिका-दशा-(५) सूत्राणि-११०९ ।

(१) निरयाविलकादीनां पंचानां वृत्तिः, १२२८ वर्षे ।

आवश्यक-मूल-च्छेद-सूत्र-वृत्त्यादीनि ।

२४. मूलावश्यकसूत्रसामायिकादीनि, पङ् अर्धयनानि-१०० प्रमाणानि ।

- (१) साधुप्रतिक्रमणसूत्रं तु १३० ।
- (२) ललितविस्तरा चैत्यवन्दनावृत्तिर्हारिभद्रा १२७० ।
- (३) ललितविस्तराटिप्पनकं देवसूरिगुरुमुनिचन्द्रायम् १६०० ।
- (४) चैत्य-साधुवन्दन-श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिः ९५६ वर्षे पार्श्वेण कृता २००० प्रमाणा ।
- (५) ईर्यापथिकी—चैत्यवन्दनासूत्र—वन्दनकानि ।
- (६) ईर्या० १५० चैत्य० ८४० वन्द० ७२७ चूर्ण-यः ११७४ वर्षे यशोदेवकृताः ।
- (७) प्रत्याख्यानस्वरूपं यशोदेवकृतम् गाथा—३६० ।
- (८) प्रत्याख्यानवृत्तिः—५५० ।
- (९) चैत्यवन्दनादिसूत्र-साधु-श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रपद-पर्यायमंजयः—अकलंकदेवसूरीयः ।
- (१०) श्राद्धसामायिक-प्रतिक्रमणसूत्रव्याख्याप्रकरणम्—११८३ वर्षे जैनदेवम् गाथा २९३ श्लोक ३६५ ।
- (११) चैत्यवन्दनामहाभाष्यं श्रीशान्तीयम्, सूत्रव्याख्याचरणादिवाच्यम्—‘महामहपणमंत’ इत्यादिपदम् गाथा ९२२ ।
- (१२) चैत्यवन्दनाभाष्यवृत्तिः ।
- (१३) पद्मावश्यकं चैत्यवन्दनादिसर्वसूत्रव्याख्यारूपम् तपार्थदेवेन्द्रसूरिकृतम् २७२० ।
- (१४) चैत्यवन्दनावृत्तिः कुलप्रदीपः २४५६ ।
- (१५) चैत्यवन्दना-वन्दनकं-प्रत्याख्यानवृत्तयः श्रीतिलकीयाः ५५० ।
- (१६) श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रलघुवृत्तिः श्रीतिलकीया ३०० ।
- (१७) साधुप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिः श्रीतिलकीया २९६ ।
- (१८) चैत्यवन्दनाटीका हरिभद्राया ४८२ ।
- (१९) साधुप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिः आवश्यकवृहद्वृत्तिगता ।
- (२०) साधुप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिः १३६४ वर्षे जैनप्रभो ५४८ ।
- (२१) श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रचूर्णिः ११८३ वर्षे विजय-सिंहीया ४५९० ।
- (२२) श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिः १२२२ वर्षे श्रीचं-द्रीया १९५० ।

(२३) चैत्यवन्दनाविचारो ग.धाक्षन्धेन सूत्रव्याख्या-रूपः ।

(२४) चैत्यवन्दनकप्रत्याख्यानभाष्याणि .त्राणि तपा-श्रीदेवेन्द्रसूरिकृतानि, गाथा ६३, ४१, ४८ ।

(२५) चैत्यवन्दनाभाष्यवृत्तिः संघाचारनान्नी तपा-श्रीवर्धमोक्षसूरिकृता ८५०० ।

(२६) वालावधोधा चैत्यवन्दनावृत्तिः खरतरतरुणप्रभ-सूरीभिः १३३१ वर्षे कृता ७००० ।

(२७) साधुप्रतिक्रमणादिषाड्विधवश्यकसूत्रवृत्तिः नेमि-साधुना ११२३ वर्षे कृता १५५० ।

(२८) पंचपरमेष्ठिविहरणं प्राकृतगाथासयं बह्वन्तरक-यन् ११६८ वर्षे मातिसागरम् गाथा २५० ।

(२९) आवश्यकनिर्युक्तिः ३१००, २५५० ।

(३०) आवश्यकचूर्णिः १३६००, १८४७४ ।

(३१) आवश्यकवृहद्वृत्तिर्हारिभद्रो २२००० ।

(३२) तटिप्पनकं मलघारि-हेमचन्द्रायम् ४६४० ।

(३३) आवश्यकवृत्तिर्मलयगिरीया १८००० ।

(३४) लघुवृत्तिः श्रीतिलकीया १२९६वर्षे कृता १२३२५ ।

(३५) आवश्यकावचूरिः ५० २२६ ।

(३६) विशेषावश्यकसूत्रं श्रीजिनभद्रगणिकृतम् ४००० ।

(३७) वृहद्वृत्तिर्मलघारि-हेमचन्द्राया २८००० ।

(३८) वृत्तिर्मलयगिरीया ९००० नास्ति ।

(३९) अर्णा वृत्तिः १४०००, पत्तनं विना नास्ति ।

२५. ओचनिर्युक्तिसूत्रम् ११६४ ।

(१) चूर्णिर्नास्ति ।

(२) मध्यम् ३००० नास्ति ।

(३) वृत्तिर्द्रोणीया ६८२५ ।

(४) वृत्तिर्मलयगिरीया सूत्रमिश्रा ८८५० नास्ति ।

२६. दशवैकालिकसूत्रम् ७०० ।

(१) निर्युक्तिः गाथा ४४५, ४५२ ।

(२) चूर्णिः ७०००, ७९७० ।

(३) वृहद्वृत्तिर्हारिभद्रा ७५५० ।

(४) वृत्तिः श्रीतिलकीया नेमिचरित्रगर्भा ७००० ।

(५) लघु-वृहद्वृत्त्युद्धाररूपा सुमतिसूरीया २६०० ।

२७. पाक्षिकसूत्रम् ३०० ।

(१) वृत्तिः यशोदेवकृता ११८० वर्षे २७०० ।

२८. पिण्डनिर्युक्तिसूत्रम् ७०८ ।

(१) वृत्तिर्नास्ति ४००० ।

(२) लघुवृत्तिराद्या, तत्राद्यानि १३५० हारिभद्राणि,

- अपराणि तु १५५० देवान्चार्थक्षिप्यविराजार्चक-
नानि ३१०० ।
- (३) वृत्तिर्मन्त्रविराया मूत्रमिश्रा ५५०० ।
२९. उत्तमव्ययनं पद्विजयव्ययनमयं मूत्रम् २००० ।
- (१) निर्युक्तिः ७००, गाथाः ६०५ ।
- (२) कृषिर्गोवर्तलयमश्ननसंज्ञप्रकृता ५९००, ५८५० ।
- (३) लघुवृत्तिः ११२९ वर्षे देवैर्द्रव्यपानानर्थानेति
चन्द्रसूत्राया समुद्रा १४००० ।
- (४) शन्याचार्यीया बृहद्वृत्तिः मूत्रमिश्रा १८००० ।
३०. निर्णयसूत्रं विशेषेणमयम् ८१२, २५० ।
- (१) बृहदभाष्यम् १२००० ।
- (२) भाष्यम् ७००० ।
- (३) निर्णय-वृत्ति-मूत्र-भाष्याणि २८००० ।
- (४) निर्णयवृत्तिविशेषैर्द्रव्यपाना ११७३ वर्षे पार्श्व-
देवमधिकृता ११०० नदि ।
- (५) निर्णयविजयमोद्वृत्तिः ११७३ वर्षे श्रीचन्द्रा-
या ११०० ।
३१. कल्पविशेषवृत्तिः ३१००० ।
३२. कल्पवृत्तिः १२७०० ।
३३. कल्पवृत्तिः मूत्रभाष्यगर्भा. आद्यानि ४६०० मलयगि-
र्याणि, अपरा तु १३३२ वर्षे नपाक्षेमकान्तीया
४२००० ।
३४. व्यवहारसूत्रं दशोद्देशकमयम् ३३३ ।
- (१) भाष्यम् ६४०० ।
- (२) वृत्तिः १०००० ।
- (३) व्यवहारवृत्तिः मूत्र-भाष्यगर्भा मलयगिर्याया
३३६२५, ३४६२५ ।
३५. कल्पसूत्रं पद्विजयव्ययनम् ४५३ ।
- (१) बृहदभाष्यम् १२००० ।
- (२) भाष्यम् ७६०० ।
- (३) विशेषवृत्तिः ११०० ।
३६. दशोद्देशकमयम् दश व्यवयनमयम् २१०६, २२२५ ।
- (१) निर्युक्तिः १५४, २२० ।
- (२) वृत्तिः ४३२१ ।
३७. पशुपगाकल्पमूत्रम् १२१६ ।
- (१) निर्युक्तिः गाथा ६८ ।
- (२) वृत्तिः ७०० ।
- (३) कल्पनिकल्पविषयकं विनयचन्द्रमूलिकम् १५८ ।
- (४) कल्पविषयकं पृथ्वीचन्द्रायम् ६४० ।
- (५) संदेहविषयोपधिवृत्तिः १३६४ वर्षे जैनप्रभा ।
३८. महाविशेषवृत्तिः लघु-मध्यम-बृहद्वृत्तयाम् ३५००,
४२००, ४४४८ ।
३९. पंचकर्मसूत्रं ११३३ ।
- (१) निर्युक्तिर्नास्ति ।
- (२) भाष्यं संघदासगणिकृतम् गाथा २५७४, ३०३५ ।
- (३) वृत्तिः ३०००, ३१३६ ।
४०. जीतकल्पसूत्रं जिनमर्द्रीयम् गाथा १०५ ।
- (१) भाष्यम् ३१०५ नास्ति ।
- (२) वृत्तिः छिद्रमेनीया १००० ।
- (३) वृत्तिविषयकं भृगु० गु० ३ विना न ।
- (४) वृत्तिः १२२४ वर्षे श्रीतिलकीया १८०० ।
- (५) जीतकल्पविवरणं संक्षिप्तगमार्णकारूपम् 'मिरि-
वीरविषयं नमिडे' इति ५४३ ।
- (६) अट्टर्जातकल्पस्य मूत्र-वृत्ती श्रीतिलकीये गाथा
३० वृत्ति० ११५ ।
- (७) यतिजातकल्पस्य श्रीसोमनमसूरीयस्य वृत्तिः सा-
धुस्तनसूरीया ५७०० ।
- (८) आद्वर्जातकल्पस्य तपाश्रीधर्मवोपसूरीयस्य वृत्तिः
श्रीसोमल्लिकसूरीया २६०० न ।
४१. नन्दं मूत्रम् ७०० ।
- (१) वृत्तिः ७३३ वर्षे कृता, स्तम्भतीर्थे विना नास्ति ।
- (२) लघुवृत्तिर्नास्ति २३०० प्रमाणा ।
- (३) नन्दावृहद्वृत्तिर्मलयगिर्याया ७७३२ ।
- (४) विषयकं श्रीचन्द्रायमाद्यावृत्तिसत्कम् ३३०० ।
४२. अनुयोगद्वारसूत्रम् गाथा १६०४ ।
- (१) वृत्तिर्जिनदासमहत्तर्याया २२६५ ।
- (२) लघुवृत्तिर्नास्ति ।
- (३) बृहद्वृत्तिर्मलवारिहैमचन्द्राया ५८०० ।
४३. आनुरप्रत्याख्यानम् गाथा ८४-१३४ ।
- (१) आनुरप्रत्याख्यानवृत्तिराञ्चलिकभुवनतुंगसूरिकृता
६३ ध्यानकनामगर्भा ४२० ।
४४. महाप्रत्याख्यानमूत्रम् १४३ ।
४५. देवेन्द्रस्तवः गाथा ३०३ ।
४६. तंदुलविचारिकम् ४०० ।
४७. संस्तारकः गाथा १२१ ।
४८. भक्तपरिभा १५१ ।
४९. आराधनापताका, १०७८ वर्षे वीरभद्राचार्यकृता ९९३१ ।
५०. गणविद्या गाथा ८५ ।

५१. अंगविद्या षष्टिअध्यायात्मिका १००० ।

५२. चउसरणम् गाथा ६४ ।

(१) चउसरणवृत्तिः आञ्जलिमुववत्तुंगसूरीया ८०० ।

५३. द्वेपसागरप्रज्ञतः गाथा २२३ श्लोकाः २८० ।

५४. ज्योतिष्करणवृत्तिः समूचा मलयगिरिया सू० १८५०
वृ० ५००० ।

५५. मरणसमाधिः गाथा ६५६ ।

५६. नीधौद्राः गाथा १२३३ ।

५७. सिद्धप्राप्तसूत्र-वृत्तिः सूत्रम् १२०, वृत्तिः ८५० ।

५८. निरवधिमक्तिः २०० नास्ति ।

५९. चन्द्रवेदकम् १७४ ।

६०. अर्जविकल्पः गाथा ४४ ।

६१. गच्छाचारः गाथा १३६ ।

६२. वारस्तवः गाथा ४३ ।

आगमेनर-चरणकरणानुयोगादिग्रन्थाः ।

६३. वसुदेवार्जुनप्रियमवष्टम् संप्रदासवाचककृतम् ११००० ।

६४. वसुदेवार्जुनप्रियमवष्टम् अस्त्राचार्यकृतं ६६०० ।

६५. वसुदेवमध्यमसङ्केतं समग्रहर्षकं ९००० ।

६६. क्षयिमायिनानि ४५१८५० ।

६७. खड्ग-पुद्गल-निगोद-बन्ध-यद्वादिशिक्षावृत्तयो रत्नातिहसुरि-
विल्लारिताः ।

६८. तत्त्वार्थसूत्रं कौमात्वात् २२५ ।

(१) भाष्यं वृत्तिकर्षं ।

(२) टीका भस्त्रामिश्रिष्टसिद्धकौमात्वा मध्यव्याख्या-
रुपा १८२८२, २२२६२ ।

(३) तत्त्वार्थलघुवृत्तिः दिगम्बरी देव० विना नास्ति ।

६९. श्रावकप्रज्ञासूत्रं कौमात्वात् ४०० ।

(१) वृत्तिहारिमद्रो २३३० ।

७०. विशेषगवर्तासूत्रं मितनदक्षमाश्रमकृतं गाथा ४३८ ।

(१) विशेषग-वृत्तिनास्ति ।

७१. प्रवचनसारेन्द्रासूत्रं ७७ द्वारक्य नेमिचन्द्रयं श्लोकः
२००० गाथा १६०६ ।

(१) वृत्तिः २००० मितसूत्रगर्भा, २७६ द्वाग, १२४२
वर्षे सिद्धमेतसूत्रिकता १८५००, १६५०० ।

(२) विमलपदटीका भृगु. विना न ।

(३) धर्मसंज्ञावृत्तिमलयगिरिया, मूलमया. ११०००,
१०५०० प्रवचनरे ।

७२. समवसादीका कमुदचन्द्रसूरीया भृगु [भृगु] देव
[पत्तन] वि [ना] नः ।

७३. पञ्चानिकायसंग्रहऽभवतनयस्य वृत्तिः, अमृतचन्द्र-
सूरीया देव [पत्तन] विना न ।

७४. प्रवचनसारास्य वृत्तिः, अमृतचन्द्रसूरीया देव० विना न ।

७५. पाञ्चसूत्रं प्राकृतमूलम्. नृनाभि २१० ।

(१) वृत्तिश्च हारिमद्रो ८८० ।

७६. पञ्चस्तुकसूत्रं हारिमद्रम्, १६१४ ।

(१) पञ्चस्तुटीका हारिमद्रो, ५०५० ।

७७. पञ्चासकानि १९, हारिमद्राणि, ११८४ ।

(१) पञ्चासकवृत्तिः १९, नवाङ्गअभयदेवैः ११२४
वर्षे कृता, ७४८० ।

(२) आद्यान्धःशकवृत्तिः, ११७२ वर्षे यशोदेवीया
सभावाच्या, ३३०० ।

७८. शोचकसूत्रं हारिमद्रं, ३३० ।

(१) पञ्चासकवृत्तिः, १५०० ।

७९. ३२ अष्टकवृत्तिः १०८० वर्षे कैतेन्दरी, ३३७४ ।

८०. धर्मसूत्राऽष्टक ३२ सूत्रे हारिमद्रे २७३, २५६ ।

८१. धर्मवन्द्यवृत्तिर्मानिचन्द्रा, ३००० ।

८२. योगविन्दुसूत्रं हारिमद्रं, ५२० ।

(१) योगविन्दुवृत्तिः ३६२० ।

८३. प्रवचनवृत्तिः ११८५ वर्षे हारिमद्राया, १८०० ।

८४. श्रावकमङ्गकादि-विचार-गाथादिवृत्तिर्विनयदेवसुरि-
कृता, ५५७ ।

८५. दर्शनसत्तरी हारिमद्रो, गाथा, १२० ।

८६. जीवसमाप्तवृत्तिर्नलधारिदेमचन्द्रिया, ६६२७ ।

८७. गवतत्त्वगाथायां देवगुप्तयानां भाष्यस्य नवाङ्गअ-
भयदेवीयस्य वृत्तिः ११७४ वर्षे यशोदेवी, २४०० ।

८८. “एगविहं सम्मर्ह” इत्यादि सम्यक्त्व गाथा-
वृत्तिः, १०५ ।

८९. विचारसरप्रकरणं प्रद्यम्नसुक्रितं सोपयोगि, बहुसंग्रहं
गाथा, ८९७ ।

९०. पवयन संदोहः ।

(१) पवयन संदोहवृत्तिः ।

९१. सिद्धिपञ्चगासिकसूत्र-वृत्तिः तपाश्र्मदेवेन्द्रसूरीये-७१० ।

९२. योनिगभृतं वरात् ६०० धारलेनम् ।

९३. पिण्डविशुद्धिसूत्रं जैनदहमम्—गाथा-१०३ ।

(१) वृत्तिः ११७४ वर्षे यशोदेवी-२६०० ।

(२) दीपिका लघुवृत्तिकता-५५० ।

(३) अमृतवृत्तिः ११८० वर्षे आञ्जन्सूरीया ४४०० ।

—प्रवचनरे अनुवृत्तिः ११७५ वर्षे यशोदेवी-२६०० ।
वृत्तिः ११८० वर्षे आञ्जन्सूरीया ४४०० ।

१४. कर्मप्रकृतिसूत्रम्-गाथ -४७७ ।

(१) टीका मलयगिरीया ससूत्रा-८००० ।

(२) वेदनादि ८ करणवाच्या चूर्णः-७००० ।

(३) कर्मप्रकृतिचूर्णिटिप्पनकं मुनिचन्द्रायम् १९२० ।

१५. पञ्चसंग्रहस्य शतक-सप्ततिका-कपायप्रामृत-सत्कर्म-
कर्मप्रकृति-संग्रहात्मकस्य वृत्तिः सूत्रकारचन्द्रार्पि-
कृता, पत्तनं विना न

(१) पञ्चसंग्रहवृत्तिर्मलयगिरीया ।

१६ दीपकसंग्रहवृत्तिर्मलयदीपकम् (?), प्राक् तुल्य दैग
म्बाम्, भू० दे० विना न ।

१७. बृहत्कर्मविपाकवृत्तिः परमानन्दकृता-९६० ।

१८. बृहत्कर्मविपाकटिप्पनकम्—उदयप्रभसूरीयम् ४२० ।

१९. बृहत्कर्मस्तवृत्तिः श्रीगोविन्दाचार्यकृता १००९-
१०९० ।

१००. बृहत्कर्मस्तवटिप्पनं वृत्तिरूपम् उदयप्रभसूरीयम्
२९२ ।

१०१ बृहद्गन्धस्वामित्ववृत्तिः ११७२ वर्षे हरिमद्र्या-
५६० ।

१०२. वस्तुविचारसाराख्यबृहत्पडशीतिकस्य जैनवल्लभस्य
वृत्तिः प्राकृता रामदेवी ८०५ ।

१०३. आगमिकवस्तुविचारसाराऽपरनामकस्य जिनवल्लभो-
यस्य बृहत्पडशीतिकस्य वृत्तिर्मलयगिरी २१४० ।

१०४. बृहत्पडशीतिकवृत्तिर्मलयारि-हेमचन्द्राया ३७४० ।

१०५. जिनवल्लभायस्य सार्धशतकस्य सूक्ष्मार्थविचारसारा-
पराख्यस्य वृत्तिः ११७२ वर्षे हरिमद्र्या ८५० ।

१०६ सूक्ष्मार्थविचारसारापरनामक-जिनवल्लभयसार्धशतक-
वृत्तिः ११७१ वर्षे धनेश्वरीया ३७०० ।

१०७. शतकचूर्णः २३८० ।

१०८. शतकटिप्पनकम्—उदयप्रभसूरीयम् ९७४ ।

१०९. आगमिकवस्तुविचारसारस्य ' बृहत्पडशीतिक '
इति प्रसिद्ध नाम्नां जैनवल्लभस्य वृत्तिः-यशोदेवीभद्र-
सूरीया (?)—१६३० ।

११०. सूक्ष्मार्थविचारसाराऽपरःख्यसार्धशतकवृत्तिः टिप्पन-
कम् १४०० ।

१११. सूक्ष्मार्थविचारसाराख्यसार्धशतकवृत्तिः प्राकृता ।

११२. आगमिकवस्तुविचारसाराख्यपडशीतिकवृत्तिः ११७३
वर्षे हरिमद्रसूरीया ८५० ।

११३. नव्यकर्मविपाकवृत्ति—नव्यकर्मस्तवृत्ति—नव्यवन्ध
स्वामित्वाऽवचूर्ण-नव्यपडशीतिकवृत्ति-नव्यशत-

कवृत्तयः ५ सूत्रकातेपाश्र्वदेवेन्द्रसूरीयाः, १८८२,
८३०, ३८५, २८००, ४२६० ।

११४. सत्तरिचूर्णिर्नास्ति ।

११५. सत्तरिटीका प्राकृता आनन्दगणितहत्तरीया २३००,
२२२८ ।

११६ सत्तरिडिप्पनकम्, खरतररामदेवगणिकृतम्, गाथा,
५४७ ।

११७. सत्तरीटीका मलयगिरीया..... ।

११८. सत्तरीग प्य नास्ति ।

११९. बृहत्संग्रहणीसूत्रं जिनभद्रगणिकृतम्, गाथा, ५३० ।

(१) बृहत्संग्रहणीवृत्तिः ११३९ वर्षे शा.लिभद्रा २८००-
२५०० ।

(२) बृहत्संग्रहणीवृत्तिर्मलयगिरी ५००० ।

(३) लघुसंग्रहणीवृत्तिः, ' नामितं अरिहताई ' ति,
मलयारिदेवभद्राया ३५०० ।

१२०. बृहत्क्षेत्रसमासवृत्तिर्मलयगिरी ७८८७ ।

१२१. बृहत्क्षेत्रसमासवृत्तिः सिद्धिसूरीया ११९२ वर्षे,
३००० ।

१२२. बृहत्क्षेत्रसमासवृत्तिः, १२३३ वर्षे देवभद्राया १०००,
स्तम्भने ।

१२३. बृहत्क्षेत्रसमासलघुवृत्तिर्नास्ति ।

१२४. लघुक्षेत्रसमासवृत्तिर्हरिमद्रसूरीया ५११ ।

१२५ क्षेत्रसमाससूत्रं संस्कृतमान्दिकचतुष्टयकृतम् उमा-
स्वातिवाचककृतम्..... ।

(१) वृत्तिः, २८८० ।

१२६. जम्बूद्वीपसंग्रहणी वृत्तिः १५० ।

१२७. वीतरागस्तवाः०२० ।

(१) वृत्तिः प्रमानन्दी २१२५ ।

१२८. शोभनस्तुनयः ९६ ।

(१) वृत्तिः पं० धनपालकृता, ९५० ।

१२९. धनपालपञ्चाशिका ।

(१) धनपालपञ्चाशिकावृत्तिः प्रमानन्दसूरीया ६४०,
११०० ।

१३०. ' निम्मलनहे धि ' इति धीरस्तवस्य पं० धनपालकृत-
स्य वृत्तिः भूराचार्यकृता २२५ ।

१३१. भक्तभरप्रदीपिका भृगुपुरं विना नास्ति ।

१३२. भक्तभरस्तववृत्तिः गुणाकराचार्यः १४२६ वर्षे
कृता, १५७२ ।

१३३. ' जनेन येन ' स्तुतिवृत्तिः ३०५ ।

- [illegible]

१७७. पुष्पमालावृत्तिर्धर्मधारि-सूत्ररुत्-हेमचन्द्रैः ११७५ वर्षे कृता १३८६८ ।
 १७८. धर्मोपदेशमालावृत्तिः ११९० वर्षे मुनिदेशीया ६८०० ।
 १७९. धर्मोपदेशमालावृत्तिः ११५ वर्षे जयसिंहिणीया ।
 १८०. धर्मोपदेशमालाविवरणं स्तम्भतीर्थं विना न ।
 १८१. भवभाषणावृत्तिः, सूत्रकृत्-मलधारी-हेमचन्द्राया ११७० वर्षे १३००० ।
 १८२. दिनकृत्यवृत्तिः तपाश्रीदेवेन्द्राया १२८२० ।
 १८३. धर्मस्तवृत्तिः तपाश्रीदेवेन्द्राया आद्य २१ गुणादि-वाच्या ९७००-९६८२ ।
 १८४. द्वितीयदेशमालावृत्तिः सूत्रकार-प्रभानन्द-अ-तृ पं० परमानन्दीया १३०४ वर्षे ९५०० ।
 १८५. सम्यक्त्ववृत्तिः सूत्रकार-चन्द्रप्रभसूरि-संतानीय-आ-तिलकीया १२७७ वार्षिकी ८००० ।
 १८६. सम्यक्त्ववृत्तिः प्राकृतकथागर्भा १२००० ।
 १८७. दर्शनशुद्धिवृत्तिर्देवमद्रसूरिकृता ३८०० ।
 १८८. दर्शनशुद्धिः संदेशविषयार्थानां गथा २६२ ।
 १८९. 'माणस्सुद्धि' ति विवेकमञ्जरीवृत्तिः १२२३ वर्षे अकलङ्कदेशीया ।
 १९०. विवेकमञ्जरीवृत्तिर्वालचन्द्रा ८००० ।
 १९१. उपदेशकन्दलीवृत्तिर्वालचन्द्रा ७६०० ।
 १९२. शालोपदेशमालावृत्तिः १२९४ वर्षे रुद्रपल्लीयश्र सं-मतिल कीया ।
 १९३. योगशास्त्र १२ प्रकाशवृत्तिर्हिमी १२००-१२३०० ।
 १९४. योगशास्त्र केवल ४ प्रकाशवृत्तिः
 १९५. उपदेशपदसूत्रं हारिमद्रम् १०४० ।
 (१) उपदेशपदवृत्तिः ११७४ वर्षे मौनिकचन्द्रा सूत्र-गर्भिता १५५०० ।
 १९६. संवेगमंगशाला ११७५ वर्षे नवागाऽभयदेववृद्धावृत्ति-जिनचन्द्राया १००५३ ।
 १९७. वन्दनकुलकवृत्तिः श्रीजिनकुशलसूरिकृता ४३७० पावात्र न (?) ।
 १९८. विषयविनिग्रहकु० वृत्तिः १३३७ वर्षे मालचन्द्रा १०००८ स्तम्भतीर्थं विना न ।
 १९९. नवपदवृत्तिर्देवगुप्ताचार्यादिभिः १०७३ वर्षे कृता २१७० ।
 २००. नवपदवृत्तिः १०७३ वर्षे जिनचन्द्रागण्याथैः कृता-२२१० ।

२०१. नवपदवृत्तिः कुलचन्द्रादिकृता १०७३ वार्षिकी २६०० ।
 २०२. नवपदवृत्तिः ११६५ वर्षे यशोदेवोपाध्यायकृता ९५०० ।
 २०३. अभिनवनवपदवृत्तिः ११८२ वर्षे सूत्रकारदेवेन्द्राया ९००० ।
 २०४. भगवतीद्वादशशतकगततृतीयसहस्रसत्कजयन्तीप्रश्नोत्तरसंग्रहप्रकरणस्य मानतुंगीयस्य वृत्तिर्जयन्तिचरित्र-वाच्या प्राकृतमूला १२६० वर्षे मालयप्रभो ६६०० ।
 २०५. ठणवृत्तिर्हेमसूरिगुरुदेवचन्द्राया, तत्सूत्रं प्रद्युम्नसूरि-कृतम् १३००० (वृत्तिमानम्) ।
 २०६. धर्मोपदेशप्रकरणं प्राकृतमूलं-बहुकथासंग्रहं १३०५ वर्षे यशोदेवीयम् ८३३२ ।
 २०७. पवज्जाविद्वाणवृत्तिः १३३८ वर्षे प्रद्युम्नीया ४५०० ।
 २०८. पवज्जाविद्वाणवृत्तिः जैनप्रभो २४८ ।
 २०९. धर्मविधिप्रकरणवृत्तिः जयसिंहसूरिकृता १११४२ ।
 २१०. धर्मविधिप्रकरणवृत्तिः १२९६ वर्षे उदयसिंहाचार्याया ५५२० ।
 २११. ऋषिमण्डलस्तवः संस्कृते मेरुतुंगसूरिकृतः कारिका ७० ।
 २१२. 'इसिमंडल' इत्याद्यऋषिमण्डलस्तवः गाथा २७१ ।
 २१३. 'इसिमंडल' इति ऋषिमंडलवृत्तिः ४६१४ ।
 २१४. 'भक्तिभर' इति ऋषिमण्डलसूत्रम् २०८ ।
 (१) अस्य वृत्तिः आंचलिकभुवनतुंगीया ।
 २१५. गौतमपृच्छावृत्तिः खरतरश्रीतिलकोपाध्यायकृता ५६०० ।

कथानुयोगग्रंथाः ।

२१६. कथाकोशसूत्रम् गाथा २३९ ।
 (१) कथाकोशवृत्तिः ११०८ वर्षे जैनधरी ६००० ।
 २१७. कथागणिकोशवृत्तिर्नमचन्द्रकृत ४१ अधिकारसूत्र-व्याख्याकृता ११९० वर्षे आश्रमदेवी ।
 २१८. शीलभावनावृत्तिः १२२९ वर्षे रविप्रभो ९५७० ।
 २१९. कथारत्नकोशः सम्यक्त्वादि ५० अधिकारः ११५८ वर्षे देवमद्रसूरिः १२३०० ।
 २२०. धर्माख्यानककोशवृत्तिः प्राकृतबहुकथामयी पत्तनं वि-ना न ।
 २२१. दानोपदेशमालावृत्तिः पद्माणि ७१ ।

२२२. प्रज्ञासूत्रमालावृत्तिः १४२९ वर्षे देवेन्द्रसूचिता ।
 २२३. उद्देश्यचिन्तामणिः १४३६ वर्षे आंचलिकजगन्नाथ-
 सूचिता १२०९३ ।
 २२४. श्रीआदिनाथचरित्रं प्राकृतम्, जयसिंहदेवराज्ये ११६०
 वर्षे वर्धमानसूरिरचितम्, ११०००, १२००० ।
 २२५. श्रीआदिनाथचरित्रं संस्कृतं संप्रति न ।
 २२६. श्रीअजितचरितं सं० न ।
 २२७. श्रीअजितचरितं प्राकृतं न ।
 २२८. श्रीसंभवच० सं० न ।
 २२९. अभिनन्दनच० सं० न ।
 २३०. अभिनन्दनच० प्रा० न ।
 २३१. सुमतिचरितं सं० न ।
 २३२. सुमतिचरितं प्रा० मुख्यं सोमप्रभायं कुमारपालराज्ये
 कृतम् ९६२१ ।
 २३३. पद्मप्रभचरित्रं प्राकृतं न ।
 २३४. सुपार्श्वचरितं संस्कृतं न ।
 २३५. सुपार्श्वचरितं ११९९ वर्षे लक्ष्मणगणिकृतम् गाथा
 ८७०० श्लोकाः १०१३८-१०९८८ ।
 २३६. चन्द्रप्रभचरितम्, सं० १३०२ वर्षे सार्वजनिकम्
 ६१४१ ।
 २३७. चन्द्रप्रभचरितं सं० प्रा० १२६४ वर्षे देवेंद्रसूरीयम्
 ५३२५ ।
 २३८. चन्द्रप्रभचरितं प्रा० याज्ञोदेवम् ६४०० ।
 २३९. चन्द्रप्रभचरितं प्रा० श्रीकुमारपालराज्ये हरिभद्रम्
 ८०३२ ।
 २४०. सुविधिचरितं प्रा० न ।
 २४१. सुविधिचरितं सं० न ।
 २४२. शीतलचरितं सं० न ।
 २४३. शीतलचरितं प्रा० न ।
 २४४. श्रेयांसचरितं सं० १३३२ वर्षे मानतुंगाचार्यः कृतम्,
 ५१२४, स्तम्भतीर्थे विना न ।
 २४५. श्रेयांसचरितं प्रा० देवभद्रायम् ११०००, स्तम्भतीर्थे
 विना न ।
 २४६. श्रेयांसचरितं प्रा० श्रेयांससिंहदेवराज्ये हरिभद्राचार्य-
 कृतम्, गाथा ६५८४, स्तम्भतीर्थे विना न ।
 २४७. वानुपूज्यचरितं सं० ११९९ वर्षे वर्धमानाचार्यकृतम्
 ५४९४ ।
 २४८. वानुपूज्यचरितं प्रा० चन्द्रप्रभम्, हेमसूर्यादिशोधितम्
 ८०००; स्तम्भतीर्थे विना न ।

२४९. विमलचरितं सं० न ।
 २५०. विमलचरितं प्रा० न ।
 २५१. अनंतचरितम् प्रा० गाथावद्धं १२१६ वर्षे श्रीनेमिचन्द्र-
 सूरियम् गाथाः १२००० ।
 २५२. धर्मचरितं सं० नेमिचंद्रीयं न ।
 २५३. धर्मचरितं प्रा० न ।
 २५४. शांतिचरितं सं० † १३३२ वर्षे मौनिदेवम् ४८८५ ।
 २५५. शांतिचरितं सं० माणिक्यसूरियम् ५५७४ ।
 २५६. शांतिचरितं सं० पौर्ण-अजितप्रभसूरिभिः १३१७ वर्षे
 कृतम् ४९११ ।
 २५७. शांतिचरितं प्रा० गद्यपद्यमयम् ११६० वर्षे श्रीहेमगू-
 रिसुद्धदेवचन्द्रसूरियम् १२१०० ।
 २५८. श्रीशांतिचरितं सं० श्रीमणिभद्रसूरिणा १४०२ वर्षे
 कृतम् ६२७२ ।
 २५९. कुंथुचरितं सं० विद्युधप्रभसरिकृतम् ५५५५ ।
 २६०. कुंथुचरितं प्रा० न ।
 २६१. अरचरितं प्रा० न ।
 २६२. अरचरितं सं० न ।
 २६३. मल्लिचरितं प्रा० ११७५ वर्षे जैनेश्वरम् ५५५५ ।
 २६४. मल्लिचरितं सं० श्रीविनयचन्द्रायम् ।
 २६५. मल्लिचरितं बहुप्राकृतं हरिभद्रायं कुमारपालराज्ये क-
 तं गाथाकाव्यमयं ग्रन्थायम् ९००० ।
 २६६. मुनिमुद्रतचरितं सं० पौर्ण० मुनिरत्नसूरिकृतं २० स्था-
 नकथाकलितम् ५१८५ ।
 २६७. मुनिमुद्रतचरितं प्रा० ११९३ वर्षे चंद्रसूरिरइयं गाथा
 १०९९४ ।
 २६८. मुनिमुद्रतचरितं बहुकथानकं ९ भवं विनयचंद्रसूरी-
 यम् ४५५२ ।
 २६९. नामचरितं सं० न ।
 २७०. नामचरितं प्रा० न ।
 २७१. नेमिचरितं प्रा० १२१६ वर्षे हरिभद्राचार्यः कृतम्
 ८०३२ ।
 २७२. नेमिचरितं प्रा० भवभावनावृत्त्यन्तर्गतमन्तरंगवक्तव्य-
 तामिश्रम् ५१०२ ।
 २७३. नेमिचरितं प्रा० गद्यपद्यमयं १२३३ वर्षे देवसूरिशिष्य-
 रत्नप्रभायम् १२६०० ।
 २७४. पार्श्वचरितम् सं० सर्वानंदसूरिकृतम् ।

२७५. पार्श्वचरितं सं. १२१८ वर्षे भावदेवसूरिकृतम् ६७७४-६४०० ।
२७६. पार्श्वचरितं सं. माणिक्यचन्द्रसूरिकृतं १२७६ वर्षे ५२७८ ।
२७७. पार्श्वचरितं प्रा० ११६५ वर्षे नर्वाग-अमयदेवप्रथमशिष्यदेवमद्राचार्यैः कृतम् ९००० ।
२७८. पार्श्वचरितं प्रा० दशमैववाच्यं गाथा २५६४ अंघा-प्रसू ३२०० ।
२७९. महावीरचरितं सं० न ।
२८०. वीरचरित्रं प्रा० ११३९ वर्षे गुणचन्द्राणिकृतम् १२००० ।
२८१. वीरचरित्रं प्रा० ११३९ वर्षे नेमिचन्द्रसूरिकृतम् १२००० ।
२८२. वीरचरित्रं प्रा० ११३९ वर्षे नेमिचन्द्रसूरिकृतं २८१०-२४०० ।
२८३. महापुरुषचरितं सु० प्रा० शालाकापुरुषवृत्तवाच्यं ९२५ वर्षे शालाचार्यैः कृतम् १०००० ।
२८४. महापुरुषचरित्रं प्रा० ६३ शालाकापुरुषवृत्तवाच्यं आश्र-कृतम् गाथा ८७९०, श्लोकाः १००५० ।
२८५. कथावलीप्रथमपरिच्छेदः, प्रा० सु० २४ जिन-१२ चक्रपादिहरिभद्रसूरिपर्यंतमपुरुषचरित्रवाच्यो भात्रे-श्वरः २३८०० ।
२८६. त्रिपष्टिः श्रीशृंगभादि ६३ महापुरुषवृत्तप्रतिबद्धा श्री-हेमसूरीया संपूर्णा ।
२८७. त्रिपष्टीयं श्रीआदिचरितं केवलं ५००० ।
२८८. त्रिपष्टीयं रामायणं पृथक् ३७१४ ।
२८९. त्रिपष्टीयं नेमिचरितं ४९६५ ।
२९०. त्रिपष्टीयं पार्श्वचरितं १६०० ।
२९१. त्रिपष्टीयं महावीरचरितं ३४९२ प्रत्यन्तरे ५१६१ देवगिरि ।
२९२. परिशिष्टपर्व जम्बूप्रमुखाऽऽर्यरक्षितान्तपुरुषवाच्यं ३४६० ।
२९३. त्रिपष्टिगतं नलचरित्रं ११७७ ।
२९४. पद्मानन्दमहाकाव्यं २४ जिनवृत्तरूपं पं० अमरचन्द्र-कविकृतं १८ सर्गरूपं ८१९१ ।
२९५. श्रीपार्श्व १० गणधरचरित्राणि प्रा० मुख्यानि ४३५० ।
२९६. अममजिनस्य भाविमश्वरित्रं मुनिरत्नसूरिभिः १२५२ वर्षे कृतम् ।
२९७. पुण्डरीकचरित्रं सं० १३७२ वर्षे कामरूपभे, कदाच-

- द् अनागमिकायै ३३०० ।
२९८. ११ गणधरचरित्रं सं० श्वरतर देवमत्युपाध्यायीयं ६५०० ।
२९९. हरिवंशचरितं सं० नेम्यादियहुवृत्तवाच्यमाद्यन्तरहितं श्लोकाः ९००० ।
३००. हरिवंशचरितं सं० मन्दिऊकविकृतं पुराणभाषानिवर्द्धं नेम्यादिवृत्तवाच्यं ९००० ।
३०१. पद्मचरितं प्रा० वीरान् ५३० वर्षेषु गतेषु विमल-सूरिभिः कृतं मुख्यैवराश्यासं १०५५० ।
३०२. सीताचरितं प्रा० ३१०० ।
३०३. सीताचरितं धर्माऽवर्मशास्त्रगतं प्राकृतं ३४०० ।
३०४. प्रत्येकबुद्धचरितं १२६१ वर्षे आतिलकीयं ६०५० ।
३०५. जम्बूस्वामिचरितं प्रा० ८२ (१) वर्षे गाथा १६४४ ।
३०६. जम्बूस्वामिचरितं प्रा० संध्यादियन्धे १०१६ वर्षे पं० आगरदत्तेन कृतं २६०० ।
- (१) तस्य टिप्पनं ११०० ।
३०७. पृथ्वीचन्द्रचरितं प्रा० मुख्यं गार्गादिमयं ११७१ वर्षे शान्तिशूरिभिः कृतं ७५०० ।
- (१) पृथ्वी० टिप्पनं १२२६ वर्षे कानकचन्द्रं ११०० ।
- (२) पृथ्वी० चरित्रसंकेतो विपमपदव्याख्यारूपो रत्न-प्रमसूरिकृतः ५९५ ।
३०८. समरादित्यचरित्रं प्रा० मूलं हारिभद्रं गाथा १०००० ।
३०९. समरादित्यचरित्रं सं० १३२४ वर्षे प्रद्युम्नायं ४८७४ ।
३१०. पाण्डवचरित्रं सं० मलधारि देवप्रमसूरीयं ९८८४ ।
३११. प्रभावकचरितं सं० वज्रस्वामिप्रमुखप्रभावकाचार्यवृत्त-वाच्यं १३३४ वर्षे प्रामाचन्द्रं ५७७४ ।
३१२. कुमारपालप्रतिबोधः बहुप्रा० सतार्थसोमप्रमसूरिभिः १२४१ वर्षे कृतः ८६०० ।
३१३. कुमारपालप्रतिबोधः सं० १५७५ ।
३१४. मुनिपतिचरित्रं प्रा० ११७२ वर्षे हारिभद्रायं गाथा १४४ श्लो० ८०५ ।
३१५. मुनिपतिचरित्रं सं० १००५ वर्षे जम्बूनागमुनिकृतं ३२०० उद्धृ० २७०० ।
३१६. महीपालचरित्रं स्तम्भतार्थं विना न ।
३१७. उपमितमवप्रपञ्चोद्धारः सं० देवसूरिकृतः २३७० ।
३१८. उपमितमवप्रपञ्चासारमुमुच्ययां वार्धमानः १४६० ।
३१९. उपमितसारोद्धारः सं० १२९८ वर्षे श्रीचन्द्रशिष्यदेव-न्द्रसूरीयः ५७३० ।

३२०. कुवलयमाला प्रा० मु० ८३५ वर्षे उद्योतनसूरीया
१३००० ।

३२१. कुवलयमाला सं० रत्नप्रभसूरीया ३८९४ ।

३२२. भुवनसुन्दरीचरित्रं प्रा० गाथाबद्धं नाइनकुलश्रीविज-
यसिंहाचार्यैः ९७५ वर्षे कृतं गाथा ८९११ ।

३२३. हरिविक्रमचरित्रं सं० आगमिकजयतिलकसूरीयं ।

३२४. सुलसाचरित्रं सं० आगमिकजयतिलकसूरीयं ।

३२५. मलयसुन्दरी कथा सं० आगमिकजयतिलकसूरीया
२४३० ।

३२६. मलयसुन्दरी कथा प्रा० न ।

३२७. मनोरमाचरित्रं प्रा० मु० गाथामयं च ११४० वर्षे
श्रीअभयदेवसूरीशिष्य-वर्धमानसूरीयं १५००० ।

३२८. सप्तक्षेत्रीनामकथा ११७८ वर्षे शुणाकरीया ७२०० ।

३२९. मुदक्षीनाचरित्रं प्रा० तपाश्रीदेवेंद्रोयं गाथा ४०५२ ।

३३०. मृगावतीचरित्रं मलधारि देवप्रभसूरीयं १८७३ ।

३३१. सुरसुन्दरीकथा १६ परिच्छेदा धनेश्वरमुनिरुता संवत्
१०९५ वर्षे गाथा ४००० ।

३३२. बृहत्पूजाष्टकं रत्नचूडकथयाऽङ्कितम् ।

३३३. रत्नचूडकथा पूजाफलवाच्या नेमप्रभाचार्याया ३५०० ।

३३४. पूजाष्टककथा प्रा० १०६० ।

३३५. पूजाष्टककथा सं० न ।

३३६. विजयचन्द्रकवलिकथा प्रा० पूजाष्टककथागर्भा
११२७ वर्षे चन्द्रप्रभसूरीया ४७०० गाथा ३९१० ।

३३७. विजयचन्द्रकवलिकथारहितास्तद्वृताः पूजाष्टककथाः
प्रा० ।

३३८. कौमुदीकथा जैनरुता १६०० ।

३३९. पञ्चमीकथा दशकथानकारिमका प्रा० महेश्वरसूरीया
२००४ ।

३४०. नर्मदासुन्दरीकथा १७०० ।

३४१. जयसुन्दरीकथा प्रा० न ।

३४२. सर्वांगसुन्दरीकथा प्रा० २६७५ ।

३४३. ऋषिदत्ताचरित्रं प्रा० न ।

३४४. कुसुमसारकथा नेमिचन्द्राचार्यैः १०९९ वर्षे कृता गा-
था १७०० ।

३४५. दमयन्ती कथा २, ५० (?)

३४६. सौभाग्यसुन्दरी कथा ।

३४७. जिनदत्तकथा १२०० ।

३४८. कथारत्नसागरः १५ तरंगात्मको मलधारिनरचन्द्र-

सूरीयः १५ कथः ।

३४९. धन्यशालिभद्रचरित्रं पूर्णभद्रगणिना १२८५ वर्षे कृतं
श्लोकाः-१४६० ।

३५०. स्थूलिभद्रचरित्रं तपाजयानन्दसूक्तितं श्लोकाः ६८४ ।

३५१. पञ्चाख्यानकं पूर्णभद्राचार्यैः १२५५ वर्षे शोधितम्
४६०० ।

३५२. प्रद्युम्नचरित्रं शाम्भुचरित्रं १०७० ।

३५३. प्रबन्धचूडामणिर्मैरुतुङ्गसूरीयः ३५०४ ।

३५४. २४ प्रबन्धाः ८४ कथाश्च राजशेखरसूरीयाः ।

३५५. लीलावतीकथा भूपणभट्टसुतरुताऽऽधारसमेशिता च
परसमयगता गाथाः-१४३९ ।

३५६. कथापुस्तिका अनेकविधकथाभिरनिर्दिष्टनामिकाभिः
पेताः ।

३५७. कथापुस्तिका विविधाः ।

न्याय-तर्कग्रन्थाः ।

३५८. सम्मतिसूत्रं सिद्धसेनदिवाकरकृतम् गा० १७० ।

(१) सम्मतिवृत्तिर्महारादिकृता-७०० ।

(२) सम्मतिवृत्तिः काण्डत्रयोपेता प्रद्युम्नशिष्यअभय-
देवाया २५००० ।

(३) सम्मतिवृत्तिरन्यकर्तृका ।

३५९. प्रमाणकलिकारुण्यवार्तिकसूत्र-वृत्ती शान्त्याचार्यायै, सू०
६०, वृ० २८७३ ।

३६०. नयचक्रवालवृत्तिर्महारादीयद्वादशारनयचक्रतुम्बसूत्रव्या-
ख्याख्या ससूत्रा १८००० ।

३६१. अनेकान्तजयपताकासूत्रं हारिभद्रं सदसदादि ४ धि-
कारं-३६००-३५०० ।

३६२. अनेकान्त० वृत्तिहारिभद्रो ८२५०-।

(१) तट्टिप्पनकं मौनिचन्द्रम् २००० ।

३६३. स्याद्वादरत्नाकरसूत्रं ८ परिच्छेदं वादिश्रीदेवसूरि-
कृतम् ।

३६४. स्याद्वादरत्नाकर आच्छाधिया वादिश्रीदेवसूरिकृतः
३६०००, प्रथमखण्डं विना ।

(१) रत्नाकरावतारिकाऽऽख्या तल्लघुटीका रत्नप्रभाया
५००० ।

(२) तट्टिप्पनके न ।

३६५. न्यायावतारसूत्रं सिद्धसेनीयम् ।

(१) तट्टिहारिभद्रो च, सू० ३२, वृत्तिः २०७३ ।

(२) न्यायावतारवृत्तिः सिद्धव्याख्यानिककृता ।

३६६. आसमीमांसासूत्राणामाऽऽग्रहस्रोतर्को विद्यानन्द-
सूरीयः ८००० ।
३६७. प्रमाणमीमांसासूत्र-वृत्ती हेमसूरीये सू०...वृ०.... ।
३६८. अनेकान्तवादप्रवेशो हारिभद्रः—७००—७३० ।
३६९. सर्वज्ञसिद्धिप्रकरणं हारिभद्रम् ३०० ।
३७०. द्रव्यालंकारस्तर्कः पं० रामचन्द्रगुणचन्द्र कृतः ४०० ।
३७१. प्रमाणसंग्रहप्रकरणं ९ प्रस्तावं जैनं ७१२ ।
३७२. प्रमेयरत्नकोशः सर्वज्ञसिद्ध्यादि २३ वादस्थलः चन्द्र-
प्रभसूरीयः १६८० ।
३७३. पद्मदर्शन दिङ्मात्रविचारः ।
३७४. पद्मदर्शनसमुच्चयसूत्र-वृत्ती, सूत्र-८६, वृ. १२५२ ।
३७५. परिणामिवस्तुव्यवस्थापनं १८० ।
३७६. वोटिकानिषेधो वस्त्रव्यवस्थापनरूपः ।
३७७. सर्वार्थप्रमाभाषाद्यभाष्यनिरासवादस्थलानि ४,—३१० ।
३७८. केवलभुक्ति-स्त्रीभुक्तिप्रकरणं शब्दानुशासनकृत-
शाकटायनकृतं, तत्संग्रहश्लोकाश्च ९४, प्रत्यन्तरे ९० ।
३७९. हारिभद्रो नन्दिवृत्त्याद्यनमस्कारसंपदसर्वज्ञव्यवस्था-
पनावादः ।
३८०. सर्वज्ञव्यवस्थापनावादो योऽपि सोऽपि बहुरूपो वा
३८१. अपशब्दनिराकरणं २१५ ।
३८२. भेदाभेदाद्यनेकान्तव्यवस्थापनं च-२०० ।
३८३. स्याद्वादमञ्जरी मल्लिपेणाचार्यः १३४९ वर्षे कृता
३००० ।
३८४. समन्तमद्रकृत-श्रीवर्धमानस्तोत्रवृत्तिविषयार्थाः ।
३८५. अपौरुषेयवैश्वनिराकरणम् ।
३८६. प्रत्यक्षानुमानाधिकप्रमाणनिराकरणं च यशोदेव-
साधुरकृतम् ।
- आद्यं तु त्रिवर्गपरिहारेण । अपौरुषेयपत्राणि ११, अत्य-
न्तरे प. १४ ।
३८७. श्वेताम्बरदर्शनसिद्धिः, प. १९ ।
३८८. लोकतत्त्वनिर्णयो हारिभद्रः—१७० ।
३८९. न्यायकुमुदचन्द्रसूत्र-वृत्ती दिगम्बरीय अकलङ्कदेव-प्र-
भाचन्द्रकृते सू० वृ. १६००० ।
३९०. प्रमेयरत्नमाला परीक्षामुखलघुवृत्तिपरनाम्नी, तत्सूत्रं
च—वृ. १५६७, सू. १४० ।
३९१. न्यायविनिश्चयवृत्तिः—अनन्तधीर्यकृता दैगम्बरी ।

* कवर्ग—चवर्ग—टवर्ग—इति वर्गत्रयगतव्यञ्जनानि परि-
हृत्यान्वैर्व्यञ्जनैरेतत् प्रकरणं रचितम् ।

३९२. आसपरीक्षावृत्तिस्तत्त्वार्थसूत्राद्यश्लोकव्याख्यारूपा ।
३९३. पत्रपरीक्षा च पत्रवाक्यप्रकारव्याख्या ।
३९४. प्रमेयकमलमार्तण्डो दिगम्बरीयप्रभाचन्द्रायः
११००० ।
३९५. अध्यात्मतरङ्गिणीटीका दिगम्बरीयतर्करूपा ।
३९६. हेतुविन्दुटीका तर्करूपा ।
३९७. प्रमाणवार्तिकेऽऽद्यपरिच्छेदसूत्रं चौद्वीयम्,
(१) नद्वृत्तिश्च आद्यपत्र. २-३ रहिता ।
३९८. तर्कभाषा टीका बौद्धमतवाच्या बालावबोध ३ परि-
च्छेदा ८४० ।
३९९. न्यायविन्दुसूत्रं बौद्धमतवाच्याम् ।
(१) लह्रीका च धर्मोत्तराचार्यकृता सू. टी. १४७७ ।
४००. न्यायप्रवेशकटीका च हारिभद्रो सू. टी. ५९७ ।
४०१. न्यायप्रवेशकटिप्पणं ११६९ वर्षे श्रीचन्द्रोद्यम् ।
४०२. तत्त्वसंग्रहः प्रकृतिभूतानि निरासवाच्यो बौद्धः—
३७१६ ।
४०३. न्यायकुसुमाञ्जलितर्कः ५०४६ मितः ।
४०४. न्यायतर्कसूत्रं (१) भाष्य, (२) वार्तिक,
(३) तारपर्यटीका, (४) तत्परिशुद्धि,
(५) न्यायालंकारवृत्ति, (६) पञ्चप्रस्थानन्यायतर्काणि
(क्रमशः)—अक्षपाद-वात्स्यायन-भारद्वाज-वाचस्पति-उदयन-
श्रीकण्ठ-अभयतिलकोपाध्यायकृतानि पञ्चपि
५३००० ।
४०५. न्यायकलिकाटीका नैयायिकीय १६ पदार्थतत्त्ववा-
च्या ४०५ ।
४०६. सारसंग्रहो नैयायिकीय १६ पदार्थवाच्यः ।
४०७. न्यायभूषणसूत्रं न्यायसारपरनामकं ४०० ।
(१) न्यायसारटीका जांयसिद्धी २९०० ।
(२) न्यायसारटीका न्यायसारविचारारूपा ।
(३) न्यायसारगञ्जिका ।
४०८. मतमनोहरग्रन्थगतहेतुसाध्यगताशेषविशेषनिरूपणसूत्र-
व्याख्यारूपं ७४० ।
४०९. पदपदार्थप्रवेशप्रकरणं वैशेषिकीयं—९५० ।
४१०. भास्करभूषणः मृष्टधादिवाच्यः ।
४११. किरणावली ।
४१२. न्यायतन्त्रटीका व्याख्याखण्डम् ।
४१३. किरणावलीटिप्पणके द्रव्यपदार्थः २३७३ ।
४१४. कन्दली-किरणावल्योः सूत्रम् ७७७ ।

४६१. कातन्त्रोत्तरं विद्यानन्दापरनामकं समासप्रकरणं यावन् विद्यानन्दसू० क० व्या० ।
 ४६२. लिङ्गानुशासनममरकृतं अमरकोशसंबद्धकाण्डत्रये १४७० ।
 ४६३. लिङ्गानुशासन ३४ आर्यामितं वामनकृतं ३४ ।
 ४६४. अमरकोशकोषः ।
 ४६५. अमरकोशटिप्पणकम् ।
 ४६६. स्यादिसमुच्चयः १० अमरकविकृतः ।
 ४६७. स्यादिसमुच्चयः अमरकविकृतः ।
 ४६८. लौकिकस्यादिप्रक्रिया सर्वधरुता ।
 ४६९. सारस्वतव्याकरणं १२२० ।
 ४७०. सारस्वत टिप्पणकं १२०० ।
 ४७१. सारस्वतव्याकरणप्रक्रिया ।
 ४७२. गणरत्नमहोदधिः पं० वर्धमानेन १९९७ वर्षे कृतः ।
 ४७३. शाकटायनव्याख्या बह्व्यः ।
 ४७४. शब्दप्रमेदानुयायिनाममाला महेश्वरकविकृता ।
 ४७५. काशिकावृत्तिः पाणिनिकृता । (?)
 ४७६. व्याकरणरत्नकोशः पाणि० लघुवृ० ।
 ४७७. रूपावतारकसंक्षिप्तव्याकरणं पाणिनीयसंग्रहार्थकं समासान् यावत् ।

छन्दःसाहित्यग्रन्थाः ।

४७८. हलायुधच्छन्दोवृत्तिर्भट्टहलायुधकृता १२३३ ।
 ४७९. छन्दप्रदीपो विप्रकृतः ९०० ।
 ४८०. वृत्तरत्नाकरो भट्टकैदाकृतः १५० ।
 (१) तद्वृत्तिः श्रीकण्ठकृता ६२० ।
 ४८१. जयदेवच्छन्दःशास्त्रवृत्तेः टिप्पणकं श्रीचन्द्रसूरे-
 कृतम् ।
 ४८२. नन्दिनाम्यत्राकृतछन्दोवृत्तेः श्रीदेवाचार्यशिव्यप्रकरण-
 सु (ज्ञत ?) कारिरत्नचन्द्रगणिकृता ।
 ४८३. छन्दोऽनुशासनाऽपरनामकच्छन्दश्चूडामणिवृत्तिः मसू-
 रिकृता ४१००-२९९९ ।
 ४८४. गाधारत्नकोशो गायालक्षणादिवाच्यः ७३ ।
 ४८५. काव्यप्रकाशसूत्र-वृत्ति १० उल्लासे सू० १४१ वृ०
 १७३० ।
 ४८६. जयन्तीदीपिका जयन्तपुरोधःकृता ४७३० ।
 ४८७. काव्यप्रकाशसंकेतः १२१६ वर्षे माणिक्यचन्द्रायः
 ३२४४ ।

४८८. काव्यप्रकाशविकाशः ... ।
 ४८९. काव्यप्रकाशावचूर्णिः १२५० ।
 ४९०. काव्यप्रदीपिका सूत्र-वृत्तिगर्भा पाल्हेदेवकृता ६००० ।
 ४९१. काव्यानुशासननामालंकारचूडामणिवृत्तिः श्रीहेम-
 सूरीया ८ अध्याया २८००—४२०० प्रत्यन्तरे ।
 ४९२. अलङ्कारचूडामणिवृत्तिविवेको हेमसूरीयः ४००० ।
 ४९३. दण्डयऽलङ्कारः ... ।
 ४९४. अलंकारमहोदधिटीका मलया० नरेन्द्रप्रभोया १२८-
 वर्षे कृता ४५०० ।
 ४९५. कविशिक्षा नाम काव्यकल्पलता सू० ५०० ।
 (१) सूत्रवृत्तिः पं० अमरकविकृता वृ० ३३५७ ।
 ४९६. वाग्भट्टालङ्कारवृत्तिः ६०० ।
 ४९७. रुद्रटालङ्कारः ६ अध्यायः ।
 ४९८. कविशिक्षा भण्णभट्टशिव्यविनयचन्द्रकृता ।
 ४९९. अलङ्कारसर्वस्व राजान्कश्रीरुचिकृतं १६०० ।
 ५००. काव्यकल्पलतापरिमलः, पं० अमरकविकृतः ।
 ५०१. श्रीमोजराजकृताऽलङ्कारस्य वृत्तिः पदप्रकाशनाम्नी ।
 आजडकृता काव्यवन्धादिवाच्यः..... ।
 ५०२. चन्द्रालोकालङ्कारः पं० अमरकविकृतकाव्याम्नायः
 प० २० ।

गद्यपद्य कान्यग्रन्थाः ।

५०३. श्रीद्वयाश्रय महाकाव्यं श्रीहेमसूरीयं २० सर्ग संस्कृतं
 २६२८-३०२६ ।
 ५०४. द्वयाश्रयकाव्यपाद २८ वृत्तिः, १३१२ वर्षे खरतर-
 अभयतिलकीया १७५७४ ।
 ५०५. प्राकृतद्वयाश्रयसूत्रं है ९५० ।
 ५०६. प्राकृतद्वयाश्रयपाद ४ वृत्तिः. खरतरपूर्णकलगीया
 १३०७ वर्षे कृता ४२३० ।
 ५०७. धर्माभ्युदयकाव्यं वस्तुपालचरित्रवाच्यं, उदयपभीयं
 ५२००—५०४० ।
 ५०८. श्रीशालेयं काव्यं शास्त्रिभद्रचरित्रवाच्यं पं० धर्मकुमार-
 कृतं १३३४ वर्षे १२२४ ।
 ५०९. श्रीधर्मनाथमहाकाव्यं २१ सर्ग दिगम्बरीयकाव्यादि-
 बन्धकाव-हरिचन्द्रकृतम् ।
 ५१०. श्रीनिमिचरित्रं महाकाव्यं संस्कृतं गद्य-पद्ययं बहु-
 छण्डितं १०९० वर्षे भोजराजराज्ये सुराचार्यकृतम् ।
 ५११. श्रीनिमिमहाकाव्याटिप्पणकं १४०० ।
 ५१२. श्रीनिमिनिर्वाणकाव्यं वाग्भट्टकृतं १५ सर्ग १३६० ।

५१३. नेमिदूतकाव्यं विक्रमकृतम् ।
 ५१४. कुट्टिनीमतकाव्यं सं० दामोदरकृतं १२९० ।
 ५१५. विक्रमांकाभ्युदयकाव्यम् ।
 ५१६. बालभारतं ४३ सर्गं भमरकविकृतं परसमयवाच्यं
 ६७७४ ।
 ५१७. अभिनन्दकाव्यं रामचरितं वा ३६ सर्गम् ।
 ५१८. सौमपालविलासकाव्यम् ।
 ५१९. जल्हणकविकृतकाव्यम् १००० ।
 ५२०. नरनारायणनन्दकाव्यं मन्त्रिवस्तुपालकृतं १६०० ।
 ५२१. तिलकमञ्जरीकथा, धनपालकृता चम्पूरुपा वर्णन-
 साया ।
 (१) तिलकमञ्जरीटिप्पनकं शान्त्याचार्याय १२०० ।
 ५२२. तिलकमञ्जरीसारोद्धारो लघुधनपालकृतः-१२०० ।
 ५२३. कादम्बरीकथा बाणकविकृता पुलिंदकृतसंघाना ।
 ५२४. सौभाग्यमंजरीकथा सं० गद्यपद्यमयी, परतीर्थ पं० म-
 हेंद्रकृता ३१०० ।
 ५२५. वासवदत्तकथा सुबंधुकविकृता ।
 (१) वासवदत्ता० टीका नारायणकविकृता ।
 ५२६. चम्पूकथा ७ उल्लास। विविक्रमभट्टकृता समयन्तीक-
 थाऽपरनाम्नी २५०० ।
 (१) चम्पूकथादिटिप्पनकं चण्डपालकृतं १९०० ।
 ५२७. शातवाहनकृतगाथासप्तशती.....।
 (१) टीका भुवनपालकृता ४५०० ।
 (२) शात० गाथावृत्तिः, श्रीआजडेन कृता ।
 (३) शात० गाथावृत्तिः, जल्हणदेवकृता ।
 ५२८. रघुकाव्यं २० सर्ग १५७२ ।
 ५२९. माघकाव्यं २० सर्ग २७०० ।
 (१) माघकाव्यटीका बल्लभदेवकृता १२००० ।
 ५३०. कुमारसंभवकाव्यं ८ सर्ग ६१५ काव्यानि ।
 (१) कुमारसंभवकाव्यवृत्तिर्दिगम्बरीयधर्मकीर्तिकृता ।
 ५३१. मेघदूतकाव्यम् ।
 (१) मेघदूतवृत्तिः ।
 ५३२. किरातकाव्यं १८ सर्गं भारविकविना वर्षे
 कृतम् ।
 (१) किरातकाव्यस्य भन्वरीयस्य वृत्तिः प्रकाशवर्ष-
 कृता ।
 (२) किरातार्जुनयिकाव्यटीका लोकानन्दकृता ।
 ५३३. गोडवधकाव्यं गाथाः ११६८ ।

५३४. नैषधमहाकाव्यं श्रीहर्षकविकृतं २२ सर्ग काव्यानि
 ४००९ ।
 (१) नैषधटीका चाण्डर्षी ।
 (२) नैषधटीका गादाधरी ।
 (३) नैषधटीका विद्याधरी ।
 ५३५. दशरूपालोकम् ।
 ५३६. भारतशास्त्रम् ।
 ५३७. धनुर्विद्या च ।

नाटकानि ।

५३८. रघुविलासनाटकं पं० रामचन्द्रकृतम् ।
 ५३९. नलविलासनाटकं पं० रामचन्द्रकृतम् ।
 ५४०. चाणाक्यनाटकम् ।
 ५४१. मोहपगजयनाटकं मन्त्रियशः पालकृतं श्रीकुमारपा-
 लनृपप्रतिबद्धं प्रायोऽन्तरङ्गवाच्यं १३२० ।
 ५४२. मानमुद्राभञ्जननाटकं सनत्कुमारचक्रि-विलासवती-
 संवन्धप्रतिबद्धं देवचन्द्रगणिकृतं १८०० ।
 ५४३. प्रबुद्धरौहिणेयं रामचन्द्रीयं १००० ।
 ५४४. मुद्रितकुमुदचन्द्रनाटकं यशश्चन्द्रकृतं ५३५ ।
 ५४५. प्रबोधचन्द्रोदयनाटकं १०१० ।
 ५४६. दूतांगनाटकम् ।
 ५४७. शृंगारतिलकनाटकम् ।
 ५४८. मुग्गरिनाटकम् ।
 (१) मुरारिटिप्पनकं देवप्रभसूरिकृतं ७५०० ।
 (२) मुरारिटिप्पनकं मल० नरचन्द्रसूरीयं २३५० ।
 ५४९. अनर्थराघवनाटकम् ।
 ५५०. मुद्राराक्षसनाटकं चन्द्रगुप्त-चाणाक्यसंबद्धं विशाखदेव-
 कृतं ।
 ५५१. सुकृतमण्डनं वस्तुपालसंबद्धम् ।
 ५५१. राघवाभ्युदयनाटकं पं० रामचन्द्रकृतं १० अंकम् ।
 ५५२. चन्द्रलखाविजयनाटकम् ।
 ५५३. विक्रमोर्वशीनाटकं कालिदासकृतं ७७० ।
 ५५४. कर्पूरमंजरी नाटकम् ।
 ५५५. रत्नावलीनाटिका हर्षदेवकृता ७३३ ।
 ५५६. वनमालानाटिका पं० मपरचन्द्रकृता ।
ज्योतिः—शकुन—योगाम्नाय—मन्त्र—कल्प—सा-
मुद्रिक—शास्त्राणि ।
 ५५७. आयज्ञानतिलकसूत्र-वृत्ति। वोसिरिक्ते सू. गा. ७५० ।
 ५५८. आयसद्भावः १९५ । वृत्तिः १६०० ।

५५९. कूरपवंतः (?) ।
 ५६०. प्रदनव्याकरण ज्योतिर्वृत्तिः ।
 ५६१. चूडामणिग्रन्थः २३०० ।
 ५६२. चूडामणिसारग्रन्थः ४१ शंकरणो रक्षमणमहकृतः ६७२ ।
 ५६३. त्रिशती श्रीधरीया ।
 ५६४. गणिन्शास्त्रम् ।
 ५६५. चन्द्रोन्मीलनचूडामणिसारशास्त्रम् ।
 ५६६. ज्ञानप्रवृत्तिः ।
 ५६७. वस्तुसार १, ज्योतिषसार २, द्रव्यपरिक्षा ३, रत्न-
 पराक्षा ४, त्रिशती तद्वृत्तयः ६ ग्रन्थाः १३७२ वर्षे
 ठ. फेरुताः ।
 ५६८. गणिततिलकग्रन्थवृत्तिः सिद्धतिलकसूत्राया ।
 ५६९. प्रदनप्रकाशो नरवन्द्यसूरिकृतः २० प्रकाशः ३६० ।
 ५७०. नरपतिजयचर्या एकाशीतिकादि ८४ का ।
 ५७१. नरपतिजयचर्या गतग्रहा ।
 ५७२. नयनपूर्वाङ्कप्रवृत्तिविवरणं करणशेखरवृत्तिनामकं
 १९० ।
 ५७३. वागहीसंहिता सूत्र-वृत्ति—४००० ।
 ५७४. भाद्रबाह्वीसंहिता सूत्रम्.....।
 ५७५. सारावलीज्योतिष्कं २७०० ।
 ५७६. ज्ञानदर्पणज्योतिष्कं त्रैलोक्यप्रकाशं हेमप्रमसूरिकृतं
 ११४१ ।
 ५७७. भुवनदीपकः पाद्यप्रमः १६७ ।
 (१) वृत्तिः सिद्धतिलकोया १७०० ।
 ५७८. रत्नकोशज्योतिष्कम् ।
 ५७९. रत्नमालाज्योतिः ।
 ५८०. पट्टिसंवत्सरादिदेवग्रन्था अनेकविधा इह अनिर्दिष्ट-
 नामकाः ।
 ५८१. हर्षप्रकाशज्योतिष्कं हर्षदेवगणिकृतम् ।
 ५८२. चन्द्रार्कप्रहसारज्योतिष्कम् ।
 ५८३. आशाधरीयवृत्तिः, यन्त्राणि च ।
 ५८४. बृहज्जातकं २५ अध्यायस्य वराहमिहिरीयम् ४०० ।
 ५८५. श्रीधरीयजातकपद्धतिटीका ।
 ५८६. पट्टपञ्चाशिकावृत्तिः सप्तम्याया ५५० ।
 ५८७. प्रदनज्ञानपद्धतिः मष्टोपलकृता १८० ।
 ५८८. विद्वज्जनयल्लमाख्यप्रदनज्ञानं १९ अध्यायं श्रीमोजी-
 यम् ।
 ५८९. पुस्तकेन्द्रग्रन्थः गा. ११५ ।

५९०. स्तज्ज्ञानं पासा भेवलीविशेषरूपं श्लो. २१५ ।
 ५९१. मातृकाकेवली ५० ।
 ५९२. देवतादि ११ द्वारैः कालज्ञानम् ।
 ५९३. प्राकृतं पिपासिकाज्ञानम् ।
 ५९४. नाडीसंचारज्ञानं च ।
 ५९५. सिद्धाज्ञापद्धतिः ।
 ५९६. नायपुस्तिका योगिनामनायग्रन्थसत्का हरीमेखलाज-
 नाथ्यकराज्जनसिद्धादियोगादिवाच्या, खेल्वाडि मा-
 ह्यारुटा, गाथा १३९७ ।
 ५९७. अर्धकाण्डं दुर्गदेवीयं अ० १०-१४७ ।
 ५९८. मन्त्रमहोदधिः प्रा. दिगम्बर श्रीदुर्गदेवकृतः, मं.
 गा. ३६ ।
 ५९९. भैरवपद्मावतीकल्पः श्रीमल्लिप्रेणसूरिकृतः ४०० ।
 ६००. रुद्राक्षकल्पः ७५ ।
 ६०१. श्वेताक्षकल्पः ।
 ६०२. कामरूपपञ्चाशिका निमित्तः वाच्या तद्वृत्तिः सू. वृ. ८८
 गा. (?) ।
 ६०३. वसन्तराजो लावणमणः २३५० ।
 ६०४. शकुनसारोद्धारो माणिक्यसूरीयः १३३८ वार्षिकः
 ५०८ ।
 ६०५. शकुनशास्त्रं प्राकृतं वार्तामयं १. १४ ।
 ६०६. सामुद्रिकम् ६७ ।

प्रकीर्णग्रन्थाः ।

६०७. श्रीशान्तिनाथचरितं दिगम्बरीयं गा. २१९६ ।
 ६०८. यशोधरचरितं दिगम्बरीयम् ।
 ६०९. यशोधर काव्यपीठिका ।
 ६१०. प्रतिकमण्टीकामुत्रं दिगम्बरीयम् ।
 ६११. आनन्दसमुच्चयः ।
 ६१२. अध्यात्मशास्त्रं बहुप्रकरणमयम् ।
 ६१३. पातञ्जलियोगशास्त्रवृत्तिः सूत्रयुता श्रीमोजराज-
 कृता ।
 ६१४. आत्मावबोधो मल्लभा. देवप्रमसूरिकृतः ५५० ।
 ६१५. ज्ञानार्णवोऽध्यात्मवाच्यः श्रीशुभचन्द्रसूरीयः हैमयोग-
 शास्त्रतुल्यवाच्यो बहुवैराग्यः ४००० ।
 ६१६. ज्ञानदीपिका पिण्डस्थादिध्यानवाच्या ।
 ६१७. तत्त्वार्थसाराख्यं मोक्षशास्त्रं अमृतचन्द्रसूरीयम् ।
 ६१८. संवेगद्रुमकन्दली विमलाचार्यकृता, कारिका ५२ ।
 ६१९. ज्ञानार्णवशुद्धोपयोगिसूत्रम् ।

६२०. ज्ञानाङ्कुशः का. २८ ।
 ६२१. योगकल्पद्रुमः ।
 ६२२. अमृतसिद्धिः ।
 ६२३. विरूपाक्षयोगशतं गा. १०१, अ. ६१ ।
 ६२४. साम्यशतं विजयसिद्ध्यं १०४ ।
 ६२५. शमभावशतं अन्तरङ्गकथावाच्यं श्रीधर्मचोपसूरिकृतम् १०२ ।
 ६२६. गीता भारते भीष्मपर्वगता ७१६ ।
 ६२७. धर्मपरीक्षा परसमयाऽसंबद्धतावाच्या दिगम्बरीयाऽमितगतिरुता ।
 ६२८. वज्रसूत्री विप्रजात्यादिनिरासवाच्या ।
 ६२९. भविष्योत्तरोद्धारः परसमयबहुस्वरूपवाच्यो जैनकृतः परसमयज्ञानाय ।
 ६३०. द्विजवदनचपेटा विप्रजात्यादिनिराकरणवाच्या ।
 ६३१. वनस्पतिसत्तरी (१) } श्रीमुनिचन्द्रसूत्र-
 ६३२. पार्श्वसत्तरी (२) } कृता. (प्रत्येक)
 ६३३. अङ्गुलीविचारा (३) } गा. ७०
 ६३४. सम्यक्त्वस्वरूपं जिनचन्द्रगणिकृतं, गा. १०४ ।
 ६३५. जिनप्रतिष्ठा ।
 ६३६. यतिप्रतिष्ठास्थापनस्थलं जिनदेवसूरिकृतं, ११८५ वर्षे, प. २६ ।
 ६३७. श्रीशान्तिवेत्तालीया पर्वपञ्जिका सपर्वविध्यादिवाच्या ।
 ६३८. श्रीशोलाचार्याया धूमान्त्यादिवृत्तिः ।
 ६३९. कुसुमाञ्जल्यादिवाच्या समुद्राचार्यकृता २५० ।
 ६४०. ग्रहदोषज्ञानाध्यायः (१)
 दोषशान्तिकं जैनं (२)
 लौकिकं (३) च
 त्रयमपि सिद्धतिलकसूरिकृतं त्रयाणां ग्रन्थाम् १२४ संख्या पल ५ ।
 ६४१. आलोचनाविधान-आलोचनपदसंग्रहादयोऽनेके संग्रहाः ।
 ६४२. सूक्तारत्नाकर-सुभाषितसमुद्रप्रमुखाः सुभाषितग्रन्थाः अनेकविधाः सर्वे धर्मकुमारीयाः ।
 ६४३. शुभावली ।
 ६४४. दानादिप्रकरणं सं. सूत्राचार्यकृतं सप्तवसरं काम्यादि-
 बन्धं प. २४ ।
 ६४५. सुधाकलशाख्यसुभाषितकोशः प. रामचन्द्रकृतः पत्र..... ।
 ६४६. दीपालीकल्पः १४४ ।
 ६४७. दीपोत्सवकल्पः, सं. १३८९ वर्षे विनयचन्द्रकृतः २७४ ।
 ६४८. दृष्टान्तशतं १०४ ।
 ६४९. तत्त्वबिन्दुः ७१ ।
 ६५०. बोधप्रदीपिका ५२ ।
 ६५१. सिन्दूरप्रकरः ९८ ।
 ६५२. इष्टोपदेशः ५१ ।
 ६५३. सर्वेऽपि सूक्तारूपाः ग्रन्थाम् ३८५ ।



हरिमद्राचार्यस्य समयनिर्णयः।

सुप्रसिद्ध महान् तत्त्वज्ञ जेनाचार्य हरिमद्राचार्यस्य समयनिर्णय संबंधी जे संस्कृत निबन्ध मुनिराज श्रीजिनविजयजीय पूनामां, मराठल 'प्रथम प्राच्य विद्या पण्डित परिषद्' आगळ वांच्यो हतो ने जुदा पेम्फलेट रूपे छपाईने प्रकट करवामां आय्यो छे. निबन्ध सरल भाषामां ललाणलो होई अनेक अपूर्व ऐतिहासिक मुद्दाओची भरपूर छे. संस्कृत भाषा जाण नार दरेक विद्वान्ने अवश्य वांचवा लायक छे. किं मात्र ४ आना. पोष्टेज खर्च जुदुं.

समरसचकहा।

आठमा संकाना प्रख्यात महान्मा याकिनी महान्नामुनु श्रीहरिमद्राचार्य प्रशमरसपरिपूर्ण आ कथा-ग्रंथनी रचना करी छे. आना जोदानो वीजो ग्रंथ मळयो दुर्लभ छे. मूलग्रंथ प्राकृतमां छे. पण अमे मूल साथे तेनो संस्कृत अनुवाद पण छपाव्यो छे. आ पुस्तक मुंबईनी युनिवर्सिटीय पोताना पाठय पुस्तकोमां पण दायल कार्यु छे. आ ग्रंथमां समरसिख राजाना कुल नवभवोनी वार्ता छे, तेमांना जण भवो अमोए प्रकट कर्यो छे. मूल्य रु०-२-८-०

प्रद्युम्नचरित्रम्।

आ काव्य रत्नचन्द्र उपाध्याये रचेल छे. श्रीरत्नचन्द्र प्रसिद्ध श्रीहीराविजयसूचिनी संततिमांना एक पंडित रत्न छे. काव्य घणुं ज सरस अने सरल छे, तेमां संस्कृत भाषा द्वारा कृष्णना पुत्र प्रद्युम्ननी रसमय वार्ता वर्णवचामां आवेल छे. मूल्य-२-०-०

जैन साहित्य संशोधक कार्यालय.

पोस्ट खर्च जुदुं } टे. भारत जैन विद्यालय, फर्ग्यु-
समजपुं } सन कॉलेजरोड, पूनाछिटी.

जैन-हितैषी।

हिन्दीका सुप्रसिद्ध मासिक पत्र। इसमें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों संप्रदायोंके विद्वानोंके लेख रहते हैं। ऐतिहासिक लेखोंके लिए यह खास तौरसे प्रसिद्ध है। अब तक इसमें अनेक महत्त्वके लेख निकाल चुके हैं। जैनधर्मपर तुलना-

त्मक दृष्टिसे लिखे हुए लेख भी इसमें रहते हैं और वे बड़ी ही निष्पक्षता और उदारतासे लिखे जाते हैं। यह सब संप्रदायोंको समदृष्टिसे देखता है। जैनग्रंथोंकी समालोचनायें भी इसमें रहती हैं। प्रत्येक जैनीको इसका ग्रहण होना चाहिए। वार्षिक मूल्य दो रुपये। ग्राहक वर्षके प्रारंभ और मध्यसे बनाये जाते हैं। वर्ष दिवालीसे शुरू होता है।

माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैनग्रन्थमाला।

इसमें दिगम्बर सम्प्रदायके संस्कृत और प्राकृत भाषाके ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं और सब ग्रन्थ सिर्फ लागतके मूल्यपर बेचे जाते हैं। स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द्र हीराचन्द्र जे० पी० के स्मारकमें यह निकलती है। अब तक इसमें नीचे लिखे १५ ग्रन्थ निकल चुके हैं। प्रत्येक लायब्रेरीमें इनका एक एक सेट भेगाकर रखना चाहिए।

- १ लघ्वीयसुखादिसंग्रह, महाकलंककृत मू० १=
- २ सागारधर्माभूत सटीक, पं० आशाधरकृत १=
- ३ विक्रान्तकौरवीय नाटक, हस्तिमलकृत १=
- ४ पार्श्वनाथचरित, वादिराजकृत ॥
- ५ मैथिलीकल्याण नाटक, हस्तिमलकृत १
- ६ आराधनासार सटीक, देवसेनकृत १-॥
- ७ जिनदत्तचरित्र, गुणभद्रकृत १-॥
- ८ प्रद्युम्नचरित्र, महासेनकृत. ॥
- ९ चारित्रसार, चर्मण्डरायकृत १=
- १० प्रमाण-निर्णय, विद्यानन्दकृत १=
- ११ आचारसार, धीरनन्दीकृत १=
- १२ त्रिलोकसार सटीक, नेमिचन्द्रकृत १॥॥
- १३ तत्त्वानुशासनादिसंग्रह, १=
- १४ अनगारधर्माभूत सटीक, आशाधरकृत ३ रु.
- १५ युक्त्यनुशासन सटीक मूल सप्तभद्र १ रु.

मिलनेका पत्ता—

मैनेजर जैन ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव, बंबई।

જૈન જાગૃતિ

જૈન જાગૃતિ

જૈન જાગૃતિ

(પાલિક પત્ર)

સંપાદક—મુનિરાજ શ્રીજિનવિજયજી



હો તમે જૈન છો ? જૈન સમાજની ત્વરી હાલત જાણવા ઇચ્છો છો ? જૈન ધર્મની ઉચ્ચતિ થાય તેમ જાણો છો ?

જો આ પ્રશ્નોના ઉત્તર 'હો' એવે આપવાની મંજૂરી હોય તો તો આજે જ એક કાંડે લખી જૈન-જાગૃતિ નામના પાલિક પત્રના ગ્રાહક લીસ્ટમાં યોદાનાં નામ દાખલ કરાવો યો.

આરતવેપના નવીન ઉદયના વેસતા વર્ષે-પટકે અર્ચના કાર્તિક શુદ્ધ પ્રતિપદના દિવસે—આ પત્રનો પ્રથમ અંક પ્રકટ થશે અને પછી હમેશાં દર પ્રતિપદના દિવસે તે પ્રકટ થતું રહેશે.

જૈન સમાજને ઉત્તમ અને સારું વાંચન આપવા માટે, તેમજ દરેક સામાજિક અને ધાર્મિક પ્રશ્નોના પશ્ચાતશુન્ય, ત્રિવિદ્યાપૂર્ણ અને ચુક્તિસંગત સુલાસા આપવા માટે આ પત્ર પ્રકટ કરવામાં આવે છે. એમાં વૈધિકારક, માર્ગદર્શક, ઉત્સાહ-પ્રેરક, સંદ્રુષિ ઉત્પાદક અને આનંદ દાયક લેખો આવશે. જૈન સમાજની વર્તમાન પરિસ્થિતિઓ ઉપર પ્રામાણિક વિચારો દર્શાવવામાં આવશે. જીવન કાલહના આ અચર સંસ્કારિકાલ-માં આપણું વ્યવહારિક વર્તન કેવું હોવું જોઈએ ? જહવાદના આ પ્રચંડ તોફાની સમયમાં આપણું ધાર્મિક આચરણ કેવું થવું જોઈએ ? અને સ્વા-તંત્ર્યતા આ ઉચ્છ્રાલ યુગમાં આપણું સામાજિક વેધારણ કેવું વનવું જોઈએ ? ૫ પ્રશ્નો ઉપર આ પત્રમાં ઉમદા ઉદ્દાપોહ કરવામાં આવશે. સામા-જિક અને ધાર્મિક વિષયો ઉપરાંત; નૈતિક, વૈજ્ઞા-નિક, ઇતિહાસિક, સાહિત્યિક આદિ વિષયો

ઉપર પણ સારા સારા લેખો અને વિચારો એમાં હમેશાં આવ્યા કરશે.

દુકાળમાં કહીએ તો જૈન સંપ્રદામાં કેન્દ્રવર્ણી વિષયક, વ્યાપારવિષયક, રાષ્ટ્રવિષયક, સમાજ-વિષયક અને ધર્મવિષયક દરેક પ્રકારની જા-ગૃતિ ઉત્પન્ન કરવા માટે ૫ પત્ર પ્રાપ્તિ કરવામાં આવે છે.

પત્રના આદર્શમાટે વિશેષ લખવું નકામું છે કારણ કે મૂંઝવાતનો પટલા ઉપર થો જા ને વાચનમાં વિચારી શકશે કે એનું સંપાદન કાવ્ય સ્વયં મુનિરાજ શ્રીજિનવિજયજી મહારાજના હસ્તક થશે. કિં વહુના ?

પત્રની ભાષા સુલ્લ્ય કરીને ગુજરાતી રહેશે પરંતુ લિપિ દેવનાગરી (વાલબોધ) રહેશે. જયો પંજાબ, રાજપુતાના અને પૂર્વદેશના ભાઈઓ પણ સરલતાથી તેનો લાભ લઈ શકશે.

પત્રનું વાર્ષિક લઘાજમ રૂપાલ ચાલે સાથે રૂા. ૬૦ (અઢી રૂપિયા) રાખવામાં આવશે. ગ્રા-હકો પુરતી જ નકલો કાઢવામાં આવશે. તેથી ગ્રાહક થવા ઇચ્છનારને તુરતમાં જ એક કાંડે લખી તેથી સૂચના કરી દેવા વિનંતી છે.

પત્ર વ્યવહાર નામના શિરનામે કરવા.

અવસ્થાપક,

જૈન જાગૃતિ કાર્યાલય

C/o ભારત જૈન વિદ્યાલય,

પૂના—સિટી.

Publisher—Becharadas Jivraj Pandit, Jain Sahitya Sanshodhaka Samaj,
Fergusson College Road, Poona City,

Printer—Laxman Bhanrao Kolate 'Hanuman Press' Sadashiv, 300 Poona City.

